ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

वर्ष १५
अंक १

माघ २०४७
जनवरी १९९१

अथर्व वेद
खण्ड १४

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९१, दयानन्दाब्द १६६

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक— वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती शास्त्री एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्
सहायक— विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१
दिल्ली कार्यालय-श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, बी९ हिल व्यू वसन्तविहार नयी दिल्ली ५७, दूर० ६०१४५२

आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती

सामवेद अथर्व वेद

सत्यार्थ प्रकाश—मन्त्र-व्याख्या

क्रमांक ६३। ऋषि अथर्वा, देवता ब्रह्म, छन्द अनुष्टुप्, स्वर गान्धार, विनियोग वैदिक वर्ण-व्यवस्था

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ —अथर्व १९.६२.१

अर्थ— (हे परमात्मन्) मुझे देवों (ब्राह्मणों); राजाओं (क्षत्रियों); और शूद्र और अर्य (वैश्य) में और सब देखने वाले जीव का प्रिय बना। [श्री क्षेमकरण दास त्रिवेदी]

इस पर महर्षि-भाष्य नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ८ में महर्षि के लेखक के प्रमाद से यह मन्त्र यजुर्वेद का बताया है और 'अर्य' को 'आर्य' पाठ मानकर अर्थ लिखा है। —वीरेन्द्र सरस्वती

वेद का अनर्थ (२१) इन्द्रायेन्दो परिस्रव में कोई कहानी नहीं। हे इन्दु! तू इन्द्र के लिए बढ़

स्वामी गङ्गेश्वरानन्द उदासीन ने वेदप्रदीप दिसम्बर ९० के अंक में पृष्ठ १८ पर अपनी वेदोपदेश-चन्द्रिका के श्लोक ८६-९० में ऋग्वेद ९-११३-३ में सोम-श्रद्धा और १०.२८.१ में बसुक्र-पत्नी की कहानी का होना बताया है जो असत्य है। सृष्टि के आदि में ईश्वर-दत्त वेद में कहानी नहीं हो सकती, इन्द्रायेन्दो परिस्रव १९ मन्त्रों [९-११२ के ४, १३ के ११ और १४ के ४] ऋ के अन्त में आया है इसे विदेशी निरर्थक, या सायण सोम निचोड़ने के समय ध्रुपद राग की टेक और क्षयरोगी जामाता चन्द्र की नीरोगता के लिए प्रजापति की प्रार्थना बतायें किन्तु सच्चा अर्थ महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि के संन्यास संस्कार में किया है, पाठक वहाँ देखें।

हे इन्दु परमात्मा के लिए तू ऐश्वर्य बढ़ा। हे जीव, और हे संन्यासी! तू ऐश्वर्य बढ़ा।

ऋ १०-२८-१ में कहानी बतायी कि वसुक्र ने सोमयाग में पिता इन्द्र को नहीं बुलाया। जब पत्नी ने उसे नहीं देखा तो कहा कि मेरे ससुर नहीं आये। किन्तु ऋषिका होने पर भी मन्त्र में नाम नहीं—

विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो नाजगाम।
जक्षीयाद् धाना उत सोमं पपीयात् स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् ॥

(यज्ञ में संयोजक देखे कि) अन्य सब पूज्य तो आये, आश्चर्य है कि मेरा ससुर (पूज्य स्वामी, या पति-पत्नी का पिता आदि मान्य सम्बन्धी) नहीं आया। यदि आते तो वह भी खीलें (नमकीन आदि) खाकर और सोम पीकर तृप्त होकर घर जाये। अतः इसमें कहानी नहीं। [वी० सरस्वती]

समाचार

उ०प्रदेशीय आ०प्र०सभा का निर्वाचन ९ दिसम्बर को हुआ। अधिकारी पहले के ही रहे।
वहीं १६-१२-९० रविवार को प्रातः ८ बजे लखनऊ तथा उ०प्रदेशीय विश्व वेदपरिषद् की बैठक हुई।

दिल्ली में २३ से २६ दिसम्बर तक अन्ताराष्ट्रिय सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन होगा।

विश्व वेदपरिषद् लखनऊ की मासिक वेद-सङ्गोष्ठी मार्गशीर्ष पूर्णिमा को प्रातः आर्यसमाज गणेशगंज में और सायं वेदसदन महानगर में हुई जिसमें वेद में १९ बार आये 'इन्द्रायेन्दो परिस्रव' के अर्थों पर विचार किया गया।

शतपथ ब्राह्मण काण्ड ५, अध्याय ५ ब्राह्मण ४

अथ चरक-सौत्रामणी-प्रयोगः, तत्र त्रिपशुबन्धः-सुरानिर्माणम्-पितृणामुपस्थानादिकञ्च ।

श्वेत पशु अश्विओं से सम्बन्धित है, अश्वी उसके समान हैं। भेड़ सरस्वती की है। सुत्रामा इन्द्र के लिए बैल पाता है। समृद्ध पशु दुष्प्राप्य हैं, यदि न मिलें तो अजों को ही ले, वे सुलभ हैं। लाल बकरा अश्विओं का है। इनका प्रदर्शन करे। १

त्वष्टा का पुत्र त्रिशीर्षा ६ आँख का था, उसके ३ ही मुख थे अतः विश्वरूप नाम था। २

एक सोम, दूसरा सुरा, तीसरा अन्य खाने के लिए। उसने इन्द्र ने द्वेष कर वे सिर काट दिये। ३

सोमपान-मुख से कपिञ्जल हुआ जो भूरा सा होता है, सोम राजा भी भूरा है। ४

सुरापान-मुख से कलविंक हुआ अतः वह शराब पीकर मत्त की तरह बोलता है। ५

अन्य खानेवाले मुख से तीतर हुआ अतः वह विश्वरूप की तरह पत्तोंपर चुई घी-शहद-बिन्दुवत् है। ६

वह त्वष्टा क्रुद्ध हुआ कि मेरे पुत्र को क्यों मारा, अतः इन्द्र से सोम छीन लिया। ७

इन्द्र ने देखा कि मुझे सोम से अलग करते हैं, अतः जैसे बली निर्बल पर वैसे बिना कहे द्रोण-कलश में रक्खा शुक्र खा लिया जिसने हानि की, वह सभी प्राणों से फूट पड़ा, मुख से ही नहीं, यदि मुख से ही निकलता तो प्रायश्चित्त न हो पाता। ८

४ वर्ण हैं— ब्राह्मण-राजन्य-वैश्य-शूद्र ; इनमें कोई सोम का वमन नहीं करता; यदि हो तो प्रायश्चित्त भी कर ले। ९

सोम जो नाक से निकला तो सिंह हुआ, कानसे बहा भेड़िया, वाणी-प्राण से बहे से चीता आदि हिंसक पशु बने। उत्तर-प्राण के बहे सोम से परिस्रुत्, ३ बार थूकने से कुवल-कर्कन्धु-बेर बने। वह सोम सब ओर से बढ़ा सर्व सोम हो गया। १०

वह सोम से अति पवित्र होकर मंकु के समान विचरने लगा। इस सौत्रामणी से अश्विओं ने उस का अभिषेक किया, वह समृद्ध हो यज्ञ कर निवास योग्य हुआ। ११

वे देव बोले— यहाँ दोनों अश्वी सुत्रा (अच्छे रक्षक) होकर रहे अतः सौत्रामणी नाम है। १२

वह अध्वर्यु सोमपूत राजा की इस याग से भी चिकित्सा कर सर्व समृद्ध करे। १३

अतः इससे राजसूय-याजी यज्ञ करता है कि यह सब यज्ञ-क्रतु-इष्टि-दर्विहोमों को रुद्ध कर देगा यह हवि देव-निर्मित है, इससे मेरा भी लाभ हो, अतः इसे मैं भी करूँ। १४

अब वह आश्विन होता है क्योंकि अश्वी इसके वैद्य हो जाते हैं। १५

अब सारस्वत बनता है, क्योंकि सरस्वती (वाणी) से ही अश्वी इसका अभिषेक करते हैं। १६

अब ऐन्द्र बनता है क्योंकि इन्द्र यज्ञ का देवता है उसी से वह इसकी चिकित्सा करता है। १७

इन पशुओं में शेर-भेड़िया-चीते के लोम कहकर आवपन करता है। ये सोम के अतिपान के समय हुए थे, इससे उसे समृद्ध, पूर्ण करता है। १८

परन्तु ऐसा न करे। जो यह करता है वह मानो मुख वाली उल्का से पशुओं को धकेलता है। अतः परिस्रुत्या से आवपन करे। इससे पशुओं को नहीं धकेलता। उसे समृद्ध-पूर्ण भी करता है। १९

अब पूर्ण दिन परिस्रुत का सन्धान करता है—

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व। (यजु १०.३०)

[अश्वी-सरस्वती-इन्द्र के लिए तू परिपक्व हो।] अब परिस्रुत से यज्ञ करता है। २०

दो अग्नियाँ रखते हैं— उत्तरवेदि में ही उत्तर और उद्धत में दक्षिण, क्योंकि ऐसा न हो कि सोम-सुरा का साथ ही होम हो, जब घी से और जब परिस्रुत से यज्ञ करता है। २१

उसे दर्भों से यह यजु १०-३१ पढ़कर पवित्र करता है—

वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्‌ सोमो अति स्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥

[हे राजन्! तू वायुवत् पवित्र हो, सोमवत् पूजित अतिज्ञानी बनकर ईश्वरका योगी मित्र बन।]

कुवल-कर्कन्धु-बेर के सत्तुओं का आवपन करता है, ये तब हुए थे जब ३ बार सोम उगला था, उनसे इसे समृद्ध-पूर्ण करता है। २२

अब एक या ३ ग्रह लेता है, एक ही ले, क्योंकि १-१ ही पुरोरुक्-अनुवाक्या-याज्या होती है। २३—

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति। उपयाम-गृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे॥ (यजु १०-३२)

[जैसे जौ वाले जौ काटकर भूसा अलग करते हैं वैसे ही इन वृद्धोंका भोजन बना जो कुशों पर बैठकर नमः कहते हुए यज्ञ करते हैं। तू अश्वी-सरस्वती सुत्राता इन्द्र के लिए परिपक्व हो।]

यदि ३ ले तो इसी से ले, उपयामों से ले तो नाना ले। अब कहता है- अश्वी-सरस्वती-सुत्रामा इन्द्र के लिए मन्त्र बोल। वह पीछे कहता है—

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम्॥ (य १०-३३)

[हे सत्य से रक्षक, शुभ के पालक, सभा-सेना-पति! तुम मेघवत् व्यवहार में स्वकर्म न छोड़ते हुए कर्मों में सुरम्य धनिक की रक्षा करो।]२४

यह आश्रावण कर कहता है कि इनका यज्ञ कर। वह इस यजु १०-३४ से यज्ञ करता है—

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः। यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक्।

[हे धनी राजन्! तू शक्तियों से अच्छा रम्य रस पी, सरस्वती तुझको सेवन करे। हे सभा-सेना-पति! तुम दोनों काव्यों-कर्मों से रक्षा करो जैसे माता-पिता सन्तान की रक्षा करते हैं।]२५

दो बार होता वषट्, दो बार अध्वर्यु आहुति करता है, यदि ३ ग्रह ले तो भक्ष लाता है; इस के अन्य दो का होम किया जाता है। २६

अब कुम्भ सौ या ९ छेदोंवाला होता है, यदि सौ वाला हो तो यह राजा शतायु-शततेज-शतवीर्य यदि ९ वाला हो तो पुरुष के शरीर के ९ प्राण पुष्ट हों। २७

उसको छींके पर टाँगकर आहवनीय के ऊपर रखते हैं, वह बची परिस्रुत को सींचता है, जिस बिखरता को सोमवत्-बर्हिषद्-अग्निष्वात्त पितरों को तीन-तीन ऋचाओं से देता है जहाँ पर कि सोम ने इन्द्र को अति पवित्र किया था, वह पितरों तक गया; तीन ही पितर हैं, उसीसे इसे पूर्ण करता है। २८

अब ये हवियाँ बनाता है- सावित्र १२ या ८ कपाल पुरोडाश, वारुण जौ-चरु, ऐन्द्र ११कपाल पुरो.। १६

सविता देव-प्रेरक है उससे प्रेरित ही यह समर्थ होता है अतः सावित्र हवि है। ३०

वरुण अर्पयिता है अतः वारुण हवि है। ३१

इन्द्र यज्ञ-देवता है अतः ऐन्द्र हवि है। ३२

वह यदि चाहे तो इससे भी सोमातिपूत की चिकित्सा करे। अव्यूढ स्रुक् में अनुयाज इष्ट होते हैं। इन हवियों से यज्ञ करता है पीछे ही सोम अतिपूत होता और इसे मेधयुक्त करता है, तब २ कपाल का आश्विन पुरोडाश बनाये। ३३

परन्तु ऐसा न करे। ऐसा करनेवाला यज्ञपथ से गिर जाता है अतः जब घी से आहुति दे तभी इन हवियों से, तब आश्विन २ कपाल पुरोडाश न बनाये। ३४

उसकी दक्षिणा नपुंसक बैल है। नपुंसक बैल न स्त्री है न नर, यदि नर कहो तो स्त्री नहीं, यदि स्त्री कहो तो नर नहीं, अथवा रथवाही घोड़ी, क्योंकि वह न स्त्री है न नर, क्योंकि रथ चलाती है अतः स्त्री नहीं; क्योंकि स्त्री है अत नर नहीं। ३५

❀ अध्याय ५ का ब्राह्मण ४ समाप्त ❀

ब्राह्मण ५

त्रैधातवी इष्टि

इन्द्र-विष्णु का १२ कपालों का पुरोडाश बनाता है तब इससे यज्ञ करता है। पहले ये ऋचाएँ-यजु-साम वृत्र के पास थीं। उस पर इसने वज्र-प्रहार करना चाहा। १

वह विष्णु से बोला— मैं वृत्र को वज्र मारूँगा मेरे पीछे रह, विष्णु बोला— अच्छा, मैं पीछे रहूंगा, मार। उस के लिए इन्द्र ने वज्र उठाया, वह वृत्र उद्यत वज्र से डरा। २

वह बोला— यह वीर्य है अतः तुझे देदूं, मुझे न मार, यह कहकर यजु दे दिये, दुबारा उठाया। ३

पूर्ववत् कहकर ऋचाएँ देदीं, तिबारा उठाया। ४

पूर्ववत् कहकर साम दे दिये। अतः इन वेदों से यज्ञ किया जाता है, पहले यजुओं से हो, पुनः ऋचाओं-सामों से। इस प्रकार ये वृत्र ने दिये। ५

उसका जो योनि-स्थान था उसका पता लगाकर लूट कर नष्ट किया तब यह इष्टि हुई। क्योंकि इस स्थान पर ३ धातुओं के समान यह विद्या होती थी अतः त्रैधातवी नाम पड़ा। ६

ऐन्द्रा-वैष्णव हवियाँ इसलिए हैं कि इन्द्र ने वज्र उठाया, विष्णु साथ रहा। ७

१२ कपाल यों कि १२ मास संवत्सर के हैं और उतने दिनों की ही यह है। ८

दोनों के लिए चावल-जौ लेता है, पहले चावलमय-पिण्ड लेता है जो यजुओं का रूप है फिर जौ का जो ऋचाओं का है, फिर चावलों का, वह सामों का है। ये त्रयी विद्या के रूप हैं। यह राजसूय-याजी की उदवसानीया इष्टि है। ९

वह सब यज्ञक्रतु-इष्टि-दर्वीहोमों से बड़ा राजसूय भी तीनों वेदों से पुनः यज्ञ से सफल होता है। १०

यह त्रैधातवी इष्टि देव-सृष्ट है इसे करूँ; मेरा भी कल्याण हो, अतः यह अन्तिम है। ११

जो सहस्र वा अधिक दान करे उस के लिए भी यह है क्योंकि ऐसे दानी को भी वाणी के सहस्रों मन्त्रों वाले ये तीनों वेद ही तृप्त करते हैं। १२

और जो १ वर्ष या अधिक तक दीर्घसत्र करते हैं जिन्हें सब मिल जाता है उनके लिए भी यह है। १३

और इस से भी अभिचार करे। अजातशत्रु-पुत्र भद्रसेन पर आरुणि ने इसी से अभिचार किया शीघ्र फलीभूत हुआ। यह याज्ञवल्क्य ने भी बताया। इसीसे इन्द्र ने वृत्र का स्थान नष्ट किया, और करता है अतः इससे भी अभिचार करे। १४

और इससे चिकित्सा भी करे क्योंकि यदि एक ही ऋग्-यजु-साम नीरोग करे तो ३ वेद क्यों नहीं? १५

उसके लिए सोने के ३ शतमान दक्षिणा हैं उन्हें ब्रह्मा के लिए देता है। वह न आहुति देता न मन्त्र पढ़ता है, न ही साम से कुछ करते हैं, केवल वह यश है। १६

तीन गौएँ होता के लिए, क्योंकि तीन गौएँ भूमा हैं और होता भी भूमा है। १७

३ वस्त्र अध्वर्यु के लिए क्योंकि वह यज्ञ तानता है और वस्त्र भी तनते हैं, वा अग्नीत् के लिए। १८

ये बारह या तेरह दक्षिणाएँ होती हैं, इतने ही मास संवत्सर के होते हैं जिससे मित यह इष्टि है। १९

यह वेदोप वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती द्वारा हिन्दी में अनूदित सम्पादित शतपथ ब्राह्मण का अध्याय ५, और उसमें ब्राह्मण ५, प्रपाठक ४, काण्ड ५ समाप्त हुआ। ❀

सूक्त ७८ । अग्नि । मुक्ति

१६३८ वि ते मुञ्चामि रशना वि योक्त्रं वि नियोजनम् । इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने ॥ १

३९ अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।
दीदिह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु ॥ २

हे अग्नि (गतिशील जीव)! मैं तेरी रस्सी-योक्त्र-नियोजन [३ पाश] खोलता हूं, यहीं तू सुख से रह । १
हे अग्नि (ऋषि), इस जीव के लिए क्षात्र-बल-धारक तुझे दिव्य वेद-ज्ञान से युक्त करता हूं हमारे लिए यहाँ तू कल्याण-धन दे, तू ने इस जीव को विद्वानों में अन्न-दाता बताया है। २

सूक्त ७९ । अमावास्या । तिथि, स्त्री, ब्रह्म-शक्ति

४० यत्ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥ १

४१ अहमेवास्म्यमावास्या मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे ॥ २

४२ आगन् रात्री सङ्गमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ॥ ३

४३ अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४

हे अमावस्या, तेरे महत्त्व से एकत्र निवास करनेवाले विद्वान् जो भाग वनाते हैं उससे हमारे यज्ञ को पूर्ण कर । हे सब के द्वारा वरणीय, उत्तम, ऐश्वर्यशाली, तू हमें उत्तम वीरतापूर्ण ऐश्वर्य प्रदान कर ॥ १
मैं ही अमावास्या हूं । मेरे आश्रय में स्थित ये अच्छे कर्म करने वाले मुझे लक्ष्य में रखकर रहते हैं। ईश्वर को बड़ा माननेवाले सभी विद्वान् और साधक दोनों मुझमें आकर मिलते हैं। २
सब गृहवासियों को मिलानेवाली, पुष्टि-बल-धन को देनेवाली, रात्रि आगयी । हम अमावास्या के लिये यज्ञ करें। वह अन्नरस प्रदान करती हुई, दूध के पुष्टिकारक पदार्थों के साथ, हमें प्राप्त हो। ३
हे अमावास्या ! तुझसे भिन्न कोई चारों ओर से घेरकर इन सब रूपोंको नहीं वना सकता। जिस कामनाको रखनेवाले हम तुझसे सम्बन्धित यज्ञ करें वह हमें प्राप्त हो। हम सब ऐश्वर्योंके स्वामी बनें । ४

सूक्त ८० । पूर्णिमा

४४ पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥ १

४५ वृषभं वाजिनं वयम्पौर्णमासं यजामहे । स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् ॥ २

४६ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

१६४७ पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ।। ४

पीछे से, आगे से और बीच से पूर्ण पौर्णमासी सबसे उत्कृष्ट है । उसमें विद्वानों के साथ महिमा से रहते हुए हम सुख के स्थान पर आनन्दित रहें । १

हम श्रेष्ठ, सुखवर्धक पौर्णमास यज्ञ को सम्पन्न करें । वह हमारे लिये अक्षय, और न घटनेवाले ऐश्वर्य को प्रदान करे । २

हे प्रजा के रक्षक स्वामी सर्वव्यापक, तुझ से भिन्न अन्य कोई इन रूपों को नहीं उत्पन्न कर सकता । जिस कामनावाले हम तेरा यज्ञ करते हैं वह हमारी कामना पूरी हो । हम ऐश्वर्यों के स्वामी हों । ३

पौर्णमासी सब दिनों और सब रात्रियों के अत्यन्त अन्धकारों में प्रथम यज्ञ करनेयोग्य हुई है । हे पूजनीय, जो तुझको यज्ञों से समृद्ध करते हैं, वे ये सभी अच्छे कर्म करनेवाले सुख में, सुख के साधनों में और मोक्ष में प्रविष्ट होते हैं । ४

सूक्त ८१ [सूर्य और चन्द्र]

४८ पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ।। १

४९ नवो नवो भवसि जायमानो अह्ना केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागन्देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ।। २

५० सोमस्यांशो युधाम्पते अनूनो नाम वा असि । अनूनन्दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च ।।३

५१ दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।
समग्रः समन्तो भूयासङ्गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ।। ४

५२ यो अस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।
आ वयम्प्याशिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ।। ५

५३ यन्देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिराप्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ।। ६

ये दोनों शक्ति से आगे पीछे चलते हैं खेलते हुए रिपु के समान अन्तरिक्ष में गति करते हैं । सूर्य सब भुवनों को प्रकाशित करता है और चन्द्र ऋतुओं को बनाता हुआ नये रूप से प्रकट होता है । १

चन्द्र प्रकट होता हुआ नया-नया होता, दिनों का सूचक, उषाओं के पूर्व आता है । देवों के लिए उनका विशेष भाग देता है । चन्द्र आयु लम्बी बनाता है । २

योधाओं का रक्षक सोम का अंश अति यशस्वी है, दर्शनीय तू मुझे पूजा-धन से यशस्वी कर । ३

दर्शनीय तू दर्शनका स्वामी; सम्पूर्ण गुणी, कलायुक्त है; मैं गौ-अश्व-प्रजा-पशु-घर-धन-युक्त बनूँ । ४

जो हमसे, जिससे हम द्वेष करते हैं उनके साधनों से हमें बढ़ा, हम गौ-अश्व-प्रजा-पशु-घर-धनसे बढ़ें । ५

जिसे किरणें बढाती, अमर जीव खाते उस सोम से इन्द्र-वरुण-बृहस्पति हमें बढ़ायें । ६

अनुवाक ८, सूक्त ८२ से ९० तक

विषय— ईश्वरप्रार्थनादि०, घृत-वरुण-इन्द्रादि०, रक्षार्थ०, जलतेजोऽसि-पदार्थविद्या (महर्षि दयानन्द)

सूक्त ८२। अग्नि (परमात्मा)

१६५४ अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम् ॥ १

५५ मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् ॥ २

५६ इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा निक्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।
क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥ ३

५७ अन्वग्निरुषसामग्रमख्यद् अन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ४

५८ प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ॥ ५

५९ घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे ।
घृतं ते देवीर्नप्त्य आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने ॥ ६

१९५४ हे विद्वानो ! उत्तम प्रशंसनीय, पृथ्वी-हितकारी प्राप्तव्य परमात्मा की उपासना करो, हममें कल्याण-कारी ज्ञान-बल-धन धारण कराओ, हमारा यह यज्ञ आगे बढ़ाओ, मधुर घी-धाराएँ बहें । १

पहले मैं क्षात्र-शूरता, ज्ञान-तेज और बल के साथ अपने में परमात्मा को, फिर प्रजा-आयु-यज्ञाग्नि को धारण करूँ । यह सुवचन है । २

हे अग्नि(परमात्मन्-नेता)! हमें यहीं ऐश्वर्य धारण करा, पहले से घातक अपकारी तुझे नीचा न कर सकें, हे अग्नि ! तेरे रक्षक बल से सुनियम हो, तेरा उपासक अजेय होकर बढ़े । ३

व्यापक-सर्वज्ञ-प्रकाशमान परमात्मा पहले से ही उषा-दिनों को सूर्य-किरणों से प्रकाशित करता है और द्यौ-पृथिवी के अन्दर सब ओर प्रविष्ट है । ४

पहले व्यापक- सर्वज्ञ अग्नि(परमात्मा)ने उषा का अग्-दिन-सूर्य-अनेक प्रकार की किरणें प्रत्यक्ष करायीं और द्यावा-पृथिवी का विस्तार किया है । ५

हे अग्नि ! तेरा घृत (तेज-प्रेम) दिव्य सह-स्थान (हृदय-यज्ञशाला) में हो, मन तुझे प्रेम-घी से सदा दीप्त रक्खे, उसे तेरी दिव्य नातिनें [पुत्र जीव की पुत्रियाँ, अ-पतित इन्द्रियाँ] धारण करें, उसे तेरे लिए गौएँ [वाणियाँ] दुहाएँ, दें । [अग्नि-घृत के दो-दो अर्थ होने से श्लेष अलङ्कार है । ६

सूक्त ८। वरुण। परमात्मा

६० अप्सु ते राजन्वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः।ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१

१९६१ धाम्नो-धाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः ।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः ॥ २
६२ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ३
६३ प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये
दुःष्वप्न्यं दुरितं निष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ४

१९६० हे राजन् वरुण [दोष-निवारक-वरणीय ईश्वर] ! तेरा तेजोमय घर आपः [लोक-प्रजा-प्राणों] में है अतः नियम-धारक तू सब बन्धन खोल दे। १

हे राजन् वरुण ! यहाँ से हमें प्रत्येक बन्धन से छुड़ा, हम जो कहते हैं कि आपः अहिंसनीय हैं, तू वरुण [बन्धन-निवारक] है अतः हे वरुण ! हमें मुक्त कर। २

हे वरुण, हमसे उत्तम (सात्विक-आत्मिक-सिर के), मध्यम (राजसिक-मानस शरीर-मध्य के), अधम (तामस-शारीरिक-शरीर निम्नभाग के) बन्धन ढीले कर, हे अखण्ड ईश्वर ! और हम तेरे नियम में निष्पाप रह कर अखण्ड मोक्ष के योग्य हों। (ऋ १.२४.१५, य.१२.१२अ. १८.४.६९ में भी) है।

हे वरुण ! हमसे वे सब पाप अच्छे प्रकार दूर कर जो उत्तम से अधम तक हैं, बुरे सपने, दुष्ट आचरण, दुःख-दुर्गुण-दुर्व्यसन दूर कर, हम पवित्र स्थान-जन्म पायें। ४

सूक्त ८४ अग्नि, इन्द्र। राजा, सेनापति

६४ अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह ।
विश्वा अमीवाः प्रमुंचन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परिपाहि नो गयम् ॥ १
६५ इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजो अजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥ २
६६ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात्परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ ३

हे अग्रणी ! तू अजेय-ज्ञान-धन-युक्त-यशस्वी-महान्-क्षात्रय-पोषक होकर यहाँ प्रकाशित हो। सब रोग दूरकर मानवीय शुभ साधनों से हमारे घर की सदा रक्षा कर। १

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ सेनापति, तू अच्छे क्षात्र-बल के लिए पैदा हुआ है, शत्रुता करने वाले को हटा और विजयेच्छुओं को बड़ा स्थान दे। २

हे सेनापति ! तू टेढ़े चलने वाले भयंकर पहाड़ी पशु के समान पास और दूर आक्रमण कर। बाण-वज्र शस्त्र तीक्ष्ण कर शत्रुओं की विशेष ताड़ना कर और हिंसकों को नष्ट कर। ३

यह मन्त्र ऋ १०-१८०-२, यजु १८-७१ में भी है।

सूक्त ८५। तार्क्ष्य। वेगवान् राजा

१९६७ त्यमूषु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १

बलवान्-अन्नयुक्त-विद्वत्पूजित-शक्तिशाली, रथों को वेग से चलानेवाले, सुदृढ़ शस्त्रयुक्त, शत्रुसेना के जेता शीघ्रकारी, महारथी राजा को हम यहाँ कल्याण के लिए बुलायें । १
[यह ऋ १०.१७८.१, साम पू ४-५-१ और निरुक्त १०-२८ में भी है ।]

सूक्त ८६ । इन्द्र

६८ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् कृणोतु ॥ १

पालक-रक्षक-प्रत्येक कार्य में स्मरणीय-शूर-बहुतों से प्रार्थित इन्द्र (ईश्वर-राजा) को याद करूँ, धनी वह हमारा मंगल करे । १ [यह कुछ भेद से ऋ ६-४७-११, य २०-५०, साम पू ४.५.२ में है ।]

सूक्त ८७ । रुद्र

६९ यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥ १

जो रुद्र अग्नि-जल-औषधि-वनस्पतियोंमें अन्दर व्यापक, जिसने सब भुवन रचे, उस अग्नि को नमः । १

सूक्त ८८ । विद्वान् । सर्प-विष-चिकित्सा

७० अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि। विषे विषमपृक्था विषमिद्वा अपृक्थाः। अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि॥ १

दूर हो; तू शत्रु, निश्चय शत्रु है, विषमें विष मिलाओ, उसका प्रयोग करो, साँप के पास जा, उसे मार । १

सूक्त ८९ । अग्नि, आपः, समिद् ।

७१. अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि । पयस्वानग्न आगमं तं मा संसृज वर्चसा ॥ १
७२. सं माग्ने वर्चसा सृज संप्रजया समायुषा। विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सहऋषिभिः ॥ २
७३. इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ॥ ३
७४ एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय । तेजोसि तेजो मयि धेहि ॥ ४

मैं दिव्य जल(वर्षा का और शुण्डा यन्त्र-शोधित)संचित करूँ, उसे रस से मिलायें, हे अग्नि(वैद्य), दूध-युक्त मैं आऊँ तो तू मुझे तेज से युक्त कर । १ (य २०-२२ में भी)
हे अग्नि ! मुझे वर्च-प्रजा-आयु से युक्त कर, विद्वान्, ऋषियों के साथ राजा मुझे जानें । २
[ये २ मन्त्र आगे १०-५-४६, ४७ भी हैं अर्थ भिन्न है ।]
हे आपः(व्यापक ईश्वर, जल और आप्तों)! जो निन्द्य और मल और जो कुछ द्रोह-असत्य हो और जो निडर जन से दुर्वचन बोले हों उन्हें बहा दो । ३ [यजु ६-१७ में भी है]
तू बढ़ा है, मैं बढ़ूँ, तू दीप्त है मैं दीप्त होऊँ, तू तेज है मुझमें तेज धारण कर । ४ (य २०-२३ में भी)

सूक्त ९० । इन्द्र

७५ अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम् । ओजो दासस्य दम्भय ॥ १
७६. वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण विभजामहै। म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते ॥ २

[ये २ मन्त्र कुछ भेद से ऋ ८-४०-६ में हैं ।]

१६७७ यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावया:। अवस्थस्य क्नदीवत: शाङ्कुरस्य नितोदिन:। यदाततमव तत् तनु यदुत्ततं नि तत् तनु।। ३

हे सेनापति! शत्रू-बल को लता की पुरानी गाँठ के समान काट और दबा। १
हम सेनापति से एकत्रित उसका वह धन बाँट लें,हे शत्रु! राजा के व्रत से तेरी तमक-ढिटाई मिटादूँ।।२
जैसे नीच-गाली देनेवाले-चुभनेवाले दुष्ट का बल दूर हो, स्त्रियों पर न चले वैसे जो फैला और ऊपर बढ़ा पाप है वह नीचा-नष्ट हो। ३ * अनुवाक ८ समाप्त हुआ। ❀

अनुवाक ९ सूक्त ९१-१०२

विषय—इन्द्र-स्त्री-पुरुष-व्यवहार-यज्ञादीश्वर प्रार्थनाद्यनेकविध पदार्थविद्या (महर्षि दयानन्द)

सूक्त ९१। इन्द्र

७८ इन्द्र: सुत्रामा स्ववाँ अवोभि: सुमृडीको भवतु विश्ववेदा:। बाधतां द्वेषो अभयं न: कृणोतु सुवीर्यस्य पतय: स्याम।। १

उत्तम रक्षक-आत्म-विश्वासी धनी राजा रक्षाओं से सुखद हो,दुष्ट हटा हमें अभय दे, हम बड़े बल के पति हों। १ [यह ऋ ६-४७-१२, १०-१३१-६, य २०-५१ में भी कुछ भेद से है।]

सूक्त ९२। इन्द्र

७९ स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेष: सनुतर्युयोतु। तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।। १

वह बड़ा रक्षक-धनी राजा हमसे शत्रू को निश्चय दूर हटाये, हम उस पूज्य के सुमति-भद्र-सुमनोभाव में रहें। [यह कुछ भेद से ऋ ६-४७-१३, १०-१३१-७, य २०-५२ में भी है।]

सूक्त ९३। इन्द्र

८० इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यत:। घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति।। १

हम राजा के साथ मन्यु से दुष्टों को पूर्णत: नष्ट करते हुए आक्रमणकारियों को हटा दें। १

सूक्त ९४। इन्द्र

८१ ध्रुवं ध्रुवेण हविषाव सोमं नयामसि। यथा न इन्द्र: केवलीर्विश: संमनसस्करत्।। १

हम दृढ़-सोम शासक को दृढ़ता से अपनायें जिससे वह अनन्य प्रजा को हृष्टमन रख सके।१

सूक्त ९५। २ गिद्ध काम-क्रोध

८२ उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततु:। उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृद:।।१
८३ अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव। कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव।। २
८४आतोदिनौ नितोदिनावथो संतोदिनावुत।अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इत:स्त्री पुमान्जभार।।३

इस जीव के दो गतिशील-व्यथाकारी-लोभी गिद्ध (काम-क्रोध) मानो आकाश में उड़ते हैं। वे शोक को अधिक बढ़ाने वाले और हृदय के सुखाने वाले हैं। १
मैं थके साँडों, चिल्लाने वाले कुत्तों, आक्रामक भेड़ियों के समान इन दोनों को हटा दूँ। २

सब ओर से नित्य बहुत सताने वाले इन दो को जिस स्त्री-पुरुष ने लिया उसके बल को बाँध दूँ। ३

सूक्त ६६ । प्रजापति

८५. असदन्गावः सदनेऽपप्तद्वसतिं वयः। आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् ॥

गौएँ गौशाला में बैठती, पक्षी घोंसले पर गिरता, पर्वत अपने स्थान पर हैं, मेरे वृक्क स्वस्थान पर रहें।

सूक्त ९७ । इन्द्र–विश्वेदेवाः–यज्ञ

१६८६ यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह ।
ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् ॥ १

८७ समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवाना सुमतौ यज्ञियानाम ॥ २

८८ यानावह उशतो देव देवांस् तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥ ३

८९ सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आ जग्म सवने मा जुषाणाः ।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुङ्घर्मं दिवमा रोहतानु ॥ ४

६० यज्ञ यज्ञङ्गच्छ यज्ञपतिङ्गच्छ । स्वां योनिङ्गच्छ स्वाहा ॥ ५

६१ एष ते यज्ञो यज्ञपते सह सूक्तवाकः । सुवीर्यः स्वाहा ॥ ६

६२ वषड् ढुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥ ७

६३ मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् ।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ॥ ८

ज्ञानी होता को यत्न-साध्य इस यज्ञमें यहाँ वरण करें,वह बली निश्चय आये और सोम-पान करे। १
हे राजा! तू हमें मन-वाणी से सुपथ पर विद्वान्के ज्ञान के साथ यज्ञिय देवोंकी सुमतिमें स्वस्त्यर्थ चला। २
हे देव! जिन विद्वानों को बुलाये उन्हें स्वस्थान में लेजा, हे श्रेष्ठो, मधुर खा-पीकर इसे ज्ञान-धन दो। ३
हे विद्वानो!तुम्हें घर सुलभ किये,तुम यज्ञमें सप्रेम आये, अपने धन लेकर उत्तम तेजस्वी पद पर चढ़ो। ४
हे दानी ! तू यज्ञ और यज्ञ-पति परमात्मा को पहुँच, सत्य-क्रिया से अपने आश्रम को जा। ५
हे यज्ञ -पति ! यह तेरा यज्ञ उत्तम वेदवाणी और उपदेशों से शक्तिशाली हो, यह सुवचन है। ६
दिये-न दिये दोनों के लिए सत्य हो, हे धर्म-मार्ग जाननेवाले विद्वानो ! उसे जानकर उस पर चलो।७
हे मनके पति ! मैं अपने इस यज्ञ-विज्ञान को देवों में आकाश-पृथिवी-अन्तरिक्ष-वायु में प्रयुक्त करूँ। ८

सूक्त ९८ । इन्द्र

६४ सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥ १

पुरुषार्थी जीव ज्ञान-तेज-ऐश्वर्य-प्राण-सब दिव्य गुण-युक्त होकर परमात्मा(मोक्ष) को प्राप्त करे।

सूक्त ९६ । यजमान

१९९५ परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामिं मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके ।। १

विद्या-वेदि फैला, इससे सोते जनको वंचित न रख, दानी-गृह हरा-भरा स्वर्णमय हो, उसमें निष्क हों

सूक्त १०० । ब्रह्म

९६, पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात्पापात्स्वप्न्यादभूत्या । ब्रह्माहमन्तरङ्कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः

मैं बुरे स्वप्न-पाप-निर्धनता से अलग रहूं, ब्रह्म को अपने में प्रत्यक्ष कर सपने के शोक दूर करूँ ।

सूक्त १०१ । प्रजापति

९७. यत्स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते । सर्वन्तदस्तु मे शिवं नहि तद्दृश्यते दिवा ।।

जो सपने में अन्न खाता हूं वह प्रातः नहीं मिलता, वह सब मुझे शुभ हो जो दिन में नहीं दीखता

सूक्त १०२ । देवता मन्त्रोक्त

९८, नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे । मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्मा मा हिंसिषुरीश्वराः

द्यावापृथिवी-अन्तरिक्ष-मृत्यु को आदर से देखकर मैं ऊँचा होकर चलूँ, बली मुझे न मार सकें ।*

अनुवाक दस सूक्त १०३ से ११८ तक

विषय- प्रश्नोत्तरादि०, ईश्वराग्न्यादि०, सोम ब्रह्मचर्यादि०, इन्द्राग्नीश्वरप्रार्थनाऽलक्ष्मीनाशार्थ-लक्ष्मी-प्राप्त्यर्थादि-पदार्थविद्या (द ०)

सूक्त १०३ । क (प्रजापति)

१९९९. को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन् ।
को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः ।। १

प्रश्न- कौन ? उत्तर- प्रजापति क्षत्रिय राजा धन को चाहता हुआ निन्दनीय द्रोह से हमें अलग लेजाये, यज्ञ-परोपकार की कामना वाला वही विद्वानों में दीर्घ आयु देता है । १

सूक्त १०४ । आत्मा

२०००. कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम् ।
बृहस्पतिना सख्यञ्जुषाणो यथावशन्तन्वः कल्पयाति ।। १

प्रजापति वरुण (परमात्मा) द्वारा निःसंशय जन को दी गयी, दुःख से दुह्य (प्राप्य), नित्य मन-वत्स वाली, पूछनेयोग्य वेदवाणी-गौ को, आचार्य से वश के अनुसार शरीर की मित्रता कर, देता है । १

सूक्त १०५ । विद्वान्

१, अपक्रामन्पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः । प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ।। १

पौरुषेय कामों से हटता हुआ विद्वान् दिव्य वचन(वेद) सुनता हुआ सब मित्र-सहित नीति को पाले

सूक्त १०६ । अग्नि

२००२ यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः ।

ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ।। १

हे विद्वान्-व्यापक ईश्वर ! यदि हम कुछ भी स्मरण के बिना करें या आचरण में भूल कर बैठें उससे हमारी रक्षा कर, हमारे मित्रों के लिए शुभ कर्म से मोक्ष मिले। १

सूक्त १०७ । सूर्य

३.अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः। आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिस्रसन्।

हे मनुष्य ! सूर्य की ७ किरणें आकाश से समुद्र-जल-धाराएँ उतारती हैं वे तेरा कष्ट हटायें।

सूक्त १०८ । अग्नि

४ यो नस्तायद्दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने ।

प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् ।। १

५ यो नः सुप्ताञ्जाग्रतो वाभिदासात्तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः ।

वैश्वानरेण सयुजा सजोषास् तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः ।। २

हे अग्रणी शासक ! जो अपना या पराया छिपकर या प्रकट, हमें दुःख देना चाहे तो उनको दमनकारी यन्त्रणा दी जाए, इनका घर-सन्तान न रहने पाये। १

हे स्थिति जानने वाले शासक ! जो सोते-जागते-खड़े-चलते हमें सताये, तो उन आक्रामकों को तू सर्वहितकारी नेता के साथ मिलकर नष्ट कर। २

सूक्त १०९ । अग्नि-प्रजापति

६ इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी । घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे ।। १

७ घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च ।।

यथाभागं हव्यदातिञ्जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या ।। २

८ अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।

ता मे हस्तौ संसृजन्तु घृतेन सपत्नम्मे कितवं रन्धयन्तु ।। ३

९.आदिनवम्प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभिक्षर। वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति ।।४

१० यो नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च ।

स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम ।। ५

११ संवसव इति वो नामधेयमुग्रम्पश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः ।

तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।। ६

१२ देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम। अक्षान्यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे ।। ७

यह नमस्कार उग्र पोषक के लिए है जो व्यवहारों में शरीर-वशीकर्ता है । मैं प्रेम से कलह शान्त करूँ, वह हमें ऐसी दशा में सुखी करे। १

हे अग्रणी ! तू आप्त प्रजा के लिए घी-प्रेम, व्यवहारों के लिए भूमि-जल प्राप्त करा। विद्वान् भाग के अनुसार लेने योग्य लेते हुए दोनों पाकर हृष्ट रहते हैं। २

प्रजा अन्न-भण्डार और सूर्य के मध्य परस्पर हृष्ट रहती है, वे मेरे हाथ घी-स्नेह से युक्त करें और मेरे ज्ञान-नाशक जुआरी शत्रु का नाश करें। ३

मैं शत्रु से युद्ध करूँ, तू हमें घी आदि से युक्त कर, हमारे आक्रामक को मार, जैसे पेड़ को बिजली। ४

जो हमें व्यवहार के लिए यह धन दे, चरों का ग्रहण-शिक्षण करे, वह राजा हमारे इस कर को स्वीकार करे, हम पृथिवी-धारक अधिकारियों के साथ हृष्ट रहें। ५

हे इन्द्रो (ऐश्वर्यशाली राजपुरुषो)! तुम्हारा नाम संवसु (बसाने वाला) है, तुम उग्र-दर्शी राज्य की पोषक आँख (निरीक्षक) हो, ऐसे तुम्हें हम अन्नादि से सत्कृत करें और ऐश्वर्यों के रक्षक हों। ६

यदि प्रार्थी मैं विद्वान् बुलाऊँ, हम ब्रह्मचर्य पालन करें, पालक सैनिक पा सकूँ तो ऐसे में वे हमें बचायें। ७

सूक्त ११० । इन्द्राग्नी

२०१३ अग्ने इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति । उभा हि वृत्रहन्तमा ॥ १

१४ याभ्यामजयन्त्स्वरग्र एव यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा ।

प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम् ॥ २

१५ उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः । इन्द्र गीर्भिर्न आविश यजमानाय सुन्वते ॥ ३

इन्द्र-अग्नि (सेनापति-मन्त्री) दानी प्रजा के शत्रुओं को सदा मारें, दोनों ही दुष्ट-हन्ता हैं।

जिन के द्वारा प्रजा पहले से ही सुख जीतती है, जो सब भुवन बश में रखते हैं, ऐसे शीघ्रगामी-शूर-शस्त्रधारी-शत्रुहन्ता मन्त्री-सेनापति को मैं बुलाता हूं। २

हे सेनापति! तुझे देव परमात्मा अन्न से सहारा देता है, तू सोमयाजी के लिए प्रशंसा-सहित हमें मिल। ३

सूक्त १११ । ईश्वर ।

१६ इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधान आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।

इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास् ते रमन्ताम् ॥ १

हे ईश्वर ! तू ऐश्वर्य-भण्डार, अमृत-आधार, देवों-मनुष्योंकी आत्मा है, तू यहाँ प्रजा पैदा कर, इनमें जो तेरे जन यहाँ या अन्यत्र हों वे सब प्रसन्न रहें। १

सूक्त ११२ । आपः

१७ शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते । आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १

१८ मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥ २

शोभित द्यौ-पृथिवी सुखद महाव्रती हैं; ७ दिव्य इन्द्रियाँ नेत्रादि हमें मिली हैं वे हमें पाप से बचायें। १

वे इन्द्रियाँ मुझे शाप-वरुणय अपराध-यम के पाश तथा देव-पाप से छुड़ायें। २

सूक्त ११३ । तृष्टिका । तृष्णा ।

१९ तृष्टिके तृष्टवन्दन उदमूं छिन्धि तृष्टिके । यथा कृतद्विष्टासोऽमुष्मै शेप्यावते ॥ १

२० तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि । परि वृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव ॥ २

२०१९ हे निन्दनीय, लोभमयी, लोभ में टिकनेवाली तृष्णा, तू मनुष्य-नाशक, भोगी की दूषणी है। १
हे तृष्णा ! तू लोभी-विषैली-विषमयी, वृषभ द्वारा वन्ध्या गौवत् श्रेष्ठ पुरुष से त्याज्य है। २

सूक्त ११४। अग्नि और सोम

२०२१.आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद्ददे।आ ते मुखस्यसङ्काशात्सर्वं ते वर्च आददे। १
२२.प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः। अग्नो रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः ॥२

हे दुष्ट, तेरी छाती-हृदय-मुख के पास से मैं तेरा सब बल हरण कर लूँ। १
यहाँ से व्याधि-ताप-अयश-दुःख दूर हों, अग्नि राक्षसियों और सोम दुष्प्रवृत्तियों का नाश करे। २

सूक्त ११५। सविता और जातवेदाः

२३.प्रपतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत। अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि। १
२४ या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत् सवितस् तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ॥ २
२५ एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः।
तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नियच्छ ॥ ३
२६.एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव। रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याःपापीस्ता अनीनशम्।४

हे पापी लक्ष्मी, यहाँ-वहाँ से दूर जा, लोहे से दगी तुझे शत्रु के लिए रखते हैं।
हे राजा, जो पतन-कारी-अप्रिय लक्ष्मी वृक्ष से बेल के समान मुझसे चिपटी हो उसे यहाँ हमसे दूर रख और सुवर्ण आदि धन रखने वाला तू हमें उतम धन दे। २
एक सौ (बहुत) लक्षण और मानस-वृत्तियाँ शरीर के साथ जन्म से ही होती हैं उनमें से पापियों को हम यहाँ से निकाल दें। हे धनी ! जो कल्याणमय लक्षण हैं उन्हें हमें दे। ३
जैसे एकत्रित गौएँ पहँचान कर अलग की जाती हैं वैसे हम इन अच्छे-बुरे लक्षणोंको पहचानें, पापी लक्ष्मी और लक्षण नष्ट करूँ और पवित्र यहाँ रहें। ४

सूक्त ११६। प्रजापति। ज्वर

२- नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे। नमः शीताय पूर्वकाम-कृत्वने ॥ १
२८ यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्वव्रतः ॥ २

शरीर में दाह करने वाले, कँपाने वाले, भड़काने वाले, डराने वाले, पहली कामनाएँ काटने वाले शीत-ज्वर को नमः (वज्र-अभ्रक) प्रयुक्त हो। १
जो एकया दोदिन छोड़कर या किसी नियम के बिना अनिश्चित आने वाला हो उस के लिए मण्डूक (मण्डूकपर्णी, मँजीठ, ब्राह्मी और श्योनाक आदि) औषधियो हैं। २

सूक्त ११७। इन्द्र

२०२९ आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।
मा त्वा केचिद् वियमन् वि न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १

हे इन्द्! तू गम्भीर-ध्वनि, मोर-पंखों के समान सुन्दर रोम वाले तेज घोड़ों से आक्रमणकर, पक्षी को जाल वाले चिड़ीमार के समान, तुझे कोई पकड़ न सकें, उनपर धन्वा के समान चढ़। १

इस मन्त्र में वीर रस, ओज गुण, उपमा अलंकार है। यह कुछ भेद से ऋ ३-१-४५, यजुः २०-५६, साम पू० ३-६-४ में भी आया है।

सूक्त। ११८। कवच-सोम-वरुण

२०३० मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृते नानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १

२०३०. (हे सेनापति!) तेरे मर्म स्थानों को मैं कवच से ढँकता हूं, ऐश्वर्यवान् राजा तुझे अमृत (शस्त्र-रक्षित) से ढँके, ईश्वर तुझे बड़े से बड़ा बनाये, विद्वान् तुझ विजयी के पीछे हर्षित हों। १

यह मन्त्र ऋ ६-७५-१८, यजुः १७-४९, साम उ० ९-३-८ में भी है।

अथर्ववेद के वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती कृत हिन्दी अनुवाद में
यह दशम अनुवाक, सत्रहवाँ प्रपाठक, सप्तम काण्ड समाप्त हुआ॥

—*—

❀ ओ३म् ❀
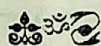
अथर्व वेद कांड ८ सूची

प्रपाठक १८-१६ में ५-५ अनुवाक हैं जिनके विषय महर्षि दयानन्द के अनुसार नीचे अङ्कित हैं-

प्र०	अनु०	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	छन्द	विषय
१८	१	१	२१	ब्रह्मा	आयु	त्रिष्टुप् अनुष्टुप् पंक्ति बृहती जगती	जीवनार्थ-प्रार्थना यमेश्वराग्न्या-
		२	२८	,,	प्रजापति ,,	,, ,, ,, ,, ,,	दि ब्रह्मविद्याद्यनेकविधपदार्थ विद्या
	२	३	२६	चातन	अग्नि	,, ,, गायत्री ,,	दुष्ट-विनाशार्थाग्नीश्वरेन्द्र-सोम-
		४	२५	,,	,, इन्द्र सोम ,,	,, ,,	प्रार्थना
१६	३	५	२२	शुक्र	कृत्यादूषण ,,	,, ,, शक्वरी ,,	वीरयुद्धादि-दुष्टजयार्थ-इन्द्रेश्वर-
		६	२६	मातृनामा	प्रजापति	,, ,, ,, ,, ,,	प्रार्थना-वर्मादि-ऋतुदानगर्भाधाना-
							दि पदार्थ विद्या गर्भरक्षणादि•
	४	७	२८	अथर्वा	ओषधयः	अतिज.,, ,, ,, ,, ,, ,,	वैद्यकशास्त्रोपदेशौषधिपरिगणनद्वा-
		८	२४	भृग्वङ्गिरा	वनस्पति इन्द्र ,,	,, ,, ,, ,, ,,	रा गर्भाधान-संरक्षण धातुरक्षण-
							बुद्धि व दुध्यादि प० इन्द्रजालवाद्युद्धजयादि ०
	५	९	२६	अथर्वा कश्यप	प्रजापति	विराट् त्रि पं अ ज अतिज	प्रश्नोत्तरेश्वराग्न्यादि० प्रश्नोत्तर-
		१०	६७	अथर्वाचार्य	,,	आर्ची पं. याजुषी ज	विराडीश्वराद्यनेकविध० विष-
						साम्नी अ त्रि पं बृ	निवारणादि पदार्थ विद्या।
योग	२	५	१०	२६३			

—ॐ—

अथर्व वेद काण्ड ८

प्रपाठक १८

अनुवाक १ सूक्त १ से २ तक

विषय- जीवनार्थ -प्रार्थना, यमेश्वरात्यादि, ०ब्रह्मविद्याद्यनेकविध पदार्थ विद्या (महर्षिदयानन्द)

सूक्त १। आयु। दीर्घ जीवन

२०३१ अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥ १

३२ उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् । उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥ २

३३ इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ॥ ३

३४ उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य सन्दृशः ॥ ४

३५ तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥ ५

३६ उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ ६

३७ मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥ ७

३८. मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥ ८

३९ श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥ ९

४० मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥ १०

४१ रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्ता रक्षतु त्वा मनुष्या यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्रधाग् विद्युता सह ॥ ११

४२ मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् सङ्कसुकाच्चर । रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च । अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥ १२

२०४३ बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ।। १३

४४ ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ।। १४

४५ जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि ।। १५

४६ मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ।। १६

४७ उत्त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् ।उत्त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ।१७

४८ अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः । इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि ।। १८

४९ उत्त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः ।मा त्वा व्यस्तकेश्यो मा त्वाघरुदो रुदन् ।।१९

५० आहार्षमविदन्त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् २०

५१ व्यवात्ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत् । अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि। २१

२०३१ शरीर का अन्त करने वाली मौत को नमः ।(हे मनुष्य !) तेरे प्राण-अपान यहाँ आनन्द में रहें। यहाँ यह पुरुष जीवन-सहित सूर्य के भाग(पृथिवी)पर अमरता के लोक में रहे । १

सेवनीय सूर्य, किरण-युक्त चन्द्र, वायु-प्राण, विद्युत्-अग्नि कल्याणार्थ पुरुष को उन्नत करें । २
यहाँ तेरे जीवन-प्राण-आयु-मन स्वस्थ रहे। हम तुझे दिव्य(वेद)वाणी से दुःख पाशों से ऊपर करते हैं।३

हे मनुष्य ! मौत की बेड़ी काटता हुआ यहाँ उन्नति कर। नीचे न गिर । इस लोक से अग्नि-सूर्य के सम्यक् दर्शन से अलग न हो। ४

तुझे अन्तरिक्षस्थ वायु पवित्र करे;जल अमृत बरसायें;सूर्य तेरे शरीर के लिए कल्याण-सहित तपे; मौत तुझ पर दया करे; तू दुःखी न हो । ५

हे पुरुष ! तेरी उन्नति हो; अवनति नहीं; तेरा जीवन बलयुक्त बनाता हूं । तू अमर (सौ वर्ष) के सुखद रथ (शरीर) पर चढ़ और स्तुत्य होकर समाज को उपदेश कर। ६

तेरा मन वहाँ अधर्म में न जाये;लुप्त न हो;जीवों के लिए प्रमाद न कर;पितरों के पीछे (बिना विचारे) न जा; सब देव (विद्वान् और प्राकृतिक शक्तियाँ) तेरी यहाँ रक्षा करें ७

गये हुओं का पकट न कर जो धर्म से दूर ले जाते हैं;आ;अज्ञान से हटकर ज्ञान-ज्योति पर चढ़; हम तेरे हाथ पकड़ते हैं। ८

तेरे लिए काले-चितकबरे (रात-दिन, अपान-प्राण) मत सताएँ जो मार्ग रक्षक कुत्तों के समान यम (काल,ईश्वर) के भेजे हुए हैं; आगे बढ़;खेल न कर;यहाँ दुःखी-मन न रह। ९

इस अधर्म-पथ पर न जा, यह भयानक है;जिससे पहले नहीं गया वह तुझे बताता हूं;हे पुरुष ! यह अन्धकार है;पैर आगे न रख;उधर भय है;इधर अभय है। १०

वे अग्नियाँ तेरी रक्षा करें जो जल में हैं, जिन्हें मनुष्य दीप्त करते हैं; वैश्वानर-व्यापक-सर्वज्ञ परमात्मा रक्षा करे, बिजली के साथ दिव्य अग्नि (सूर्य) तुझ को न जलाये। ११

४२.कच्चा-मांस-भक्षी तुझे न दबोचे, नाशक से दूर रह; द्यौ-पृथ्वी-सूर्य-अन्तरिक्ष दैवी शस्त्र से बचायें ।१२

२०४३ बोध-प्रतीबोध (ज्ञान-विज्ञान, अध्यापक-उपदेशक), जागृति-पुरुषार्थ, रक्षक-जागने वाले तेरी रक्षा करें । १३

वे तेरी रक्षा करें, तुझ को बचायें; उनके लिए नमः (आदर-अन्न) और सुवचन हो । १४

जीवों के लिए तुझको हर्ष में रक्षक पोषक वायु-बिजली-सूर्य पोषण करें; प्राण-बल तुझको न छोड़ें हम तेरा जीवन अनुकूल बनाते हैं। १५

जकड़न-विघ्न-अज्ञान-जिह्वारोग तुझको न हों; तू मरणोन्मुख कैसे हो सकता है? आदित्य-वसु विद्वान्-राजा-आचार्य तुझको कल्याण के लिए उन्नत करें । १६

द्यौ-पृथिवी-प्रजापति तुझे उन्नत करें, राजा सोम के साथ औषधियाँ मौत से बचायें । १७

हे देवो ! यह धर्मात्मा यहीं रहे; अन्यत्र न जाये; हजारों उपायों से हम इसे मौत से बचायें । १८

तुझे मैं [वैद्य] मौत से पार करूँ, अन्न-धारक पुष्ट करें; बाल बिखेरी स्त्रियाँ, रोनेवाले तुझको न रोएँ ।१९

तुझको मैं लूँ, पाऊँ; फिर आ नया हो; हे सर्वाङ्ग! तेरी पूर्ण दृष्टि और सब आयु पा सकूँ । २०

तेरे लिए ज्योति आये; रहे; तुझ से तम दूर हो; हम तुझ से मौत-कष्ट-रोग को हटाते हैं ॥ २१ ❀

सूक्त २। प्रजापति-भव-शर्व-मृत्यु-विश्वेदेवाः-द्यावापृथ्व्यादयः-गाप्ता-व्रीहि-यवौ

२०५२. आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि मोप गा मा प्रमेष्ठाः ॥ १

५३ जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अव मुञ्चन् मृत्युपाशानशस्ति द्राघीय आयुः प्रतरन्ते दधामि ॥ २

५४ वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद्धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥ ३

५५ प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ॥ ४

५६ अयञ्जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि । कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥५

५७ जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेस्मा अरिष्टतातये ॥ ६

५८ अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥ ७

५९ अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितोऽयमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ॥ ८

६० देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत्त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥ ९

२९-१०-९० के अधिवेशन में विश्व वेदपरिषद् ने ३ प्रस्ताव पारित किये—

१- आरक्षण जन्म-जाति के आधार पर न होकर आर्थिक आधार पर हो, और इसे रोकनेक लिए आत्म-घात करना वेद-विरुद्ध और पाप है।

२- शासन अंग्रेजी हटाकर संस्कृत और वेद पढ़ना-पढ़ाना अनिवार्य करे।

३- राम-जन्मभूमि पर से मसजिद-मूर्तिपूजा दोनों हटाकर राम-वेद-वेदाङ्ग-विश्वविद्यालय बने।

महर्षि पतञ्जलि कृतं योग-दर्शन-शास्त्रम्

भूमिका

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

जिसने योग से चित्त का, महाभाष्य से वाणी का और वैद्यक से शरीर का मल (दोष) दूर किया, ऐसे मुनि-प्रवर पतञ्जलि को हाथ जोड़कर नमस्ते के साथ नतमस्तक होता हूं।

यह योग दर्शन सबसे छोटा होने पर भी ६ दर्शनों में सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसमें १ ही अध्याय में ४ पाद और १९५ सूत्र हैं- समाधि पाद ५१, साधन पाद ५५, विभूति पाद ५५, कैवल्य पाद ३४।

इसके पढ़ने और तदनुकूल आचरण करने से मुक्ति मिलती है। यह सरल है। संस्कृत का भी ज्ञान हो सके अतः सूत्रों का अनुवाद सरल हिन्दी में दिया है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका के उपासना-मुक्ति-प्रकरणों, सत्यार्थप्रकाश-संस्कारविधि में जहाँ-तहाँ इसके सूत्रों की व्याख्या की है, उसे हमने यथास्थान दिया है। इस पर महर्षि व्यास, भोज राज, वाचस्पति ने संस्कृत में और स्वामी दर्शनानन्द-तुलसीराम-राजाराम-नारायणस्वामी-आर्यमुनि-विद्यानन्द विदेह-उदयवीर शा०-योगेश्वरानन्द-सच्चिदानन्द(राजेन्द्र)-राजवीर शा०-गोयन्दका-वेदानन्द आदि ने हिन्दी में भाष्य-टीकाएँ रची हैं उन से सार लेने का यत्न किया है, उनका आभारी हूं।

योग की कथा प्रत्येक मन्दिरमें होनी चाहिए और प्रत्येक जन इसे पढ़े तथा कण्ठाग्र करें और तदनुकूल आचरण भी करे। —वीरेन्द्र मुनि शास्त्री; पौष पूर्णिमा २०४० वि०। द्वितीय संस्करण २०४७।

१. समाधि पाद [५१ सूत्र]

१ अथ योगानुशासनम्। २ योगश् चित्तवृत्ति-निरोधः।

[इस पाद के अन्तिम सूत्र के अन्त में समाधि शब्द आने से पाद का नाम समाधि पाद है।]

१- अब योग का उपदेश करते हैं।

२- चित्त की वृत्तियों का निरोध (एकाग्रता और रोकना) योग है।

मनुष्य रजोगुण-तमोगुण-युक्त कर्मों से मन को रोक, शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक, शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो, पश्चात् उसका निरोध कर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्म-युक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त को ठहरा रखना, निरोध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना। (स०) चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटा के शुभ गुणों में स्थिर करके, परमेश्वर के समीप में मोक्ष प्राप्त करने को योग कहते हैं। और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा के विरुद्ध बुराइयों में फँसके उससे दूर हो जाना॥ (ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका)

पृष्ठ २४, वर्ष १५ अङ्क १ माघ(तपः)२०४७ वेदज्योति जनवरी ६१, र. न.६९२१/६२ डाक लख २०६

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष -१-६१को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को संभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे।
सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

शतपथ, निरुक्त, अष्टाध्यायी, वेदार्थपारि[जातखण्]डन अथर्ववेद, सामवेद के

अनुवादक — वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड १-२, २०), वेदार्थपारिजातखण्डन २० साम वंश ब्राह्मण १०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००) मगाइये।

—वीरेन्द्र सरस्वती, उपाध्यक्ष, ओजोमित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर लखनऊ ६

वैदिक दैनन्दिनी फाल्गुन २०४७ विक्रम

तिथि कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १३ १४ १५ पू
वार गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु
नक्षत्र श्लेम पू उ ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र ध घ श पू उ रे अ कृ रो मृ आ पुन पु श्ले म
ता.ज ३१ फ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८

प्रेषक — मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६ उ० प्र०, भारत, पिन २२६००६

सेवा में क्रमांक
श्री लाइब्रेरियन
स्थान गुरुकुल कांगड़ी
पत्रालय विश्वविद्यालय
पिन
जनपद हरिद्वार
प्रदेश

ऋग्वेद　　　　ओ३म्　　　　यजुर्वेद

वर्ष १५
अंक २

अथर्व वेद
खण्ड १५

फाल्गुन
२०४७
फरवरी
१९९१

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९१, दयानन्दाब्द १६६

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्
सहायक— विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१
दिल्ली कार्यालय-श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, जी ६ हिल व्यू वसन्तविहार नयी दिल्ली ५७, दूर ६०१४५२
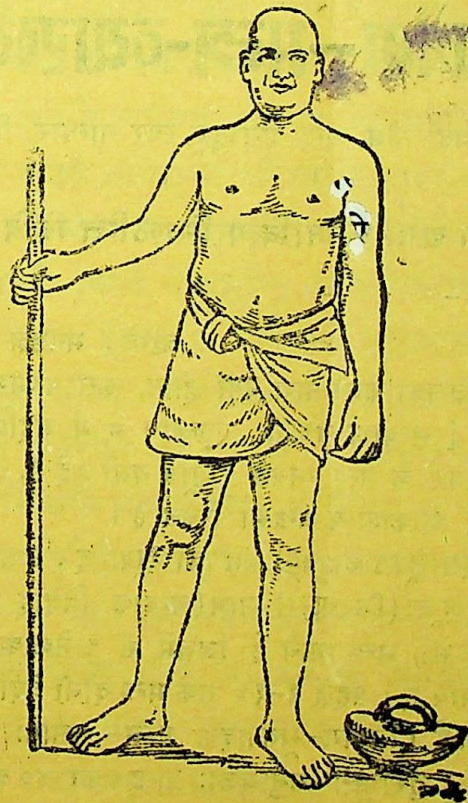
महर्षि दयानन्दसरस्वती का जीवन

१८२५ टङ्कारा में जन्म, पिताका नाम कर्षन जी लालजी त्रिवेदी,
माता का नाम— दयावती
पहला शैव-नाक्षत्र नाम मूलशंकर
दूसरा वैष्णव- दयाराम (दयाल जी)
१८३२ यज्ञोपवीत उपनयन वेदारम्भ
१८३७ ई० शिवरात्रि व्रत, ज्ञानोदय
१८४० बहिनकी, १८४३ चाचाकी मृत्यु
१८४६ घरका त्याग, १८५५ संन्यास
आर्यसमाज के संस्थापक स्वा. दयानन्द
महर्षि-बोध शिवरात्रि १८९४. वि०

इस वर्ष फाल्गुन वदि १३ २०४७ वि.
१२-२-१९९१ ई०

दयानन्द सा सत्यवक्ता नहीं है !

महर्षि दयानन्द सरस्वती

साम वेद　　　　अथर्व वेद

महर्षि पतञ्जलि कृतं योग-दर्शन-शास्त्रम्

गतांक से आगे

३.तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ४.वृत्तिसारूप्यमितरत्र ५.वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ।

३, तब द्रष्टा जीव की अपने और द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप स्थिति हो जाती है।

जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांधकर रोक देते हैं तब यह जिस ओर नीचा होता है उस ओर चलकर वहीं स्थिर हो जाता है, इसी प्रकार मन की वृत्ति जब बाहर से रुकती है तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है। (ऋ० वेदादि-भाष्य-भूमिका)

४. दूसरी दशा में वृत्ति के समान रूप होता है।

उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं तब योगी की वृत्ति सदा हर्ष-शोक-रहित होकर आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द युक्त रहती, और संसार के मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष-शोक-दुःख-सागर में डूबी रहती है; उपासक योगी को तो ज्ञान-प्रकाश में सदा बढ़ती रहती है और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा अन्धकार में फँसती जाती है।

५. क्लेश-युक्त और क्लेश-रहित वृत्तियाँ ५ प्रकार की होती हैं।

सब जीवों के मन में ५ प्रकार की वृत्ति उत्पन्न होती हैं उनके दो भेद हैं एक क्लेश-सहित दूसरी क्लेश-रहित। उनमें से जिनकी वृत्ति विषयासक्त, परमेश्वर की उपासना से विमुख होती है उनकी वृत्ति अविद्यादि क्लेश-सहित, और जो पूर्वोक्त उपासक हैं उनकी क्लेश-रहित शान्त होती है। (क्रमशः

सत्यार्थ प्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमांक ६४। ऋषिका सूर्या-सावित्री, देवता सोम, छन्द अनुष्टुप्, स्वर गान्धार, विनियोग सृष्टि-विज्ञान

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः। ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः॥

ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८५, मन्त्र १

'सत्य' अर्थात् जो त्रैकाल्याबाध्य, जिसका कभी नाश नहीं होता, उस परमेश्वर ने भूमि आदित्य और सब लोकों का धारण किया है। [सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ८ में महर्षि दयानन्द सरस्वती]

श्री वैद्यनाथ शास्त्री का भाष्य- परमेश्वर के सत्य नियम से भूमि थमी हुई है, सूर्य से द्युलोक थमा है, सृष्टि के नियम से आदित्य स्थित हैं; आकाश में चन्द्रमा स्थित है।

विशेष सम्पादकीय- ४७ मन्त्रों के इस सूक्त की द्रष्ट्री सावित्री सूर्या है, उसका यह नाम इसी लिए पड़ा कि इसके द्वारा सविता की पुत्री सूर्या (किरण) से सोम (चन्द्र) के विवाह का वर्णन बताया गया, इसमें विवाह संस्कार के लगभग सभी मन्त्र आये हैं जिनमें से अनेक अथर्व वेद १४-१ में भी कुछ पूरे और कुछ किंचित् भेद से, आये हैं। पहले १-१६ तक मन्त्र दोनों वेदों में एक ही क्रम में हैं। अन्य भी १० मन्त्र दोनों में एक-समान हैं। नियोग-प्रतिपादक मन्त्र- सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः। तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ इसका ४० वाँ मन्त्र है।

—वीरेन्द्र सरस्वती

२०६१ यत्ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम्।पथ इमं तस्माद्रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि॥१०

६२ कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोप सेधामि सर्वान् ॥ ११

६३ आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि ॥ १२

६४ अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस् तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् ॥ १३

६५ शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असन्तापे अभिश्रियौ। शं ते सूर्य आतपतु शं वातो वातु ते हृदे। शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥ १४

६६ शिवास् ते सन्त्वोषधय उत्त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥ १५

६७.यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम्।शिवं ते तन्वे तत्कृण्मःसंस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते॥१६

६८ यत्क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु। शुभं मुखं मा न आयुः प्रमोषीः॥१७

६९ शिवौ तेस्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ।एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः॥१८

७० यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याःपयः।यदाद्यं यदनाद्यं सर्वन्तेअन्नमविषं कृणोमि॥१९

७१ अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परिदद्मसि। अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत॥ २०

७२ शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यतामहृणीयमानाः ॥ २१

७३ शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥ २२

७४ मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्। तस्मात्त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्भरामि स मा बिभेः॥२३

७५ सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः।न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमन्तमः।२४

७६ सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः। यत्रेदम्ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्।२५

७७ परि त्वा पातु समानेभ्योभिचारात् सबन्धुभ्यः।
अमम्रिर्भवामृतोतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥ २६

७८ ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः।मुञ्चतुन्तस्मात्त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि॥२७

७८ अग्नेःशरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा।अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम्॥२८

२०५२ हे जीव ! तू अमृत(मोक्ष)की इस प्राप्ति के लिए यत्न कर, तेरी वृद्धावस्था विघ्न-रहित हो तेरे लिए प्राण और आयु बार-बार देता हूं; रजस् तमो गुणों में न जा; पीड़ित न हो । १

तू जीवितों की ज्योति साक्षात् पा; तुझे १०० वर्ष की आयु देता हूं, मौत के पाशों और अकीर्ति को हटाता हुआ मैं तुझे उत्कृष्ट लम्बी आयु देता हूँ । २

मैं तेरा प्राण वायु से, चक्षु सूर्य से देता हूं, जो तेरा मन है वह आत्मा में रखता हूँ, अङ्गों से सम्पन्न हो,जीभ से बकवाद न करता हुआ उत्तम बोल । ३

हे जीव, उत्पन्न अग्नि के समान तुझे दुपाए(मनुष्य) और चौपाए पशुओं के प्राण से जीवन देता हूँ, हे मृत्युरूप ईश्वर ! तेरे दिये चक्षु और प्राण के लिए नमस्कार हो । ४

हे मौत ! यह जिए, मरे नहीं, इसे सचेत करते हैं, मैं इसकी औषधि करता हूँ; इस पुरुष को न मार । ५

मैं इसकी नीरोगिता के लिए जीवन-प्रद, न हानि-कारी १. जीवन्ती (आंवला-गिलोय-हरड़), २. त्रायमाणा और ३. रोग-नाशक सहदेवी औषधियाँ यहाँ देता हूं । ६

हे आचार्य, उपदेश कर, मत छोड़, इसे आगे बढ़ा, यह तेरा ही होकर सब गति-युक्त रहे, हे भवा-शर्व(प्राण-अपान) ! प्रसन्न होओ, सुख दो और पाप दूर कर आयु दो । ७

हे मौत! इसे दाढ़ न दे, दया कर, यह उठे, नीरोग-सर्वाङ्ग-अच्छा श्रोता-वृद्ध-शतायु स्वयं भोग पाये । ८

देवों का आघात तुझे सब ओर छोड़े, मैं तुझे रजोगुण से हटाता हूँ, मौत से बचा लिया । मांस-भक्षक अग्नि को दूर हटाता हुआ तेरे जीवन के लिए परिकोटा बनाता हूँ । ९

हे मौत ! जो तेरा लोक का अजेय मार्ग है उससे इसे बचाते हुए एतदर्थ ब्रह्म का कवच बनाते हैं । १०

तेरे लिए प्राण-अपान-बुढ़ापा-मौत-दीर्घायु कल्याणमय करूँ, सूर्य से उत्पन्न काल के भेजे घूमते-हुए मृत्यु-दूतों को दूर करूँ । ११

निर्धनता-दुर्गति-जकड़न-मांसभक्षी रोग और जीव, मन दुष्टों को मैं अँधेरे के समान हटादूँ । १२

मैं तेरे प्राण को अमृत जातवेद अग्नि से पाता हूं जिससे अमर होकर तू नष्ट न हो, उस के साथ रह, वह तेरे लिए करता हूं; वह तुझे सिद्ध हो । १३

तेरे लिए द्यौ-पृथिवी सन्ताप-रहित, शोभित-कल्याणकारी हों, सूर्य सुखद प्रकाशित हो, वायु तेरे हृदय के लिए कल्याणकारी बहे, दिव्य पुष्टिकारक जल तेरे लिए कल्याणकारी बरसें । १४

तेरे लिए औषधियाँ कल्याणकारी हों, तुझे नीची से ऊँची(पहाड़ी)भूमि पर ले जाऊँ, वहाँ दोनों प्रकाशमान सूर्य-चन्द्र तुझको सुरक्षित रक्खें । १५

जो तेरा ऊपरी वस्त्र है और जिस अधो-वस्त्र पर तू गाँठ लगाता है वह तेरे शरीर के लिए सुखद करें, वह छूने में चुभने वाला न हो । १६

हे नाई ! जो अच्छे तेज धार के उस्तरे से केश-दाढ़ी-मूछ बनाता है,तू हमारे सुमुख-आयु न घटा । १७

कफ न करने वाले, हर्षप्रद चावल-जौ तुझको लाभकारी हों, ये रोग हटाते, कष्ट से छुड़ाते हैं । १८

जो खेती का अन्न-दूध तू खाता-पीता है चाहे अन्न पुराना-नया हो तुझको सब निर्विष करताहूं । १९

तुझको दिन-रात दोनों के लिए देते हैं, मेरे इस पुरुष को अदाती-हिंसकों से बचाओ । २०

तेरे लिए २-३-४ पर दस हजार सैकड़ा (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्षों की सृष्टि बनाते हैं, वे राजा-मन्त्री-सब विद्वान् निस्संकोच अनुमोदन करें । २१

तुझको शरद्-हेमन्त-वसन्त-ग्रीष्म के लिए देते हैं; वर्षाएँ तुझको सुखद हों जिनमें औषधि होतीहैं।२२

२०७४ मौत दुपायों-चौपायों की ईश है, उस पृथ्वी-पति मौत से तुझे ऊपर उठाता हूं, मत डर। २३
हे अहिंसनीय! तू नहीं मरेगा, मत डर, वहां (मोक्ष में) नहीं मरते, नीचे अंधेरे में भी नहीं जाते। २४
जहाँ जीवन के लिए यह वेद सुख-परिधि किया जाता है वहाँ गो-अश्व-पुरुष-पशु सब जीतेहैं। २५
यह आचरण से तुझे समान सबन्धुओं से बचाए, तू अक्षीण-अमर-दीर्घायु हो, प्राण शरीर न छोड़ें। २६
जो सैकड़ों मौतें-पीड़ाएँ पार करने योग्य हैं, उनसे विद्वान् तुझे वैश्वानर अग्नि द्वारा बचायें। २७
[सब नरों में व्याप्त और सर्व-नर-हितकारी गतिशील ईश्वर और पाचक जठराग्नि वैश्वानर है।]
[हे ईश्वर!] तू अग्नि का शरीर, पार करने वाला, राक्षस(दुष्ट-क्रिमि)-नाशक, शत्रु-हन्ता है।
और रोग-नाशक पूतद्रु नामक [पवित्र-वृद्धिकारी-गतिप्रद ईश्वर-यज्ञाग्नि] औषधि है। २८

अथर्ववेद के वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती कृत हिन्दी अनुवाद में
यह अष्टम काण्ड में सत्रहवें प्रपाठक में प्रथम अनुवाक समाप्त हुआ।

—*—

अनुवाक २ सूक्त ३ से ४ तक

अनुवाक-विषय - दुःख-विनाशार्थ अग्नि-ईश्वर-इन्द्र-सोम-प्रार्थना [महर्षि दयानन्द सरस्वती]

२३ मन्त्रोंका सूक्त १। अग्नि रक्षोहा

२०८० रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रतिष्ठमुप यामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ १
८१ अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥ २
८२ उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परञ्च।
उतान्तरिक्ष परियाह्यग्ने जम्भैः सन्धेह्यभि यातुधानान् ॥ ३
८३ अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम्।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्येनम् ॥ ४
८४ यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस् तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम्।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥ ५
८५ यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ॥ ६
८६ उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान्।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥ ७
८७ इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदङ्कृणोति।
तमारभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥ ८

२०८८ तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ॥ ९

८९ नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥ १०

९० त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नियुङ्धि ॥ ११

९१ यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥ १२

९२ परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥ १३

९३ पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१४

९४ यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥ १५

९५ विषङ्गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥ १६

९६ संवत्सरीणं पय उस्रियायास् तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥ १७

९७ सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ १८

९८ त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति त्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥ १९

९९ पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे मर्तां अमर्त्यस्त्वं नः ॥ २०

२१०० तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥ २१

२१०१. परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥ २२

२ विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि । अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥ २३

२१०३ वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे ॥ २४
४ ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते ।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तङ्किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो विनिक्ष्व ॥२५
५. अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥ २६ ❀

२०८० राक्षस-नाशक, बली, मित्र, प्रसिद्ध राजा को मैं प्रख्यात करूँ और सुख पाऊँ; वह कर्मों से कीर्तिमान्; अग्निवत् तेजस्वी शासक हमें दिन-रात कष्ट से बचाये । १

हे ज्ञानी शासक ! तू लोहे की दाढ़ों (शस्त्रों) वाला दीप्त होकर अपने तेज से दुष्टों को कुचल; मूढ़ सैनिकों को वाणी से प्रेरित कर और बली होकर मांस-भक्षियों को बन्दीघर में डाल । २

हे दोनों (छोटे-बड़े) के रक्षक ! तू दोनों दाढ़ों (रक्षक-संहारक शस्त्रों) का प्रयोग कर; हिंसक-तीक्ष्ण हो और अन्तरिक्ष में जा; पीडाकारी दुष्टों को शस्त्रों से बेंध । ३

हे अग्रणी ! तू राक्षस को खाल खींच ले; घातक बिजली (का शस्त्र) इसे तेज से मारे; हे ज्ञानी ! तू इसके जोड़ कुचल, मांसभक्षी भयङ्कर पशु इसे नोंच खाये । ४

हे विज्ञ ! तू अब जहाँ खड़े-घूमते, आकाश से जाते दुष्ट को देखे वहीं उसे तेज शस्त्र से बींध । ५

हे अग्रणी ! तू सज्जन सैनिकों द्वारा बाण फेंकता; आदेश देता, बिजलियों से शल्य (बाम्ब) गिरा उनसे राक्षसों के हृदय पर चोट कर; उनकी बाहें उलटी कर तोड़ । ६

हे प्रजा के ज्ञाता धनी राजा ! तू बन्दी शत्रुओं को बन्दीघर में रख और पहले प्रकाशमान होकर आक्रामकों को दुधारी तलवारों से मार; उन्हें मांस भक्षी लाल-काले पक्षी चील आदि खा जायें । ७

हे अग्रणी ! यहाँ बता, वह राक्षस कौन है जो यह करता है; उसे तेजसे दण्ड दे; राजा के दिखाने के लिए इसे मार । ८

हे राजन् ! तू तीक्ष्ण दृष्टि से राष्ट्र-यज्ञ बचा, सावधान हो धन के लिए आगे बढ़ा, हे प्रजा-दर्शी ! राक्षसों के हन्ता प्रदीप्त तुझे वे दबा न सकें । ९

हे मनुष्य-दर्शी ! प्रजा में राक्षस को पहचान, उसके तीन अग्र (शक्ति-जन-धन) नष्ट कर, हे अग्रणी उस की पसलियाँ बल से कुचल; राक्षस की जड़ तीन तरह (धन-जन-बल) से काट । १०

हे अग्रणी, ! जो असत्य से सत्य का नाश करता है वह राक्षस तीन तरह (धन-जन-बल) से तेरे बन्धन में आये, उसको तेज से जलाता हुआ तू स्तोता के हितार्थ सबके सन्मुख बाँध ११

हे अग्रणी ! यदि कभी दो पुरुष परस्पर शाप दें, यदि चिल्लाने वाले वाणी की कटुता उत्पन्न करे तो तू मन के मन्यु से जो वाणों की झड़ी लगती है उससे राक्षसों के हृदय वेध । १२

हे अग्रणी ! तू दुष्टों को तप से; राक्षसों को बल से; मूढ़ देवों (खिलाड़ियों) को तेज से और दमकते प्राण-घातियों को भी दूर कर नष्ट कर । १३ [ये दो मन्त्र आगे १०.५.४८-४९ हैं ।]

विद्वान् पापी को सदा कुचलें; दी हुई गालियाँ उसी को वापस हों; हमारे शस्त्र वाणी-चोर छली के मर्म में लगें, राक्षस उसके बन्धन में आये । १४

हे अग्रणी ! जो राक्षस पुरुष या अश्व आदि पशु के मांस से पुष्ट करता है; जो न मारने योग्य गौ का दूध छीनता है उनके सिर बल से काट डाल । १५

२०९५ जो राक्षस गौओं को विष दें या उनका पानी बिगाड़ें या उन्हें काटें तो वे अखण्ड नीति के लिए मार दिये जायें, उन्हें प्रेरक राजा दूर रक्खे, अन्न आदि का भाग न दे। १६

हे प्रजा-द्रष्टा ! गौ का दूध एक वर्ष रहता है उसे दुष्ट न पा सके, जो चुराकर पिये तो उसे सब के सामने शस्त्र से मर्म पर चोट कर मार। १७

हे अग्रणी ! तू दुष्टों को सदा नष्ट कर, युद्धों में राक्षस न जीत पायें, मांस-भक्षियों को मूर-(मूढ़ और मूल) सहित भस्म कर, वे तेरे दिव्य शस्त्र से न बच सकें १८

[यह मन्त्र पहले ५-२९-११ में आ चुका है।]

हे अग्रणी ! तू नीचे-ऊपर-पीछे-आगे से हमारी रक्षा कर, तेरे वे नये-तपाने वाले-चमचमाते (वीर-शस्त्र) पापी को जला दें। १९

हे विद्वान् अग्रणी ! तू काव्य (वेद) से हमारी पीछे-आगे नीचे और उत्तर से रक्षा कर, तू मित्र होकर मित्र की, अजर रहकर वृद्ध प्रशंसक की, अमर रहकर हम मर्त्यों की रक्षा कर। २०

हे अग्रणी ! तू जिस दृष्टि से शान्ति भङ्ग करने वाले दुष्टों को देखता है वह कोलाहल करने वाले पर भी डाल, [illegible] मूत्र का [illegible] पराजित कर। २१

११०१ हे अग्रणी ! हम पालक-ज्ञानी-बली-धामय; नाशकों वाले के हन्ता तेरा सदा आश्रय लें। २२

हे राजन् ! तू विष से मारने वाले राक्षसों को तीव्र तेज, तापयुक्त दीप्ति वाली ज्वालाओं से मार। २३

अग्नि-समान तेजस्वी राजा बड़ी ज्योति से चमकता है, अपनी महिमा से सबका आविष्कार करता देव-विरोधी मायाओं को वश में करता, और राक्षस-विनाशार्थ दोनों सींगों (दो प्रधान-सामर्थ्यों प्रजापालन-शत्रुनाशन और शस्त्र-अस्त्र) को तेज रखता है। २४

हे ज्ञानी राजन् ! जो तेरे अजर दो (उपर्युक्त) सींग ब्रह्म (ईश्वर-वेद) से तीक्ष्ण हैं उन के द्वारा तू अपने तेज से बुरे हृदय के, विनाशक-प्रतिकूल-भोजी को नष्ट कर। २५

२१०५ शुद्ध-प्रदीप्त-अमर-पवित्र-पवित्रकर्ता अग्निवत् तेजस्वी अग्रणी-सेनापति-राजा राक्षसों को नियन्त्रण में रक्खे। २६ [यह मन्त्र ऋग्वेद ७-१५-१० में भी है।]

२५ मन्त्रों का सूक्त ४। १-७ १५ २५ इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ। ८ १६ १९-२२ २४ इन्द्र। ९ १२ १३ सोम। १० १४ अग्नि। ११ देवाः। १७ ग्रावाणः। १८ मरुतः। २३ पृथिवी-अन्तरिक्ष।

२१०६. इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ॥ १
इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायङ्किमीदिने ॥ २
८ इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम्।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत् तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥ ३
९ इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम्।
उत्तक्षतं स्वर्यम्पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥ ४

१० इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥ ५
११ इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयम्मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ॥ ६
१२ प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगम्भूद् यो मा कदाचिदभिदासति द्रुहुः ॥ ७
१३ यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना सङ्गृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८
१४ ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रन्दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥ ९
१५ यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानाङ्गवां यस्तनूनाम् ।
रिपुस्तेन स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा तना च ॥ १०
१६ परः सो अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥ ११
१७ सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ १२
१८ न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्त्रियम्मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥ १३
१९ यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥ १४
२० अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ १५
२१ यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥ १६
२२ प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वङ्गूहमाना ।
ववूमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥ १७
२३ वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वीच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥ १८

२४ प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तो ऽभिजहि रक्षसः पर्वतेन ।। १६

२५ एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ।। २०

२६ इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः ।। २१

२७ उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ।। २२

२८ मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसो ऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ।। २३

२९ इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन् सूर्यमुच्चरन्तम् ।। २४

२१३० प्रतिचक्ष्व विचक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् । रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ।।२५

यह पूरा सूक्त [२५ मन्त्र] कुछ भेद से ऋग्वेद में भी ७.१०४.१-२५ में है ।

२१०६. हे बलवान् इन्द्र(ईश्वर, सूर्य, राजा) और सोम (प्रेरक ईश्वर, चन्द्रमा, मन्त्री-सेनापति) ! तुम दोनों राक्षसों को तपाओ, दबाओ, पाप बढ़ाने वालों को नीचे गिराओ, मूर्ख दुष्टोंका नाश करो, जला दो, खाऊ लुटेरों को मारो, दूर भगाओ, निर्बल करो । १

हे इन्द्र-सोम ! तुम पापी का सामना करो, यह गरम जलते पतीले के समान तपे, ब्रह्मद्वेषी-मांस-भक्षी-क्रूरदृष्टि-छिद्रान्वेषी के प्रति निरन्तर द्वेष रक्खो । २

हे इन्द्र-सोम ! तुम बुरे कर्म वालों को गहरे अँधेरे गर्त के अन्दर छिन्न-भिन्न करो कि जिनमें से एक भी न उठ सके, वह तुम्हारा क्रोध-भरा बल उनके दमन के लिए रहे । ३

हे इन्द्रसोम ! पापीके लिए आकाश-पृथिवी से वधकारी शस्त्र गिराओ; पहाड़ोंसे तेज़ शस्त्र गिराओ जिनसे बढ़ते राक्षस को मारो । ४

हे इन्द्र-सोम ! तुम आकाश से आग में तपे, फौलाद से बने अक्षय सन्तापक शस्त्रोंसे लुटेरे खाउओं को मारो जिस से वे चुपचाप भाग जायँ । ५

हे इन्द्र-सोम ! बली घोड़े को नियमित रखने वाली चर्म-पट्टी के समान यह बुद्धि तुम्हें नियमित रक्खे, जिस वाणी को मेधा से तुम्हारे प्रति बोलता हूं ये ब्रह्म-वचन राजा-समान स्वीकार करो । ६

हे इन्द्र-सोम ! याद रक्खो, बली शीघ्रगामी जनों के साथ तुम द्रोही विनाशकारी राक्षस मारो । उस दुष्कर्मी की गति सुगम न हो जो कभी मुझे नष्ट करना चाहे । ७

२११३ हे राजन् ! जो पवित्र मन से आचरण करने वाले मुझ पर असत्य वचनों से आक्षेप करता है वह असत्य का वक्ता, मुट्ठी में लिए हुए जल के समान, गिर जाये ।८

२११४ जो पवित्र वक्ता का विशेष साधनों से हराती और अच्छे को स्वार्थों से दूषित करती हैं उन्हें सौम्य राजा सर्पवत् क्रूर के लिए दे दे और मौत की गोद में रख दे। ९

हे राजन्! जो हमारे अश्वों-गौओं-शरीरों के रस और अन्न आदि बिगाड़ना या छीनना चाहे वह चोरी करने वाला शैतान शत्रु शरीर-स्थान और पुत्र से हीन हो जाये। १०

जो दुष्ट मुझे दिन-रात पीडा देता है वह शरीर-धन-पुत्र से वंचित किया जाये, ३ भूमि-खण्डों से नीचे तहखाने में रक्खा जाये, हे विद्वानो! उसका यश सूख जाये। ११

ज्ञानी जन के लिए यह उत्तम विज्ञान है कि सत्य-असत्य वचन परस्पर टकराते हैं, उनमें जो सत्य-श्रेष्ठ है उसे ही सौम्य राजा मानता है; असत्य का नाश करता है। १२

सौम्य मन्त्री न तो पापी को बढ़ाता है और न मिथ्याचारी क्षत्रिय को; वह पापी-असत्य-भाषी को मारता है, वे दोनों राजा की बेड़ियों में सोते हैं। १३

हे ज्ञानी! क्या मैं असत्य-व्यवहारी हूं या देवों का व्यर्थ निन्दा करता हूँ तो हम पर क्यों क्रोध करते हो? वे अनिष्ट-भाषी ही क्लेश भोगें। १४

यदि मैं यातना देने वाला होऊँ या किसी मनुष्य का जीवन दुःखी करूँ तो आज ही मर जाना अच्छा है, और जो मुझे यातुधान (राक्षस) बताये वह दसों (सभी) वीरों (सन्तान-प्राण) से वियुक्त हो १५

जो मुझ अयातुधान को यातुधान बताये और जो राक्षस होकर कहता है कि मैं पवित्र हूं उसे इन्द्र राजा बड़े वध से मारे, वह सब प्राणियों में नीचा पद पाये। १६

जो द्रोही स्त्री रात में शरीर छिपाती हुई खगोला (खड्ग लिये और उल्लू) के समान निकले तो वह गहरे गढ़े में नीचे गिरा दी जाये और पत्थर राक्षसों को प्रहारों से मारें। १७

हे सैनिक-जन तुम मनुष्यों में खड़े रहकर हित की इच्छा करो, उन राक्षसों को पकड़ो और पीस डालो जो रात में पक्षी समान होकर झपटते और अहिंसक व्यवहार में हिंसा करते हैं। १८

हे धनी इन्द्र (सेनापति)! तू आकाश से अश्मा (पत्थर, शस्त्र) गिरा; सौम्य न्यायाधीश द्वारा दिया दण्ड कार्यान्वित कर, राक्षसों को सामने-पीछे-नीचे-ऊपर से पर्व वाले शस्त्र से मार। १९

ये जो कुत्ता के समान पीडाकारी राक्षस झपटें और अदम्य राजा को हानि पहुँचाना चाहें तो सेनापति इन नीचों को वध का दण्ड दे, राक्षसों के लिए निश्चय वज्र गिराये। २०

राजा हवियों के मथनेवाले (नाशक), सामने आते हुए राक्षसों का सब ओर बड़ा कुचलनेवाला हो वन काटनेवाले फरसेके समान सेनापति राक्षसों को मिट्टी-बरतनोंसमान तोड़ता हुआ चढ़ाई करे। २१

हे इन्द्र (राजा-जीवात्मा)! तू उल्लू की चाल (मोह), भेड़िया की चाल (क्रोध), कुत्ता की चाल (ईर्ष्या-खुशामद), और चकवा की चाल (काम-व्यभिचार), गरुड की चाल (अहंकार-अभिमान), गिद्धकी चाल (लोभ-लूटमार) को और इन पशु-पक्षियों की सी चाल रखने वाले चालबाज राक्षसों को नष्ट कर, और सिल पर पीसने के समान पीस डाल, अपनी हमारी रक्षा कर। २२

यातना देने वाला राक्षस हम तक न पहुँचे, जो घातक-लुटेरे वे हमसे दूर रहें, पृथिवी हमें पार्थिव कष्ट से और अन्तरिक्ष दैवी कष्ट से बचाये। २३

हे इन्द्र राजन्! तू यातना देने वाले पुरुष को और माया से विनाशक स्त्री को मार, मूढ़ व्यवहार वाले गरदन झुकाकर नष्ट हों, वे उदय होते हुए सूर्य को न देख पायें। २४

प्रत्येक को देख, विशेष रीति से देख, इन्द्र-सोम (राजा-मन्त्री) जागते (सावधान) रहें, तुम दोनों राक्षसों के लिए वध [मारू अस्त्र] और यातुधानों [यातना देने वालों] के लिए वज्र फेंको २५। ॐ

प्रपाठक १९ अनुवाक ३ सूक्त ५ से ६ तक

अनुवाक ३ का विषय— वीर-युद्धादि, दुष्ट-जयार्थ इन्द्रेश्वर-प्रार्थना-वर्मादि, ऋतुदान-गर्भाधानादि पदार्थविद्या गर्भ-रक्षणादि (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

२२ मन्त्रों का सूक्त ५ । प्रतिसर मणि [बाभ्रव]

देवता— १-९ १५ कृत्यादूषणाः १० २० २१ विश्वेदेवाः ११-१३ १६ प्रजापति १४ १७ २२ इन्द्र, १८ मन्त्रोक्ताः १९ वर्म ।

२१३१ अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते। वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः १

३२ अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः। प्रत्यक्कृत्या दूषयन्नेति वीरः।२

३३ अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन् मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥ ३

३४. अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः। ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान्पातु सर्वतः ॥

३५ तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥ ५

३६. अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् । ते मे० (शेष ३५ वें मन्त्रवत्) ॥ ६

३७. ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते । सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥ ७

३८. स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा । अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥ ८

३९ याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयङ्कृता या उ चान्येभिराभृताः ॥
उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या३ अति ॥ ९

४० अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥ १०

४१ उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥ ११

४२. स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा । अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ १२

४३. नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः । सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ १३

४४ कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् । अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत्
संश्रेषिणेऽजयत् । मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥ १४

४५. यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥ १५

४६. अयमिद्वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः। प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥ १६

४७ असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात्।इन्द्रासपत्नं नःपश्चाज्ज्योतिःशूर पुरस्कृधि१७।
४८.वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः।वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु नो ।।१८
२१४६ ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नातिविध्यन्ति सर्वे ।
तन्मो तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि ।। १६
५०आ मारुक्षद्देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये।इमंनोथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे२०
५१ अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासत् ।। २१
५२ स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी । इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयङ्करो वृषा । स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ।। २२

२१३१ यह वीर, वीर्यवान्, शत्रु-हन्ता, शूरवीर, पूरी तरह रक्षक,सुमङ्गल प्रतिसर मणि (बमों का घेरा) वीर की रक्षा के लिए बाँधा जाता है। १

यह मणि (बम)शत्रु-नाशक, सुवीर, बड़ा बली, पराक्रमी, शत्रु को हराने वाला, उग्र, वीर होकर शत्रु-हिंसाएँ नष्ट करता हुआ सामने चलता है। २

बुद्धिमान् सेनापति इस मणि (बम)से शत्रु-असुर-द्यावापृथिवी-चारों दिशाएँ जीतता है। ३

यह दिशाओं में फैलने वाला, माला के तुल्य घेरे में घूमने वाला, ओजस्वी, शत्रु-वशीकर्ता, प्रतिकस मणि(ऐटम बाम्ब)है, वह हमें सब ओर से बचाये। ४

अग्रणी शासक-मन्त्री-आचार्य-वैज्ञानिक-सविता-सेनापति, वे मेरे विद्वान्-पुरोहित यही बताते हैं कि प्रतिकूल हिंसाएँ प्रतिसरों(ऐटम बमों) से हटायी जायेँ । ५

मैं द्यावा-पृथिवी-दिन-सूर्य-शक्ति इनके अन्दर रखता हूं, वे वैज्ञानिक प्रतिसरों से कृत्याएँ लौटायें। ६

जो प्रतिसर को कवच बनाते हैं उनके वे सूर्य के समान आकाश मे चढ़कर शत्रु वश मे करते हुए हिंसाओं को हटा देते हैं। ७

मनीषी ऋषि के समान गतिशील बम से सब शत्रु-सेनाएँ जीतूँ, हिंसक राक्षसों को मारूँ । ८

जो कृत्याएँ[हिंसाएँ]अङ्गिरा या असुरोंकी, स्वयं या अन्योंकी की गयीं हैं वे नव्वे[अनेक]नदीपार हों ६।

इन्द्र-यज्ञ-सूर्य-अग्नि-सेनापति-राजा-परमेष्ठी-विराट्-वैश्वानर [ईश्वर] ये देव, सब ऋषि इस सेनापति के लिए मणि-कवच बनायें। १०

हे प्रतिसर ! तू दोष-नाशकों में उत्तम, गतिशीलों में बैल, हिंसक पशुओं में बाघ के समान है, हम जिसे चाहते हैं उस प्रतिरोधी अस्त्र को पा लिया। ११

जो यह बम रखता है वही बाघ-शेर-सांड के समान वीर और शत्रु-दमन-कारी होता है। १२

इसे जलचारी पनडुब्बियाँ, वायुयान, मनुष्य-सैनिक नहीं मारसकते, वह सब दिशाओं में विराजता है जो यह मणि (बम) रखता है। १३

हे प्रतिसर ! सूर्य तुझे प्रभावशाली बनाता, प्रेरित करता है, सेनापति तुझे मनुष्यों के युद्ध में प्रयुक्त कर जीतता है, सैनिक हजारों शक्ति वाले तुझे कवच (रक्षक) बनाते हैं। १४

२१४५ हे इन्द्र(सेनापति)! जो तुझे घातक प्रयोगों, दीक्षाओं, सङ्गठित क्रियाओं से मारना चाहता है उसको तू सैकड़ों शक्तियों वाले वज्र से प्रत्यक्ष मार। १५

यही शत्रु को पीछे धकेलने वाला, ओजयुक्त-विजयी-रक्षक सुमङ्गल मणि धन-प्रजा को बचाये। १६

हे शूर इन्द्र! हमें नीचे-ऊपर-पीछे से शत्रु-रहित बना, ज्योति(प्रतिसर) आगे रख। १७

द्यावा-पृथिवी-दिन-सूर्य-बिजली-अग्नि-वाला (राजा-ईश्वर) मेरे लिए कवच धारण करायें। १८

जो बिजली-अग्नि-निर्मित उग्र कवच है जिसको सब देव छेद नहीं सकते, वह बड़ा कवच मेरे शरीर की रक्षा सब ओर से करे जिससे मैं आयुष्मान् और वृद्धावस्था तक जीवित रहूं। १६

यह दिव्य मणि(बम) मेरी बड़ी कुशलता के लिए मुझे मिले; हे सैनिको! तुम अपने बल के लिए इस शत्रु-नाशक, शरीर-पालक, ३ (जल-नभ-भूमि सेना) के रक्षक का आश्रय लो। २०

इस में सेनापति बल धारण करे; हे सैनिको! तुम इसे सौ वर्षों की दीर्घायु के लिए प्रयोग करो, जिससे यह राजा आयुष्मान् और प्रशंसनीय हो। २१

२१५२ हे राजन्! कल्याण-कारी, प्रजा पालने वाला, दुष्ट-नाशक, शत्रु-वशीकर्ता, विजयी, अजेय, सोम-रक्षक, अभयङ्कर बली सेनापति तेरे लिए यह मणि(बम) तैयार करे, वह तेरी सब प्रकार से दिन-रात सब ओर से रक्षा करे। २२

यह वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती द्वारा हिन्दी अनूदित सम्पादित
अथर्व वेद के काण्ड ८ का सूक्त ५ समाप्त हुआ।

❀✕ॐ❀
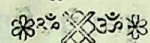
२६ मन्त्रों का सूक्त ६। प्रजापति

२१५३ यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ। दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥१

५४ पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम्। आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम्।

५५ मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा। कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥ ३

५६ दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः। अरायानपहन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ॥ ४

५७ यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः। अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोऽप हन्मसि ॥५

५८ अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम्। अरायां छ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥६

५९ यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च। बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥७

६० यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम्। छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥८

६१ यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम्। तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥९

६२ ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः। कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः। तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥ १०

६३ ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥ ११

२१६४ ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान् वस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि ॥ १२
६५ य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति।स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय१३
६६ ये पूर्वे वध्वो३ यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
आपाकेस्थाः प्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥ १४
६७ येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा । खलजाः शकधूमजा उरुण्डा
ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः । तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥१५
६८ पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः ।
अव भेषज पादय य इमां सं विवृत्सत्यपति स्वस्त्रियम् ॥ १६
६९ उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् । उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत
शालुडम् । पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना ॥ १७
७०यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते। पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥ १८
७१येअम्नो जातान्मारयन्ति सूतिकाअनुशेरते।स्त्रीभागान्पिङ्गो गन्धर्वान्वातोअभ्रमिवाजतु१९
७२ परिसृष्टंधारयतु यद्धितं माव पादि तत् । गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥२०
७३ पवीनसात्तङ्गल्वा३च्छायकादुत नग्नकात् प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गःपरिपातु किमीदिनः॥२१
७४ द्व्यास्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनङ्गुरेः। वृन्तादभिप्रसर्पतः परिपाहि वरीवृतात् ॥ २२
७५य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयञ्च ये क्रविः।गर्भान्खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि॥२३
७६ ये सूर्यात्परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वसुरादधि।बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि निविध्यताम् ॥२४
७७पिङ्ग रक्षजायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्।आण्डादो गर्भान्मा दभन्बाधस्वेतःकिमीदिनः॥२५
२१७८अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद्रोदमघमावयम् ।वृक्षादिव स्रजङ्क्त्वाप्रियेप्रतिमुञ्च तत् ॥२६

पिङ्ग[सूर्य, पीली नरमों, हरिताल औषधियाँ], बज [वज्र, नीला अभ्रक] से क्रिमि-नाश

५५ प्रकार के रोग-क्रिमियों का वर्णन

२१५३ हे स्त्री ! माता ने उत्पन्न हुई तेरे पति का अनुभव कराने वाले जिन दो[स्तन तथा गुह्य-गर्भाशय] को शुद्ध किया वहाँ बुरे नाम वाला १. अलिंश क्रिम [गुह्य में] और २. वत्सप [बच्चा-नष्ट करने वाला]गर्भ में न पहुंचे । १

३ पलाल ४ अनुपलाल = लम्बा-छोटा मासभक्षी ५ शकु = शरध्वनि कर्ता ६ कोक = चकवे-समान ७ मलिम्लुच = मैली चाल वाले ८ पलीजक = पलित कारी ९ आश्रेष = चिपटनेवाले कफकारी १० वव्रिवासः = रूपहर्ता ११ ऋक्षग्रीवी = रीछ की गरदन वाला १२ प्रमीली = आँख-मिचौआ न आयें । २

हे क्रिमि!न घूम; न रेंग, जाँघों के पास सरक, इसके लिए क्रिमि-नाशक औषधि बज बताता हूं । ३

२१५६ अच्छे-बुरे नाम वाले दोनों कीट पास रहना चाहते हैं, उनमें बुरों को मारें, और अच्छे शुक्र-कीट स्त्री में जायें । ४

इस स्त्री के दोनों मुष्कों और गुह्य से हम इन रोग-कीटों को नष्ट करें —
१३ कृष्ण (काला-खींचने वाला) १४ केशी (केश-रोमों वाला) १५ असुर (गिराने वाला) १६ स्तम्बज (जाँघ में उत्पन्न) १७ तुण्डिक (सूँड़ वाला) १८ अराय (गर्भ-ह्रासकारी) । ५

बज और पिङ्ग इन्हें नष्ट करते हैं— १९ अनुजिघ्र [नाक से प्रविष्ट, गर्भ सूँघने वाले] २० प्रमृशन् (छूने से अन्दर जाने वाला), २१ क्रव्याद (मांसभक्षी), २२ रेरिह (गर्भबीज को चाटने वाला) २३ श्वकिश्की (कुत्ते के समान सताने वाला) । ६

जो क्रिमि सोतेमें भाई और पिता के समान चिपटता है उन निर्बल-गुणों को बज ओषधि हटा दे ।७
जो तुम्हें सोती स्त्री को छलता, जागती को कष्ट देना चाहता है उन्हें उदय का सूर्य अँधेरे-समान नष्टकरे।८

[मन्त्र ७-८ का ऋग्वेद १०।१६२.५-६ से मिलान करो ।]

हे ओषधि ! जो क्रिमि इस स्त्री को मरे बच्चे वाली, गिरे गर्भ वाली बनाता है उसे नष्ट कर, इसका कमल (योनि-गर्भाशय) केशर वाला, फूल-फल-रहित हो । ९

हे ओषधि ! सायं काल गधे के समान नाद करने वाले जो ये क्रिमि घरों के चारों ओर नाचते हैं उन फैले हुओं का तू गन्ध से विनाश कर—

२४ कुसूल [सुई के समान काँटे वाले], २५ कुक्षिल [बड़े पेट वाले], २६ ककुभ [टेढ़े-मेढ़े, भूसे के रङ्ग के], २७ करुम [जल के समान बुड़बुड़ाने वाले], २८ स्रिम [छोटे सूखे गतिकर्ता]। १०

जो २९ कुकुन्ध [कु कु करने वाले], ३० कुकूरभ [लम्बी कूक लगाने वाले, काटने वाले, दुष्ट हिंसा-कर्म रखते, हीजड़ों के तुल्य नाचते हुए वन में घोष करते हैं उन्हें हम यहाँ से नष्ट करें। ११

जो आकाश में तरते हुए इस सूर्य को नहीं सह पाते, अलक्ष्मीयुक्त; बकरे-तुल्य वस्त्र वाले, छत्ता बनाकर खाल में रहने वाले दुर्गन्धित, लाल मुख वाले, ३१ मकक (रांगने वाले) कृमियों और मच्छरों को हम नष्ट कर दें । १२

हे इन्द्र [वैद्य] ! जो अपने को अतिमात्र कन्धे पर छिपा कर रखते हैं, स्त्रियों के गुह्य-नितम्ब के पीडक हैं उन राक्षसों को तू नष्ट कर । १३

हाथ में शृङ्ग [चिनगारी] लिये जो कृमि स्त्री के आगे पूर्व गुह्य में जाते हैं, पाकशाला और भाड़ में रहते, हँसने वाले, जो जङ्गा में चमक करते हैं उन्हें यहाँ से नष्ट करें । १४

जिनके पंजे पीछे, एड़ियाँ-मुख सम्मुख हैं उन्हें इस स्त्री से, हे आयुर्वेदके स्वामी ! तू ज्ञान से नष्ट कर— ये ३२ खलज = खलिहान में पैदा, ३३ शकधूमज = सड़े कूड़े के धुएँ से पैदा, ३४ उरुण्ड = बड़े-मुख, बहुत अण्डों वाले; ३५ मट मट = यह शब्द करने वाले; पीडाप्रद, ३६ कुम्भमुष्क = घड़े-समान अण्ड-कोशवाले ३७ अयाशु रेंगकर खाने वाले, वायु में गतिशील । १५

बिगड़े नेत्र वाले, विकृताङ्ग, तीव्रगति-रहित -क्षीण-तुच्छ-क्षुद्र क्रिमि स्त्री से दूर रहें । हे ओषधि-वैद्य ! तू उन्हें पैर से कुचल जो पति-रहित होकर अपने पतिवाली स्त्री को घेरना चाहता है । १६

३८ उद्धर्षी = पुलकित हृष्ट, ३९ मुनिकेशी = मुनितुल्यकेशवाला; ४० जम्भयन = जभाँई लेनेवाले ४१ मरीमृश = बार-बार बुरे स्पर्शवाला, ४२ उपेषन् = आक्रामक, ४३ उदुम्बल = उदुकने का बलो, ४४ तुण्डेल = भयानक-मुख, तोड़-फोड़ वाला, ४५ शालुड = घमण्डी को पैर-एड़ी से वैसे ही मसल जैसे कूदती हुई गौ हाँडी को । १७

२१७१ हे स्त्री ! जो तेरा गर्भ नष्ट करे, या पैदा हुआ मारे उस क्रिमि पर पिनाक नामक अभ्रक के साथ हरताल औषधि वैसे ही हृदय पर प्रहार करें जैसे उग्र धनुर्धारी बाण से । १८

जो क्रिमि आधे पैदा गर्भ मारते, प्रसूता पर आक्रमण करते हैं उन दुर्गन्धित स्त्री-रोवियों को पिङ्ग बादल को वायु के समान नाश करे । १९

हे नारी! तू जो गर्भ धारण करे उसे गिराये नहीं, कटि-वस्त्र में बँधी दो उग्र औषधि (बज-पिङ्ग) तेरा गर्भ बचायें । २०

हे स्त्री ! तुझे प्रजा और पति के हितार्थ पिंग इन भूखे खाऊ क्रिमियों से बचाये—
४६ पवीनस [वज्र-तुल्य नाक वाला], ४७ तङ्गल्व [पैरों से काटने वाला] ; ४८ छायक [काटने वाला], और ४९ नग्नक [नङ्गा] । २१

५० द्व्यास्य [दोमुहा], ५१ चतुरक्ष [चार आँख वाला], ५२ पञ्चपाद [पाँच पैर वाला], ५३ अनङ्गुरि [उँगली-रहित], ५४ वृन्तादभि प्रसर्पन् [डण्ठल से चारों ओर रेंगने वाला], ५५ वारीवृत [टेढे टेढ़े चलनेवाले] इनसे सब ओर से रक्षा कर । २२

क्लेशकारी बालों वाले जो कच्चा मांस, पुरुष का मांस और गर्भों तथा अण्डों को खाते हैं उन्हें (क्रिमियों-रोगों-मनुष्यों को) हम यहाँ से नष्ट कर दें । २३

श्वसुर से पुत्र-वधू-तुल्य जो क्रिमि सूर्य से अलग हट जाते हैं उनका हृदय बज-पिङ्ग छेद डालें । २४
हे पिङ्ग पैदा होते का न, अडा-मदों पुरुष-स्त्री को न मारें, गर्भ नाश न करें, यहाँ से क्रिमि हटा । २५

(हे औषधि)! तू बन्ध्यापन, बच्चा मरना, रोना (मिर्गी), पाप-दुःख-योग को अप्रिय पर छोड़, जैसे वृक्ष से फूल-माला बनाकर उसको छोड़ देते हैं । २६

❀

अनुवाक ४ सूक्त ७ से ८ तक

विषय— वैद्यक शास्त्रोपदेशौषधि परिगणन द्वारा गर्भाधान-संरक्षण धातुरक्षण बुद्धि-वृद्ध्यादि पदार्थ विद्या इन्द्रजालवद् युद्धजयादि विद्या

२८ मन्त्रों का सूक्त ७ । औषधियाँ ।

७ या बभ्रवो याश्चशुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः। असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ।। १

२१८० त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि ।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ।। २

८१ आपो अग्रं दिव्या ओषधयः । तास्ते यक्ष्ममेनस्य१मङ्गादङ्गादनीनशन् ।। ३

८२ प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ।। ४

८३ यद् वः सहः सहमाना वीर्य१ यच्च वो बलम् ।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ।। ५

८४ जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेस्मा अरिष्टतातये ।। ६

२१८५ इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम । यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ ७

८६ अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्नवाः । ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥ ८

८७ अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः । व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥ ९

८८ उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः ।

अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः ॥ १०

८९ अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः । त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ॥ ११

९० मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव ।

मधुमत्पर्णं मधुमत्पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥ १२

९१ यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः । ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३

९२ वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः । अमीवाः सर्वा रक्षांस्यपहन्त्वधि दूरमस्मत् ॥ १४

९३ सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः ।

गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः ॥ १५

९४ मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि । भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥ १६

९५ या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च । ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥ १७

९६ याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा । अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् ॥ १८

९७ सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम । यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ १९

९८ अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः । व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ ॥ २०

९९ उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः । यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥ २१

२२०० तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि । अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः ॥ २२

१ वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् । सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥ २३

२ याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः । वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः । मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे २४

३ यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः ।

तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः । २५

४ यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः । तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥ २६

५ पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत । संमातर इव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये ॥ २७

६ उत्त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत । अथो यमस्य पड्वीशाद्विश्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥ २८

ॐ ॐ

सूक्त ७ में ओषधियों से रोग-विनाश

२१७६ जो ओषधियाँ पोषक-वीर्यवर्धक-भूरी-सफेद-घावपूरक-विविध-रंग-रस-पोषक-फलयुक्त-काली हैं उनको बताते हैं । १

वे ओषधियाँ, जिनका पिता सूर्य, माता पृथिवी, मूल समुद्र-मेघ हैं, पुरुष की विषय-क्रीड़ा और वर्षा से उत्पन्न यक्ष्मा से रक्षा करें । २

जल मुख्य है ओषधियाँ दिव्य हैं वे तेरे पाप से उत्पन्न रोगों को अंग-प्रत्यंग से नष्ट करें । ३

मैं अच्छे प्रकार फैलने वाली, गुच्छों-युक्त, एक कोंपल वाली, बहुत फैली; बहुत कोंपलों वाली; सोम-गुण-युक्त, पर्व वाली, शाखा-रहित, बहुत शाखा वाली, विशेष दिव्य शक्ति-युक्त, प्रभावयुक्त, पुरुषों की जीवन-दायिनी ओषधियाँ बताता हूं । ४

हे बली ओषधियो ! तुम शक्ति-वीर्य-बल से इस पुरुष को यक्ष्मा से बचाओ, मैं चिकित्सा करूँ । ५

हानि न करने वाली जीवन-दायिनी जीवन्ती (जीवशाक-गिलोय-इड़), जीवला (सिंह पिप्पली), उन्नति-कारिणी, घाव भरनेवाली अरुन्धती, मधुर पुष्पा ओषधियों को यहाँ इस (रोगी) की नीरोगिता के लिए मैं (वैद्य) बताता हूं । [यह मन्त्र कुछ भेद से पहले संख्या २०५७ पर ८.२.६ में आया है ।] ६

चेतनेवाली-स्निग्ध ओषधियाँ मुझ ज्ञानी के वचन से यहाँ आयें जिनसे इस पुरुष को रोग से पार करें । ७

जो ओषधियाँ अनेक-नामक, जल-युक्त पुनर्णवा आदि बार-बार नयी उगती हैं हजारों नामों से स्थिर प्रभावशाली हैं वे संगृहीत हों । ८

काई-शिवार में उत्पन्न, जल में जीवित, तीक्ष्ण काट करनेवाली ओषधियाँ रोग बाहर करें । ९

रोग छुड़ाती; विरोध स्वीकार्य, उग्र, विषविनाशक- [illegible] ओषधियाँ यहाँ हों । १०

जो बहुमूल्य-बली-प्रशंसित ओषधियाँ हैं वे इस नगर में गौ-अश्व-पुरुष-पशु को बचायें । ११

इन ओषधियों के जड़-अगला भाग-मध्य-पत्ता-फूल मधुर हैं, जल की सींची ये अमृत का भोजन भण्डार हैं, ये गौ को मुख्य करके घी-अन्न दुहायें (दें) । १२

पृथिवी पर जितनी, कितनी ही ओषधियाँ हैं हजारों पत्तोंवाली वे मुझे मौत-दुःख से बचायें । १३

ओषधियों की बनी, विशेष गन्ध वाली, बाघ-सी बली, रक्षक गोली पीडा से बचाने वाली है । यह सब रोगों-क्रिमियों-विघ्नों को हम से दूर हटाये । १४

शेर की गर्जना और आग के समान इन लायी-प्रयुक्त ओषधियों से रोग भय-भीत रहते हैं, इन से दूर भगाया गौओं-पुरुषों का रोग नाव से पार करने योग्य नदियों के पार दूर जाए । १५

जिनका राजा सोम है ऐसी रोग छुड़ाती ओषधियाँ वैश्वानर अग्नि के सहारे भूमि पर बढ़ें । १६

जो अंगों में रस देने वाली, अंगिरा की बतायी ओषधियाँ पहाड़ों-मैदानों में उगती हैं वे दूबवाली कल्याणी हमारे हृदय के लिए शान्ति दें । १७

जिन्हें मैं पाता, चक्षु से देखता हूं वे अज्ञात-जानी ओषधियाँ जिनमें रस-वीर्य भरा पुरा पाते हैं । १८

वे सब सब प्रकार की ओषधियाँ मेरे ये वचन जानें जिससे इस पुरुष को रोग से पार करें । १९

पीपल-कुश-ओषधि-राजा सोम-गिलोय अमृत ग्राह्य हैं; चावल-जौ-द्यौ-पुत्र(सूर्य-चन्द्र)अमर हैं । २०

हे पृथिवी माता की ओषधियो ! जब मेघ गरजता-कड़कड़ाता, जल से पालता है, तुम बढ़ती हो । २१

२२०० तुम्हारा उस अमृतका यह बल पुरुषको पिलायें और चिकित्सा करें जिससे यह शतायु हो । २२

१ सुअर-नेवला-सर्प-गन्ध सूंघनेवाले(कुत्ते) जो ओषधियाँ जानते हैं उन्हें इनकी रक्षार्थ पाऊँ । २३

अंग में रस लाने वाली, अंगिरा-निर्दिष्ट जो औषधियाँ सुन्दर पर वाले पक्षी (गरुड़-गिद्ध आदि);
पक्षी हंस आदि सब हिरन आदि पशु जानते हैं उन्हें मैं इस रोगी की रक्षा के लिए प्रयुक्त करूँ। २४
जितनी औषधियाँ अहिंस्य गौएँ-बकरी-भेड़ें खाती हैं उतनी लायी गयीं तुझे सुख दें। २५
वैद्य मनुष्य चिकित्सा में जितनी औषधियाँ जानते हैं उतनी सब मैं वैद्य तुझ रोगी के लिए लाऊँ। २६
फल-पत्ते अंकुर-फलवाली फल-रहित, माताके समान औषधियाँ इसके स्वास्थ्य के लिए दुहाएँ। २७
मैं (वैद्य) तुझ (रोगी)को ५ प्राणों, १० इन्द्रियों के रोगों, मन की जड़ता (उन्माद-अपस्मार);
मौत की बेड़ी और देवों (विद्वानों-प्राकृतिक शक्तियों)के प्रति किये गये सब पापसे ऊपर उठाऊँ। २८

—❀—

२४ मन्त्रों का सूक्त ८। देवता इन्द्र और मन्त्रोक्त। शत्रु-नाश के उपाय

२२०७.इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः। यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥ १

८ पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिसेनां कृणोत्वमूम्। धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् २

९ अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून्खदिराजिरम्। ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां हन्त्वेनान्वधको वधैः

१० परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तो बृहज्जालेन संदिताः ॥ ४

११ अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः। तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत्॥ ५

१२ बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ॥ ६

१३ बृहत्ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥ ७

१४ अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान्। तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ८

१५ सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना। श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ॥ ९

१६ मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥ १०

१७ नयताभून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत। परःसहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥ ११

१८ साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा। रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥ १२

१९ विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा। मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् ॥ १३

२० वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः। द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥ १४

२१ गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान्पुण्यजनान्पितॄन्। दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् १५

२२ इमे उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे। अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥ १६

२३ घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः। भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् ॥ १७

२२२४ मृत्योराषमापद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम्। इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम्॥१८
२५. पराजिताः प्रत्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा। बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन॥
२६ अवपद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन्प्रतिधामिषुम्। अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि॥

२७ सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उपयन्तु मृत्युम्॥२१

२८ दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः।
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किङ्कराः वाक् परिरथ्यम्॥ २२

२९ संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम्। इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः

३० इतो जयेतो विजय संजय जय स्वाहा। इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो
दुराहामीभ्यः। नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि॥ २४

सूक्त ८ के २४ मन्त्रों में शत्रु-नाश के उपदेश हैं-

२२०७ मथने वाला, शक्तिमान्-शूर गढ़-भेदी इन्द्र (सेनापति) दुष्टों का मथन करे जिससे हम शत्रु-सेनाएँ सहस्र प्रकार से नष्ट कर दें। १

आग-युक्त, चटचट करती दुर्गन्धित विस्फोटक बारूद की रस्सी इन सेना को तितर-बितर करे, धुआँ-आग देखकर शत्रु हृदय में भय-भीत हों। २

अश्व पर स्थित सेना इनका नाश करे; खदिर (खा जाने वाला सेनापति) इन पर निरन्तर बल-प्रहार करे; शीघ्र टूटने वाले अण्ड-वन के सूखे वृक्षवत् शत्रु टूटें। वधक इन्हें शस्त्रों से मार। ३

कठोर आह्वान-कर्ता इन कठोरों को मारे; वधकर्ता शस्त्र से मारें, बड़े जाल से बंधे, शस्त्र-कटे शत्रु सरकण्डे के समान नाश हों। ४

अन्तरिक्ष में शस्त्र जाल, बड़ी दिशाएँ उसके दण्ड बनें, उससे दस्यु-सेना घेरकर सेनापति मारे। ५

बड़े सेनापति का बड़ा शस्त्र-जाल हो; उससे सब शत्रु घेर ले जिससे इनका कोई न बच पाये। ६

हे शूर सेनापति! हजारों से पूज्य, सैकड़ों शक्तिवाले; विशाल तेरा जाल बड़ा है उससे सेना-द्वारा सौ-हजार-दस हजार-दस करोड़ तक दस्युओं को घेरकर मार। ७

यह महान् लोक महान् विद्युत् का जाल हो, मैं उस इन्द्रजाल तम शस्त्र से उन सब को घेर लूँ। ८

बड़ा उग्र महामारी-निर्धनता-अकथनीय कष्ट-परिश्रम-तन्द्रा-मोह इन से उन सबको घेरता हूं। ९

उन्हें मौत के लिए देता हूं, ये मौत के पाशों से बँधें, इन्हें बाँधकर मौत के कष्टदायी दूतों को सौंपूं। १०

हे मौत के दूतो! इन्हें ले जाओ, यमदूतो! बाँध लो, ये हजारों मारे जायँ, राजा का मुद्गर चूरचूर करे। ११

साधक एक जालदण्ड लेकर आगे चलते हैं, रुद्र दूसरा, वसु तीसरा, आदित्य चौथा लेकर चलते हैं। १२

सब विजिगीषु ऊपर से बल से सीधे चलें, अङ्गिरस मध्य में बड़ी सेना को मारते हुए चलें। १३

वनस्पति-वानस्पत्य-औषधि-लता-दुपाए-चौपायों का प्रयोग करूँ जिससे वह सेना मार पाऊँ। १४

भूमिचर-जलचर-सर्प-देव-पुण्यात्मा-पितर-देखे-अदृष्ट को चाहूं, जिस से यह शत्रु-सेना मारूँ। १५

हे शत्रो! ये मौत के पाश फैले हैं जिन्हें पारकर न छूटेगा; यह फन्दा तेरी सेना हजारों प्रकार मारे। १६

२२२३
हजारों को मारने वाला यह युद्ध-होम आग्नेयास्त्रों से दीप्त हो, राजा-सेनापति उस सेना को मारें।१७
[illegible] मारक ताप-भूख-महामारी-जय-भय पायें, और सेनापति-राजा अस्त्र-ज्ञातों से वह सेना मारें १८
हे शत्रुओ! हारकर भीत होओ, ब्रह्मास्त्र-पीडित भागो, बड़े पति के पछाड़े इनमें कोई न बचे। १९
इनके अस्त्र नीचे गिरें, वे वाण न रोक सकें, वाण इन अति भीतों के मर्म पर वार करें। २०
देवों के साथ द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष इनकी निन्दा करें, ये ज्ञानी और प्रतिष्ठा को न पायें, परस्पर मारते हुए मरें। २१

विजयेच्छु रथ की घोड़ियाँ ४ दिशाएं, खुर पुरोडाश, बैठक अन्तरिक्ष, दोनों पक्ष द्यावापृथिवी, लगामें ऋतुएं; सेवक अन्तर्दिशाएं; पहिया वाणी है। २२

रथ संवत्सर; रथ की बैठक परिवत्सर; जुए का दण्ड विराट्, रथ का अगला भाग अग्नि; साथी बायाँ सारथि सूर्य और दायाँ चन्द्रमा है। २३। [२२-२३ युग्म और रूपक अलंकार हैं।]

२२३० यहाँ जय-विजय-संजय हो। जय सुवचन स्वार्थ-त्याग है। ये जीतें वे हारें। इनके लिए सुवचन उनके लिए दुर्वचन हों। नीली-लाल वरदी की सेना से, नीला खून करके उनको छिन्न-भिन्न करदूं। २४

अनुवाक ५ सूक्त ९ से १० तक

अनुवाक-विषय- प्रश्नोत्तर ईश्वराग्न्यादि, प्रश्नोत्तर विराडीश्वराद्यनेकविधविषनिवारणादि पदार्थविद्या।
सूक्त ९। दूसरा ब्रह्मोद्य सूक्त (पहला ५-१); विराट् (प्रकृति, ईश्वर-शक्ति)

२२३१ कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा॥ १

३२ यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिङ्कृत्वा त्रिभुजं शयानः।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः॥ २

३३ यानि त्रीणि बृहन्ति येषाञ्चतुर्थं वियुनक्ति वाचम्।
ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम्॥ ३

३४ बृहतः परि सामानि षष्ठात्पंचाधि निर्मिता। बृहद्बृहत्या निर्मितङ्कुतोऽधि बृहती मिता॥ ४

३५ बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता। माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि॥ ५

३६ वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः॥ ६

३७ षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यञ्च।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः॥ ७

३८ यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम्।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराड् ऋषयः परमे व्योमन्॥ ८

२२३९ अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥ ९

४० को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पमस्याः ।
क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥ १०

४१ इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥ ११

४२ छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ १२

४३ ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥ १३

४४ अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्कीं यजमानाय स्वराभरन्तीम् ॥ १४

४५ पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥ १५

४६ षड् जाता भूता प्रथमज ऋतस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति ।
षड् योगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः ॥ १६

४७ षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ॥ १७

४८ सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्त ऋतवो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः सप्त गृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ॥ १८

४९ सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि ।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि ॥ १९

५० कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमेकविंशः ॥ २०

५१ अष्ट जाता भूता प्रथमज ऋतस्याष्टेन्द्र ऋत्विजो दैव्या ये ।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥ २१

५२ इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा ।
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥ २२

२२५३ अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्या३नोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे ॥ २३

५४ केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ३ असुरानुत ऋषीन् ॥२४

५५ को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः। यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकऋतुः कतमो नु सः ॥२५

५६ एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकऋतुर्नाति रिच्यते ॥ २६

२५ मन्त्रों के द्वितीय ब्रह्मोद्य सूक्त ६ में प्रश्नोत्तर शैली में विराट् का वर्णन

२२३१ प्रश्न– दोनों कहाँ से पैदा हुए, कौन-सा समुद्र है, किस लोक से, विराट किनसे दुहाती है? उत्तर– दोनों (रयि-प्राण; सोम-अग्नि, स्त्री-पुरुष) वत्स सलिल (प्रकृति) में पैदा हुए । १

३२ जो अपनी महिमा से प्रकृति क्षुब्ध करता, (सत्त्व-रजः-तम: के) त्रिभुज को मिश्रित-अमिश्रित कर व्यापक है, वह (प्राण) विराट्-गौ का वत्स है, वह दूर गुप्त गुहा में शरीर बनाता है । २

३३ जो तत्त्वादि बड़े तीन हैं उनकी अपेक्षा चौथा (जीवात्मा) पाँचवीं वाणी को पाता है, विद्वान् उस तप से इसको ब्रह्म जाने जिसमें एक आत्मा का ही योग-द्वारा ध्यान किया जाता है । ३

३४ छठे बड़े ब्रह्म के महत्तत्त्व से पाँच (तन्मात्राएँ और आकाशादि भूत) पैदा हुए । यह महत्तत्त्व कार्यप्रकृति से बना । प्रश्न– यह किससे बनी ? । ४

३५ उत्तर– कार्य-प्रकृति सूक्ष्म कारण-प्रकृति से बनी; जो अपनी माता (ब्रह्म) की शक्ति से प्रकट हुई । उस माया (प्रकृति) से माया बनी जो स्वयम्भू है जिसका अधिष्ठाता मातली (ब्रह्म-जीव) है । ५

३६ संवत्सर की उपमा ऊपर का द्यौ है; अग्नि (ईश्वर) द्यावा-भूमि में व्यापक है, उस दूर से दूर व्यापक छठे (ब्रह्म) की व्यवस्था से स्तोम (स्तुत्य लोक आदि) पैदा और लय होते हैं । ६

३७ प्रश्न –हे विद्वान् ! ६ द्रष्टा (५ ज्ञानेन्द्रियाँ-मन) जानना चाहते हैं क्योंकि तू ध्येय-ध्यातव्य का ध्यान करता है– विराट् ब्रह्माण्ड-पालक कहाता है उसे जितने प्रकार हो सके हमें ज्ञानेन्द्रियों को बता । ७

३८ हे द्रष्टाओ ! जिनके अप्रकट होने पर व्यवहार लुप्त, प्रकट होने पर व्यवस्थित होते हैं, नियम में पूज्य ब्रह्म चेष्टा करता है वह विराट् परमव्योम (विशेष ओम् रक्षक परमात्मा) में है । ८

३९ विराट् अप्राणी होकर प्राणियों के प्राण के साथ रहती है, विराट् (परमात्मा) के पीछे चलती है । सब में संयुक्त विराट् को कोई देखते कोई नहीं । ९

४० प्रश्न– विराट् का जोड़ा, इसकी ऋतुएँ–सामर्थ्य-क्रम, विविध सृष्टियाँ कितनी बार हुयीं यह, इसका धाम, और कितनी शक्तियाँ हैं यह कौन जानता है ? उत्तर– क (परमात्मा) जानता है । १०

४१ यही वह विराट् है जो पहले विविध रूपों में प्रकट हुई, इन और अन्य सृष्टियों में प्रविष्ट हो गति करती है । इसके अन्दर बड़ी शक्तियाँ हैं, यह उत्पादक नयी वधू के समान सबको जीतती है ।११
यह मन्त्र पहले भी ३–१०–४ में आया है ।

४२ छन्द (दिशा) रूपी पंखोंवाली रूपवती दो उषाएँ (प्रातः-सायं दिन-रात) समान कारण (सूर्य) के पीछे चलती हैं । सूर्य-पत्नी पताका वाली जानती-चेताती बहुत बली वे मिलकर चलती हैं । १२

४३ तीन देवियाँ [इडा-सरस्वती-मही भारती, शरीर-मन-आत्मा की शक्तियाँ] सत्य नियम के

मार्ग पर चलती हैं, ३ यज्ञ [देवपूजा-सङ्गतिकरण-दान, पितृ-ब्रह्म-देवयज्ञ, भौतिक-आत्मिक-दैविक ३ तेज] गीरता के साथ चलते हैं। एक इडा प्रजा को तृप्त करती, दूसरी सरस्वती बल को रक्षा करती, तीसरी मही देव-युवाओं के राष्ट्र को बचाती है। १३

४४ महर्षि अग्नि-सोम को यज्ञ के दो पक्ष मानते हुए सत्त्व-रजस्तम से चौथी ब्रह्मशक्ति को यजमान के लिए सुख-दायिनी गायत्री (प्राण-रक्षक); त्रिष्टुप् (त्रिलोक-स्तुत्य,)जगती (गतिशील), अनुष्टुप्(निरन्तर स्तुत्य) बड़ी पूज्य मानकर धारण करते हैं; चारों छन्दों से उपासना करते हैं। १४

४५ पाँच व्युष्टियों (प्राणों) के पीछे ५ पूर्तियाँ; ५ तन्मात्राओं के पीछे पाँच इन्द्रियाँ-भूत हैं; ५ दिशाओं और पञ्च नामक पृथिवी के साथ ५ ऋतुएँ हैं वे १५ (५ प्राण, १० इन्द्रिय वाले) आत्मा के साथ समर्थ, एक सिर वाले लोक(सूर्य) के आश्रित हैं। १५

४६ सत्य से पहले उत्पन्न शरीर-धारक ६ इन्द्रियाँ-मन हैं, यज्ञ में ६ साम ६ दिनों को ले जाते हैं, ६ विषय-संयुक्त प्राण सहायक हैं; ६-६ विस्तृत द्यावा-पृथिवियाँ हैं; दोनों के बीच ६ केन्द्र हैं। १६

४७ शीतल-गरम ६-६ महीने हैं, वह ऋतु हमें बताओ जो अतिरिक्त है; ७ सुन्दर कर्मवाले इन्द्रिय-केन्द्र सिर में स्थित हैं; ७ छन्दों के साथ यज्ञ की ७ दीक्षाएँ हैं। १७

४८ होम-समिधा-मधु-ऋतु-घी ७-७ सब प्राणियोंके साथ हैं, ७ इन्द्रियाँ गिद्ध हैं यह हम सुनते हैं। १८

४९ गायत्री आदि ७ छन्द ४-४ बढ़ने वाले परस्पर सम्बद्ध हैं. उनमें स्तोम कैसे अच्छे रहते हैं और वे छन्द इन स्तोमों में कैसे अच्छे अर्पित हैं। १९

५० गायत्री त्रिवृत् स्तोम में कैसे व्याप्त हैं, त्रिष्टुप् पञ्चदश से, जगती त्रयस्त्रिंश से, और अनुष्टुप् एकविंश से कैसे ठीक बनते हैं। २०

५१ सत्य नियम से ८ भूत(पृथिवी-जल-अग्नि-वायु-आकाश-मन-अहङ्कार-महत्तत्व) पहले पैदा हुए, हे जीव ! जो दैव्य ऋत्विज हैं, ८ पुत्रों वाली ८ की माता अदिति(प्रकृति) ८ को पैदा कर सृष्टि के रूप में आती है; व्याप्त को नापने वाली मुक्ति में सुख तक पहुंचाती है। २१

५२ [विराट् कहती है- हे मनुष्यो !] इस तरह कल्याण मानती मैं इस जगद् रूप में आती हूं; तुम्हारी मित्रता में सुखदायिनी हूं, समानजन्मा यज्ञ-राष्ट्र तुम्हें कल्याण-कारी है, वह तुम्हारी सब बातें जानता हुआ संचार करे। २२

५३ जीवात्मा के ८ योगाङ्ग, काल की ६ ऋतुएँ, द्रष्टा इन्द्रियों के ७ प्रकार ७ प्राण हैं, उन सबको कर्मों-मनुष्यों-औषधियों को भी ५ भूत सींचते हैं। २३

५४ पहले दुही जाती केवल विराट् गौ जीव के लिए बल-अमृत दूध देती है और देव-मनुष्य-असुर और ऋषि चारों को ४ तरह [धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष] से तृप्त करती है। २४

५५ प्रश्न- कौन गौ, कौन एकऋषि, कौन धाम, कौन आशीर्वाद है ? पृथिवी पर एक वरणीय पूज्य वह व्यापक गति-शील कौनसा है ? २५

५६ उत्तर- एक(प्रकृति)गौ है, पृथिवी पर एक परमेश्वर ही द्रष्टा-धाम-आशिष-अभिलाषा-पूज्य एकरस व्यापक गतिशील है, जिससे बड़ा कोई नहीं है। २६ ❀

६ पर्यायों के ६७ मन्त्रों का तीसरा ब्रह्मोद्य सूक्त १०। विराट्

पर्याय १। १३ मन्त्र। विराट् (राजा-रहित राष्ट्र)

२२५७ विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥ १
५८ सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥ २
५९ गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥ ३
६० सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ॥ ४
६१ यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥ ५
६२ सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥ ६
६३ यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥ ७
६४ सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥ ८
६५ यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥ ९
६६ सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥ १०
६७ यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥ ११
६८ सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥ १२
६९ यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥ १३

सूक्त १० का पर्याय २ । मन्त्र १०

७० सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ॥ १
७१ तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभय उपजीवेमेमामुप ह्वयामहा इति ॥ २
७२ तामुपाह्वयन्त ॥ ३
७३ ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥ ४
७४ तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥ ५
७५ बृहच्च रथन्तरञ्च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियञ्च वामदेव्यञ्च द्वौ ॥ ६
७६ ओषधीरेवास्मै रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत् ॥ ७
७७ अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥ ८
७८ ओषधीरेवास्मै रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत् ॥ ९
७९ अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद ॥ १०

सूक्त १० का पर्याय ३ । ८ मन्त्र

८० सोदक्रामत्सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोऽघ्नत सा संवत्सरे समभवत् ॥१
८१ तस्माद्वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥ २
८२ सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितरोऽघ्नत सा मासि समभवत् ॥ ३
८३ तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ४
८४ सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत् ॥ ५

वेद का अनर्थ (२२)

वेदमें कोई कहानी नहीं
[वी० सरस्वती]

स्वामी गङ्गेश्वरानन्द उदासीन ने वेदप्रदीप जनवरी ९१ के अंक में पृष्ठ १८ पर अपनी वेदोपदेश-चन्द्रिका के श्लोक ६१-६३ में ऋग्वेद १०-४४-६ में कृष्ण-इन्द्र, १०.४८.७ में इन्द्र, और १०.६०.१२ में सुबन्धु का वर्णन बताया जो असत्य है। सृष्टिके आदि में ईश्वर-दत्त वेद में कहानी नहीं हो सकती।

१०-४४-६ और १०-४८-७ में कृष्ण-इन्द्र का कहीं नाम तक नहीं है। १०-६० के मन्त्र २,५,७ में असमाति-अगस्त्य व्यक्तियों के नाम नहीं, जीव के विशेषण हैं जिनका अर्थ क्रमशः असम्बद्ध और पाप-रहित है। असमातिषु बहुवचन में होने से नाम हो ही नहीं सकता। किरात आकुलि कहीं नहीं। बन्धु-विप्रबन्धु-श्रुतबन्धु-सुबन्धु चार भाई मन्त्र-द्रष्टा अवश्य हैं पर उनकी कहानी सूक्त में नहीं है। मन्त्र ७ में सुबन्धु शब्द से प्राण को अच्छा सहायक तो बताया है परन्तु ऐसे नाम के पुरुषका मरना-जीना नहीं बताया। मरे शरीर में आत्मा को बुलाना और उसका फिर आजाना असम्भव है।

मन्त्र १२ में वैद्य द्वारा हस्ताभिमर्श-चिकित्सा (हिप्नोटिज्म) की बात बतायी गयी है; मरे सुबन्धु के प्राणों का आह्वान नहीं है।

अतएव सूक्त में सुबन्धु के मारने-मरने और जिलाने-जीने की कहानी सायण आदि की मनगढ़न्त है। मन्त्रों में ये कहानियाँ बताना वेद का अनर्थ है।

समाचार

—इराक-अमरीका-युद्ध भीषण दशा में चल रहा है। समुद्र में तेल की आग से पर्यावरण दूषित है।
—केन्द्र में श्री चन्द्रशेखर का, उ०प्र० में श्री मुलायमसिंह का शासन अधिक चलने की आशा नहीं है।

दिल्ली में २३ से २६ दिसम्बर तक अन्तर्राष्ट्रिय सार्वदेशिक आर्य महा सम्मेलन हुआ। उसमें वेद-सम्मेलन भी हुआ।

विश्व वेदपरिषद् लखनऊ की मासिक वेद-सङ्गोष्ठी माघ शु. ५ को आर्यसमाज शृङ्गारनगर में हुई जिसमें वीरेन्द्र सरस्वती का प्रवचन हुआ। वहां आचार्य वेदव्रत शास्त्री ने श्री रूपचन्द्र दीपक के पुत्र का उपनयन संस्कार समारोह सम्पन्न कराया।

महर्षि दयानन्द-स्मारक ट्रस्ट टङ्कारा का ३३ वां वार्षिकोत्सव १२-१४ फरवरी ९१ को होगा। उसमें वेद-सम्मेलन और छात्र-छात्राओं की प्रतियोगिताएँ भी होंगी।

—आर्यसमाज सान्ताक्रुज बम्बई ने १६-१-९१ का अपना १९९१ का २१०००) वेद-वेदाङ्ग-पुरस्कार श्री स्वामी विद्यानन्द सरस्वती दिल्ली को, ११०००) का वेदोपदेशक पुरस्कार महात्मा प्रेमभिक्षु मथुरा को, विशेष सम्मान ७५०००) म०म० युधिष्ठिर मीमांसक बहालगढ़ को, ५१०००) श्री सत्यकाम विद्यालंकार बम्बई को प्रदान किये। चारों को हार्दिक बधाई दी जाती और अभिनन्दन किया जाता है !!!!

—शोक है कि निम्नांकित आर्य वेदज्ञ महानुभावों का देहान्त हो गया; परमात्मा उन्हें शान्ति-सद्गति दे-
श्री डा० देवसुमन (सोनीपत), श्री सत्यनारायण भण्डारी प्रधान आर्यसमाज सिकन्दराबाद आन्ध्र,
श्रीमती अक्षयकुमारी, ३० वर्षों से आचार्या-मुख्याधिष्ठात्री कन्या गुरुकुल हाथरस [१४-१२-९०]

पृ. ३२, वर्ष १५ अङ्क २ फाल्गुन(तपस्य)२०४७ वेदज्योति फरवरी ६१, न.६९२१/६२ डाक लख

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष -२-६१को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

शतपथ, निरुक्त, अष्टाध्यायी, वेदार्थपारिजात-खण्डन

अथर्ववेद, सामवेद के ब्राह्मण

अनुवादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), दैवताध्याय १०), शतपथ काण्ड१-२, २०), वेदार्थपारिजातखण्डन २०) साम वंश ब्राह्मण१०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००)मगाइये।

—वीरेन्द्र सरस्वती, उपाध्यक्ष, ओजोमित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी८१७ महानगर लखनऊ ६

वैदिक दैनन्दिनी चैत्र २०४७–४८ विक्रम

तिथि कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ७ ८ ६ १० ११ १२ १३ १४ १५पू
वार शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श
नक्षत्र पू उ ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू मू पू उ श्र ध शत पू उ रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु श्ले म पू उ ह
ता. मा १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६ उ० प्र०, भारत, पिन २२६००६

सेवा में क्रमांक

श्री

स्थान

पत्रालय

पिन

जनपद

प्रदेश

ऋग्वेद　　　　ओ३म्　　　　यजुर्वेद

वर्ष १५
अंक ३

वेद-ज्योति

चैत्र
२०४८
मार्च
१९९१

अथर्व वेद
खण्ड १५

साम वेद　　　　अथर्व वेद

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९१, दयानन्दाब्द १६६

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक — वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्

सहायक — विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २६ दूरभाष ७३५०१

दिल्ली कार्यालय —श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, बी६ हिल व्यू [illegible] ५७, दूर ६०१४५२

स्वर्गीय श्री सत्यदेव आर्य

वेदर्षि वेदाचार्य प० विश्वनाथ
देहरादून १४ अक्टूबर ९०
रुग्ण हूं; १०१ वर्षों की वृद्धावस्था

लखनऊ १७ फरवरी ९१
श्यापक पौत्र के नामकरण,
मुण्डनसंस्कार सम्पन्न हुए

सत्यार्थप्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमाङ्क ६८। ऋषि- कवष ऐलूष, देवता- विश्वेदेवाः, छन्द- त्रिष्टुप्, स्वर-धैवत।

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान् यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥

ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ३१, मन्त्र ८

महर्षि दयानन्द- यह ऋग्वेद का वचन है। इसी उक्षा शब्द को देखकर किसी ने बैल का ग्रहण किया होगा, क्योंकि उक्षा बैल का भी नाम है। परन्तु उस मूढ़ को यह विदित न हुआ कि इतने बड़े भूगोल को धारण करने का सामर्थ्य बैल में कहाँ से आवेगा? इसलिए 'उक्षा' वर्षा द्वारा भूगोल के सेचन करने से सूर्य का नाम है। उसने अपने आकर्षण से पृथिवी को धारण किया है। परन्तु सूर्यादि का धारण करने वाला बिना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं है। [सत्यार्थप्र० समुल्लास ८]

श्री जयदेव शर्मा- इन से परे दूसरा कुछ पदार्थ नहीं है, वह जगत् का धारण करने और प्रकृति में जगत्मूलक बीज निषेक करने वाला पुरुष ही इस सूर्य और पृथिवी को धारण करता है। वही पोषणकारिणी शक्ति का स्वामी होकर तेजोमय आकाश रूपी आवरण को बनाता है, दिशाएँ जैसे सूर्य को धारण करती हैं वैसे ही जगत् के पदार्थ उसको अपने में धारण करते हैं।

श्री वैद्यनाथ शास्त्री- जब इस सूर्य को किरणें नहीं धारण करती हैं अर्थात् सृष्टि के पूर्व की अवस्था में, तब प्रकृति को धारण किये हुए परमेश्वर जगत् के अग्नि वायु आदि पदार्थों के समूह और जीवों के त्वचा से युक्त शरीर को बनाता है। इससे अधिक या इस सामर्थ्य वाला इस परमेश्वर से परे दूसरा कोई नहीं है; महान् बलशाली वही परमेश्वर द्यु और पृथिवी लोक को धारण करता है।

समाचार

—अमरीका-इराक-युद्ध भीषण रूपसे चल रहा है, रूसकी विराम-शर्त अस्वीकार, नापाम बम प्रयुक्त।
—लखनऊ में स्टेशन पर ८-२-९१ को और गाजियाबाद में बस में हुए बम-विस्फोट में अनेक मरे।
- शिवरात्रि-होली पर्व मनाये गये। लखनऊ में भी सब आर्यसमाजों की शोभा-यात्रा निकली।
-डा० कपिलदेव द्विवेदी, (कुलपति गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर) 'पद्मश्री' से सम्मानित हुए।
-आर्यसमाज पुलेरा (जयपुर) के १९९१ के महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार ५०००) के लिए कोई भी आर्य विद्वान् पूर्ण विवरण तथा कृतियों सहित अपना नाम ३१-७-९१ तक प्रस्तुत कर सकता है।
—शोक है कि श्री वेदभूषण वेदालंकार(गङ्गोह), ६२ वर्षीय प० आनन्दप्रिय जी(बडोदरा)का १९-१-९१, और ९२ वर्षीय प० ब्रह्मदत्त शास्त्री (अजमेर) का १७-१-९१ को देहान्त हो गया।

* विश्व वेदपरिषद्-संचालित वेदाचार्य परीक्षा-पाठ्यक्रम- ४ प्रश्न पत्र और मौखिक *
प्रश्नपत्र १- आधा वेद कण्ठस्थ, व्याख्या, प्रातिशाख्य। २य पत्र शिक्षा, ब्राह्मण, आरण्यकोपनिषद्।
,, ३- सम्बन्धित वेद के श्रौत-गृह्य-धर्म-शुल्बसूत्र। चतुर्थ - शेष आधा वेद, उपवेद, निरुक्त।
आगामी सभी परीक्षाएँ श्रावणी २०४८ वि० को होंगी। सशुल्क आवेदन १ मास पूर्व भेजें। -मन्त्री।

उखा-सम्भरण (चयन-निरूपण) नामक

शतपथ ब्राह्मण काण्ड ६, अध्याय १ ब्राह्मण १

इस काण्ड में प्रतिपाद्य विषय— उखा-सम्भरण, विष्णुक्रम-वात्सप्रोपस्थान, वनी-वाहन।
[हिरण्यगर्भ-कर्तृक सृष्टि-वर्णन] (उसमें विराट और पृथिवी आदि की उत्पत्ति)

पहले यह असद् था। वह असद् ऋषि अर्थात् प्राण थे, वे इस सबसे पहले इसे चाहते हुए श्रम-तप से रिष=गति करने लगे अतः ऋषि कहाये। १

वह जो यह मध्य में प्राण है यही इन्द्र है जिस ने अन्य प्राणों को गति दी, इन्द्रिय से इद्ध(दीप्त) हो इन्ध और फिर परोक्ष वही इन्द्र हुआ, क्योंकि देव परोक्ष-काम हैं जिन्होंने ७ प्राण बनाये। २

वे बोले- ऐसे हम प्रजनन न कर सकेंगे अतः ७ प्राणों का एक पुरुष कर दें, ऐसा ही किया। नाभि के ऊपर-नीचे दो-दो, दोनों तरफ दो, एक मध्य में रक्खा। ३

सातों का श्री-रस ऊपर दुहा, जो आश्रय होने के कारण 'शिर', श्री को दुहने से अथवा प्राणों का आश्रय लेने से प्राण श्री, और पूरा आश्रय होने के कारण 'शरीर' कहाया। ४

वही पुरुष-प्राण प्रजापति हुआ और यही अग्नि है जिसका चयन किया जाता है। ५

वह ७ हैं, ४ मुख्य और ३ पंख-पूछ, जिस एक प्राण से अपने को बढ़ाता है उस बल से यह पंख-पूछों को ऊपर उठाता है। ६

चिति में जो अग्नि रक्खी जाती है वह उन सातों का श्री-रस है जिसे वे ऊपर उठाते हैं, यह इसका शिर है, इसमें सब देव आश्रित हैं, यहाँ ही सब देवों के लिए होम करता है अतएव यह 'शिर' है। ७

इस पुरुष-प्रजापति-प्राण ने चाहा कि अधिक होकर कुछ उत्पन्न करूँ, अतः श्रम-तप करके पहले ब्रह्म(वेद) ही [४ अग्नि-वायु-आदित्य-अङ्गिरा पर] प्रकट किया, वही इसके लिए प्रतिष्ठा हुई, अतः कहते हैं कि वेद ही इस सब की प्रतिष्ठा है। अतः वेद पढ़ा कर उस प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होकर प्राण ने [१-आकाश में] तप किया। ८

२- उसने वाणी-लोक से ही आपः को बनाया जो सब में आप्त (व्यापक) होने से 'आपः', और आवरण करने से 'वार्' कहाये। ९

३- उस प्राण ने चाहा कि इन आपः से भी अधिक पैदा करूँ अतः इस त्रयी विद्या के साथ आपः में घुसा, उससे निकले अण्डे से कहा— बड़ा होजा, वह बोला- अच्छा। अतः वेद को पहले ही होने से अग्नि का मुख कहते हैं। अतः वेद-वक्ता को अग्नि कल्प कहते हैं। १०

४-६ अण्डे के अन्दर का गर्भ अग्नि हुआ, सब के आगे होने 'अग्रि' नाम को परोक्ष अग्नि नाम कहते हैं। उसके क्षरित से बने अश्रु को परोक्ष अश्व कहते हैं, जो रस गिरा वह रासभ, कपाल में लिपटा रस अज, कपाल पृथिवी हुए। ११

७- उसने चाहा कि आपः से अधिक पैदा करूँ अत: उसे मथकर जल में मिलाया, उसके दूर गिरे रस से कूर्म हुआ और जो ऊपर उछला वह जल ही है। १२

८-६ उस ने चाहा कि और अधिक पैदा करूँ अतः श्रम-तप कर फेन-सूखी मिट्टी-ऊसर-बालू-रेत-पत्थर-लोहा-सोना-औषधि-वनस्पति बनाये जिनसे यह पृथिवी ढँक दी। १३

ये ६ सृष्टियाँ हैं, अतः बनाने वाली अग्नि त्रिवृत कहाती और उसी में चयन किया जाता है। १४

यह प्रतिष्ठा से भूमि, प्रथन से पृथिवी, गायन से गायत्री हुई, उसकी पीठ पर गायन करने से अग्नि गायत्र कही गयी, अतः सर्व सम्पूर्ण को मानने वाला गाता और गीत पर प्रसन्न होता है। १५

ब्राह्मण २

वायु अन्तरिक्ष आदि की सृष्टि

प्रजापति ने चाहा कि अधिक पैदा करूँ अतः अग्नि से पृथिवी का जोड़ा बना दिया जिससे आण्ड हुआ जिससे कहा पुष्ट और अधिक हो। १

अन्दर का गर्भ वायु हुआ, संक्षरित अश्रु पक्षी, कपाल में लिपटा रस किरणें, कपाल अन्तरिक्ष हुए। २

उसने चाहा- और अधिक पैदा करूँ अतः वायु-अन्तरिक्ष-मिथुन बनाया; पैदा हुए आण्ड से कहा- यश धारण कर, यह आदित्य बना, क्षरित अश्रु अश्मा पृश्नि। कपाल में लिपटा रस रश्मियाँ और कपाल द्यौ हुआ। ३

उसने चाहा- और अधिक पैदा करूँ अतः द्यौ-आदित्य का मिथुन बनाया जिसके आण्ड ने कहा- वीर्य धारण कर, यही चन्द्र बना; गिरे अश्रु नक्षत्र, कपाल-लिपटा रस अवान्तर दिशाएँ, और कपाल दिशाएँ बने। ४

उसने ये लोक बनाकर चाहा कि वे प्रजाएँ रचूँ जो मेरे इन लोकों में रहें। ५

उसने मन-वाणी-मिथुनों के ८ द्रप्सों से ८ वसु बनाकर यहाँ रक्खा। ६

ऐसे ही मिथुन के गर्भ के ११ द्रप्सों से ११ रुद्र बनाकर अन्तरिक्ष में रक्खे। ७

ऐसे ही मिथुन के १२ बन्दुओं से १२ आदित्य बनाकर द्यौ में रक्खे। ८

ऐसे मिथुन के गर्भो से विश्वेदेवाः बनाकर दिशाओं में रक्खा। ६

और कहते हैं- बनी अग्नि के पीछे वसु पृथिवी पर, वायु के पीछे रुद्र अन्तरिक्ष में, आदित्य के पीछे १२ आदित्य द्यौ में, चद्न्मा क पश्चात् विश्वेदेवाः दिशाओं में रक्खे। १०

और कहते हैं कि प्रजापति ही इन लोकों को रचकर पृथिवी पर स्थित हुआ, इसके ये औषधि-अन्न पके, जो खाकर वह गर्भी हुआ और ऊपर के प्राणों से देव तथा नीचे के प्राणों से मर्त्य प्रजा बनाई। चाहे जैसे भी रचा हो, यह जो कुछ है सब प्रजापति ने ही रचा। ११

वह प्रजा रचकर सब दौड़ दौड़ कर रुक गया। अत्र भी जो दौड़ में दौड़ लेता है रुकसा जाता है। उस रुके हुए से प्राण मध्य से निकल गया, उसके निकल जाने पर देवों ने इसे छोड़ दिया। १२

वह अग्नि से बोला- तू मुझे धारण कर। उससे मेरा क्या होगा? अग्नि के यह पूछने पर कहा- तेरे नाम से मुझे कहा जायेगा। जो ही पुत्रों की सिद्धि है उससे पिता-पितामह-पुत्र-पौत्र लाभ पाते हैं। अच्छा! कहकर अग्नि ने इसे धारण किया, अतः इस प्रजापति को अग्नि भी कहते हैं। १३

उस से बोला- तुझे किन में रक्खूँ? उत्तर मिला- हित(प्राण)में ही। यह सब के लिए हितकारी है अतः बोला- तुझे हित में रखूँगा, रखता हूं; रख दिया। १४

कहते हैं- हित-उपहित क्या है ? प्राण हित, वाणी उपहित है; प्राण में ही यह वह वाणी और सब अङ्ग पास रक्खे हैं। १५

वह इसके लिए चित्य-चेतव्य (संग्रहणीय और चेताने वाला) होता है। १६

अतः ये इसके ५ शरीर हुए — लोम-त्वचा-मांस-अस्थि-मज्जा। ये ही ५ चयनीय चितियाँ हैं। चयन करने से ये चिति हैं। १७

प्रजापति के रुकने से संवत्सर और ५ शरीर ५ ऋतुएँ (हेमन्त-शिशिर एक मानकर) ५ चिति हैं।१८

यह संवत्सर ही बहने वाला वायु है, ५शरीर-ऋतुएँ ५ दिशाएँ हैं, जिनमें ५ चिति चुनता है। १९

अब जो चयन पर अग्नि रखी जाती है वह यह सूर्य है, यह चयन पर धारित अग्नितुल्य है।२०

कहते हैं कि प्रजापति ही रुककर देवों से बोला- मुझे धारण करो। वे अग्नि से बोले- तुझमें इस पिता की चिकित्सा करें। यह बोला- मै सभी में घुसता हूं। अच्छा। अतः इस प्रजापति को ही अग्नि कहते हैं। २१

उस को देवों ने अग्नि में आहुतियों से अभिषिक्त किया। जो जो आहुति दी वह पकी ईंट बनकर मिलीं। इष्ट से होने के कारण इष्टका कहलायीं, अतः आग से ईंटें पकतीं हैं, आहुतियाँ ही इन्हें ऐसा बनातीं हैं। २२

वह बोला- जितनी जितनी आहुति दो उतना ही मुझे सुख होता है। क्योंकि इष्ट में सुख हुआ अतः इष्टका नाम पड़ा। २३

अक्तादय ने कहा था- जो यजुःवाली बहुत-सी ईंटें जाने वह अग्नि चुने, वह पिता प्रजापति का अधिक आदर करे। २४

ताण्ड्य ने कहा था- क्षत्रिय यजुष्मती इष्टका हैं, प्रजा लोकम्पृण; दोनों क्रमशः अत्ता-अन्न हैं, जहाँ अत्ता से अन्न अधिक हो वह राष्ट्र समृद्ध होता है, और बढ़ता है; अतः लोकम्पृण ही अधिक हों। ये दोनों के वचन हैं परन्तु स्थिति इससे अन्य ही है। २५

वह यह पिता-पुत्र है। यदि इस ने आग बनाई तो यह पिता, यदि इसे आग ने धारण किया तो यह उसका पुत्र। जो देव बनाये तो इनका पिता, यदि देवों ने इसे धारण किया तो वे पिता हुए। २६

दोनों ही ठीक हैं। पिता-पुत्र प्रजापति-अग्नि अग्नि-प्रजापति, प्रजापति-देव देव-प्रजापति। २७

वह यह मन्त्र (य १४-१४)पढ़कर पास में रखता है—

तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद।

वह देवता वाणी(अग्नि)- अङ्गिरा प्राण(इन्द्र), इन दोनों से स्थिर हो- यह कहकर चुनता है। ऐन्द्राग्न अग्नि जितना है और जितनी इसकी मात्रा है उतने से ही इसको चुनता है। २८

कहते हैं कि क्यों इसकी अग्नि चुनी जाती है ? जहाँ पर वह देवता रुका तो उसी को अनुचरित किया, जब देवों ने संस्कार किया तो उनको ही धारण किया, वह एक ईंट अग्नि है; इसी के लिए अग्नि चुनी जाती है, जो चतुःस्रक्ति (४ दिशाओं वाली) है अतः ईंटें चोकोर हुआ करतीं हैं। २९

कहते है कि जब ऐसा एकेष्टक है तो पञ्चेष्टक कैसा? एक मिट्टी की, दूसरी पशु-शिर की, तीसरी हिरण्येष्टका जो सोने के टुकड़ों की बनती है, चतुर्थ स्रुचा-ऊखल मूसल-समिधा रखने से बनी वानस्पत्येष्टका, और कमलपत्र-कूर्म-दही-शहद-घी-अन्न के रखने से बनी ५म अन्नेष्टका ये पंचेष्टक हैं। ३०

कहते हैं- इष्टका का शिर किधर से है ? कुछ उत्तर देते हैं- जहाँ से स्पर्श कर यजुः बोलता है । वह स्वयं फटी ईंट के अद्धे से छूकर यजुः बोले। ऐसे तो इसकी ये सभी स्वयं फटी होंगी अतः ऐसा न करे। इसके अङ्ग इतने कठोर हैं कि यह अङ्ग-अङ्ग पोरुए-पोरुए को शिर मानने के तुल्य होगा। अतः चुने पर जहाँ आग रखी जाती है वहीं इन सबका शिर है। ३१

कहते हैं- कितने पशु आग के पास पालने चाहिएँ ? ५ ही कहे। ३२

१ अवि बताये; यह रक्षक भूमि या आग है जिसे चुना जाता है। ३३

अथवा २ अवी कहे- ये रक्षक पृथिवी-जल हैं। दोनों से ईंट बनती है। ३४

अथवा गौ बताये, यही लोक गौ और अग्नि हैं, जो कुछ जाता इन्हीं लोकों को जाता है। ३४

कहते हैं- किस कामना के लिए अग्नि-चयन होता है ? कुछ उत्तर देते हैं- इसलिए कि सुपर्ण मुझे उठाकर द्यौ को ले जाये। परन्तु ऐसा न जाने। यह रूप करके प्राण प्रजापति हुए; जिसने देव बनाये जो अमर हुए; वे जो बने वही इससे होता है। ३६

ब्राह्मण ३

आपः आदि की अष्टरूपता।

प्रजापति ही पहले था, अकेले ही उसने चाहा कि सृष्टि रचूँ अतः श्रम-तप करके आपः नीहारिका (जल) को रचा; अतएव तप्त पुरुष से पसीना निकलता है। १

आपः बोले- हम क्या करें ? उत्तर मिला-तप करो। उन्हों ने तप किया जिससे फेन बन गये। अतः तप्त जल के फेन होते हैं। २

फेन बोला- मैं क्या करूं ? तप करो। यह सुन तप कर मिट्टी पैदा की; फेन दबकर मिट्टी होजाते हैं।

मिट्टी बोली- मैं क्या करूं ? उत्तर दिया- तप, करने पर वह बालू बनी, जोतने पर मिट्टी बालू के३ तुल्य हो जाती है। यहाँ तक मैं क्या करूँ, मैं क्या करूँ, यह हुआ। ४ [अर्ध-प्रपाठक ५५]

बालू से रेत, रेत से क्रमशः पत्थर-लोहा-सोना बने। आग-तपा लोहा सोने-तुल्य-सा हो जाता है। ५

जो रचा तो क्षरित हुआ; उसे अक्षर, ८-८ कर क्षरित हुआ वह अष्टाक्षरा गायत्री हुई। ६

और यह प्रतिष्ठा और भूमि हुई, पृथन (विस्तार) किया अतः पृथिवी कहायी। इस प्रतिष्ठा में भूतों और भूतपति ने संवत्सर के लिए दीक्षा ली, भूतपति गृहपति और उषा पत्नी हुई। ७

वे भूत ऋतुएं हैं, भूतपति संवत्सर ने उषा-पत्नी में वीर्य सींचा; वर्ष में कुमार हुआ, वह रोया। ८

प्रजापति बोला- क्यों रोता है ? तू श्रम-तप से पैदा है। वह बोला- पाप नष्ट न होने और नाम न रक्खे जाने से, मेरा नाम रख। अतः पैदा हुए पुत्र के २-३ नाम रक्खे, वे इसका पाप दूर करते हैं। ९

क्यों कि रोया उससे कहा- तू रुद्र है; अग्नि ही तद्रूप रुद्र हुआ। वह बोला- मैं इससे अधिक हूं अतः दूसरा नाम रख। १०

वह बोला- तू सर्व है। अतः यह नाम आपः का हुआ, क्योंकि यह सब जल से ही पैदा होत है। यह बोला- मैं इससे अधिक हूं, अन्य नाम रख। ११

उसने कहा- तू पशुपति है। जब यह नाम रक्खा तो ओषधियाँ तद्रूप हो गयीं क्योंकि वे पशु को पालती हैं. पशु उन्हें पाकर तृप्त हो जाते हैं। यह बोला- मैं इससे अधिक हूं, अन्य नाम रख। १२

वह बोला- तू उग्र है। यह नाम रखा तब वायु तद्रूप हुआ क्योंकि यह वेगवान है; जब तेज चला तो आँधी आगयी। यह बोला- मैं इससे अधिक हूं, अन्य नाम रख। १३

वह बोला- तू अशनि (वज्र) है। यह नाम रखा तो विद्युत तद्रूप हुई बिजली अशनि (वज्र) है।

२२८५ तस्माद् देवेभ्यो ऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ।। ६
८६ सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत् ता मनुष्या अघ्नत सा सद्यः समभवत्॥ ७
८७ तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ।। ८

सूक्त १० का पर्याय ४, मन्त्र १६ । विराट् ।

८८ सोदक्रामत् सासुरानागच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ।। १
८९ तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् ।। २
९० तां द्विमूर्धार्त्व्यो ऽधोक् तां मायामेवाधोक् ।। ३
९१ तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ।। ४
९२ सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ।। ५
९३ तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रं पात्रम् ।। ६
९४ तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक् ।। ७
९५ तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ।। ८
९६ सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत् तां मनुष्या उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ।। ९
९७ तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीद् पृथिवी पात्रम् ।। १०
९८ तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ।। ११
९९ ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या३ उप जीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद १२
२३०० सोदक्रामत्सा सप्त ऋषीनागच्छत्तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ।। १३
१ तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ।। १४
२ तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ।। १५
३ तद्ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उपजीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ।।१६

सूक्त १० का पर्याय ५ । मन्त्र १६

४ सोदक्रामत् सा देवानागच्छत्तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ।। १
५ तस्याः इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ।। २
६ तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ।। ३
७ तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ।। ४
८ सोदक्रामत्सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति।। ५
९ तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ।। ६
१० तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसो ऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ।। ७
११ तम्पुण्यङ्गन्धङ्गन्धर्वाप्सरस उपजीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ।।८

२ १२ सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत्तामितरजना उपाह्वयन्त निरोध एहीति ॥ ९
१३ तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ॥ १०
१४ तां रजतनाभिः काबेरको ऽधोक् तां तिरोधामेवाधोक् । ११
१५ तां तिरोधामितरजना उपजीवन्तितिरोधत्ते सर्वं पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद १२
१६ सोदक्रामत् सा सर्पानाच्छत् ता सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति ॥ १३
१७ तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥ १४
१८ तां धृतराष्ट्र ऐरावतो ऽधोक् तां विषमेवाधोक् ॥ १५
१९ तद्विषं सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १६

सूक्त १० का पर्याय ६ । मन्त्र ४

२० तद्यस्मा एवं विदुषेलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् ॥ १
२१ न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात् ॥ २
२२ यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्याहन्ति । ३
२३२३ विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनु विषिच्यते य एवं वेद ॥ ४

सूक्त १० का पर्याय १ । मन्त्र १३

२२५७ विराट (राज-हीन) दशा निश्चय ही पहले थी, उसके होने पर सब डरे, यही यह होगी । १
५८ वह ऊपर उठी; वह गार्हपत्य अग्नि के रूप में नीचे जनता में आयी । २
५९ जो ऐसा जानता है वह घर में सङ्गमन करने वाला घर का रक्षक स्वामी होता है । ३
६० यह अधिक आगे बढ़ी, वह आहवनीय (हवन की आग) के रूप में आगे बढी । ४
६ जो यह जानता है उसकी देवों की बुलाहट पर विद्वान् जाते हैं, वह देवों का प्रिय होता है । ५
६२ वह आगे बढ़ी, वह दक्षिण (सभा की) आग के रूप में परिणत हुई । ६
६३ जो ऐसा जानता है वह यज्ञ में पूज्य, दक्षिणा-योग्य, बसने-बसाने वाला होता है । ७
६४ वह विराट् आगे बढ़ी; वह सभा के रूप में आगे आयी । ८
६५ जो ऐसा जानता है उसकी सभा में लोग जाते; वह सभ्य होता है । ९
६६ वह आगे बढ़ी, वह समिति (कमेटी) राष्ट्रसभा के रूप मे बनी । १०
६७ जो ऐसा जानता है उसकी समिति मे मनुष्य जाते हैं, वह समिति का सदस्य होता है । ११
६८ वह ऊपर बढ़ी, वह आमन्त्रण (मन्त्री-पारिषद्) के रूप में बढ़ गयी । १२
६९ जो ऐसा जानता है उसके आमन्त्रण मे लोग जाते; वह आमन्त्रणीय होता है । १३

सूक्त १० का पर्याय २ मन्त्र १० ।

७० वह विराट् प्रकृति ऊपर चढ़ी, अन्तरिक्ष मे चारों दिशाओं में विक्रान्त होकर रही , १
७१ उससे विद्वान् - सामान्य मनुष्य दोले- यही उसे जानता है जिससे दोनों जिएँ, इसे बुलाएँ २
७२ उसे बुलाया । ३
७३ हे ऊर्जा आ, हे स्वयं-धारक आ, हे सत्य वाणी आ, हे अन्न वाली आ । ४

२३७४ इस विराट्-गौ का इन्द्र (बिजली-जी) वत्स, गायत्री बन्धन-रस्सी, मेघ अयन हैं। ५
७५ बृहद्-रथन्तर दो और यज्ञायज्ञिय-वामदेव्य दो (सब चार साम) स्तन हुए। ६
७६ विद्वान् औषधियों को ही रथन्तर (पृथिवी)-स्तन से, वायु-प्रकाश को बृहत् (द्यौ) से दुहते हैं। ७
७७ जल को वामदेव्य (अन्तरिक्ष) से और यज्ञ को यज्ञायज्ञिय (साम-स्तन) से दुहते हैं। ८
७८-७९ जो ऐसा जानता है वह इसके लिए रथन्तर औषधियों को, बृहत् वायु-प्रकाश को, वामदेव्य जल को, यज्ञायज्ञिय यज्ञ को दुहता है। ९-१०
[४ सामों का नाम ऋ ८.९८.१, यजु १०.१०-११; १२.४, साम ३८८, १०२५, अथर्व २०.६२.५ में और वर्णन ऐतरेय तथा ताण्ड्य ब्राह्मण में है।]

सूक्त १० का पर्याय ३। मन्त्र ८

८० वह विराट् बढ़ी और वनस्पतियों तक पहुँची। वे इसे मिलीं। वह संवत्सर से संयुक्त रही। १
८१ अतः संवत्सर में वनस्पतियों का छिन्न अंश भी भर जाता है, जो ऐसा जानता है, इसका अप्रिय शत्रु छिन्न-भिन्न होता है। २
८२ वह बढ़ी और पितरों में आई। उसे पितर मिले। वह मास से संयुक्त रही। ३
८३ जो ऐसा जानता है वह पितरों को मासिक वृत्ति देता और पितृयान मार्ग जानता है। ४
८४ वह विराट् उठती और विद्वानों तक पहुंचती है। वे उसे पाते हैं, वह पक्ष में संयुक्त होती है। ५
८५ इसीलिए देवों को पक्ष (अमावास्या-पूर्णिमा) में वषट् करते हैं, इसका ज्ञाता देवयान जानता है। ६
८६ वह विराट् बढ़कर मनुष्यों में आती, वे उसे पाते, वह १ दिन में संयुक्त होती है। ७
८७ इसीलिए मनुष्यों को दिन में दो बार अन्नादि उपहार देते हैं, इसके ज्ञाता के घर उपहार देते हैं। ८

सूक्त १० का पर्याय ४। मन्त्र १३

८८ वह विराट् आगे बढ़कर असुरों तक पहुँची उसे असुरों ने बुलाया—हे माया! आ। १
८९ बहुत शब्द करने वाली बिजली उसका वत्स है, सोने का पात्र दोहन पात्र है। २
९० उससे दो सिर वाला बुद्धिमान् माया को ही दुहता है। ३
९१ असुर इस माया के सहारे जीते हैं। जो ऐसा जानता है वह जीविका-योग्य होता है। ४
९२ वह विराट् बढ़कर पितरों तक पहुंची। पितरों ने बुलाया- हे स्वधा! आओ। ५
९३ राजा यम इसका वत्स था, चाँदी का पात्र दोहन पात्र था। ६
९४ इसे अन्त करने वाले शासक मृत्यु ने दुहा, और स्वयं-धारक (अन्न-प्राण) को ही दुहा। ७
९५ इस स्वधा पर पितर जीते हैं, यह जानने वाला जीवन-योग्य होता है। ८
९६ वह विराट् आगे आकर मनुष्यों तक पहुंची, मनुष्यों ने बुलाया- हे अन्न वाली! आ। ९
९७ इसका विशेष रूप से बसाने वाला मनुष्य वत्स, और भूमि दूध का पात्र होती है। १०
९८ इससे कामनायुक्त विस्तारवान् पुरुष कृषि और नाज दुहता है। ११
९९ वे मनुष्य कृषि-अन्न से जीते हैं। यह जानने वाला खेती से सम्पन्न, जीवनयोग्य होता है। १२
२३०० वह विराट् (परमात्म-शक्ति) गौ आगे आकर ७ ऋषियों (५ ज्ञानेन्द्रिय-मन-बुद्धि) तक पहुंची, सात ऋषियों ने बुलाया- हे वेदवती! आ। १३
२३०१ उसका राजा सोम वत्स और छन्द बरतन हैं। १४
२ उससे परमात्मा का ज्ञाता अथर्ववेदी ब्रह्म और तप को दुहता है। १५

अज्ञान-तप के सहारे ७ ऋषि जीते हैं, जो ऐसा जानता है वह ब्रह्मवर्चसी जीविकायोग्य होता है ।१६

सूक्त १० का पर्याय ५ । मन्त्र १६

४ वह विराट् उठकर देवों के पास आई, उसे देवों ने बुलाया- हे ऊर्जा(शक्ति) ! आ ।१
५ उसका वत्स इन्द्र(जीव-मन-प्राण-बिजली) हुआ और दोहन-पात्र चमस(शिर-आकाश) । २
६ उससे देव सूर्य-प्राण ने शक्ति को ही दुहा । ३
७ शक्ति से देव जीते हैं । जो ऐसा जानता है वह आश्रय-योग्य होता है । ४

८ वह विराट् आगे बढ़कर गन्धर्व-अप्सराओं(गायक-कार्यशीला स्त्री)के पास आई जिन्होंने बुलाया- हे पवित्र सुगन्ध वाली ! आ । ५
९ इसका वत्स विचित्र-शरीर-रथ, सूर्यवत् तेजस्वी हुआ, और कमलपत्र दोहन-पात्र ।
१० इससे धन की रुचि वाला सूर्यवत् तेजस्वी पुण्य सुगन्ध को दुहता है । ७
११ पुण्य सुगन्ध का गन्धर्व-अप्सराएँ आश्रय लेते हैं । ऐसा ज्ञाता पुण्यगन्धी-उपजीवनीय होता है ।८
१२ वह विराट् आगे इतर जनों के पास आती, वे बुलाते हैं,- हे तिरोधा(गुप्त शक्ति) ! आ । ९
१३ दुराचारी विपरीत सुननेवाला उसका वत्स, और कच्चा बरतन दोहनपात्र है । १०
१४ उससे चाँदी-केन्द्र वाला दुराचारी छिपने की कला को ही दुहता है । ११
१५ उससे इतर जन जीते हैं । ऐसा जानने वाला पुरुष पाप छिपा लेता और जीवनाश्रय होता है । १२
१६ वह विराट् आगे बढ़कर साँपों में जाती है, वे उसे बुलाते हैं- हे विषवती ! आ । १३
१७ विशाल भूमि में रहनेवाला सूक्ष्मदर्शी इसका वत्स, कटुतुम्बी, विष-थैली पात्र है । १४
१८ इससे राष्ट्र-धारक, भूमि-ज्ञाता विष को ही दुहता है । १५
१९ साँप इस विष से जीते हैं । यह जानने वाला जीवन के योग्य होता है । १६

सूक्त १० का पर्याय ६ । मन्त्र ४

२० अरे ऐसे जिन विद्वान् के लिए कटुतुम्बी से सींचे; विष हटा दे । १
२१ और यदि न हटाये वो मन से 'तुझे हटाता हूं' यह चिन्तन कर हटा दे । २
२२ जो सङ्कल्प-चिकित्सा करते हैं तो वे विष को ही हटाते हैं । ३
२३२३ जो ऐसा जानता है उसके अप्रिय शत्रु को विष ही पीछे लगकर नष्ट कर देता है । ४

वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती द्वारा हिन्दी में अनूदित - सम्पादित
अथर्व वेद के काण्ड ८ का सूक्त १०, अनुवाक ५, प्रपाठक १९ समाप्त हुआ ।
इति अष्टमं काण्डं समाप्तम् ।

* ओ३म् *
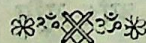
अथर्व वेद काण्ड ९, सूची

प्रपाठक	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता विषय	छन्द	महर्षि दयानन्द-कथित विषय—
२०	१	१	२४	अथर्वा	मधु, अश्विनौ	त्रिष्टुबादि	स्वर्गादि जगदुत्पत्त्यानन्दादि विद्या दशिव
		२	२५	,,	कामः	,,	मक्गादि स्तनयित्न्वादि प्रजापतीश्वर-राज्येन्द्रादि पदार्थविद्या ।
	२	३	३१	भृग्वंगिरा	शाला	,,	उपमिति-प्रतिमिति-हविर्धान-पत्नीगृहादि-
		४	२४	ब्रह्मा	ऋषभ	त्रि ज अ बृ प	इष्वन्नःब्रह्म-कवि-गुरु-लघु-महिम-होमादि; अपा प्रतिमा प्रभूरीश्वरादि, बृहस्पति-भग-मित्र-स्त्री-शारीरक-विद्यादि, मनश्शुद्ध्यायुरिन्द्रादि पदार्थविद्या
२१	३	५	३८	भृगु	ऋषिका अज पंचौदन	साम्नी बृ अ गा	यजमान, 'अजोनाग्नि-ज्योति-
		६	७३	ब्रह्मा	आतिथ्य-सोमयाग	गा अ पं बृ ज त्रि उ	क्षमान्दक्षिणादि अतिथ्यादिवि०
	४	७	२६	,,	गौ	,,	ईश्वर०; ब्रह्माण्डाद्यलंकारादि
		८	२२	भृग्वंगिरा	सर्वशीर्षामयाद्यपाकरणम्	अ उ बृ पं	रोगादि-निवारणादि-पदा०
	५	९	२२	ब्रह्मा	वाम अध्यात्म आदित्य	त्रि ज	ईश्वराद्याश्चर्यादि० अध्यात्मविद्या
		१०	२८	,,	गौ ,, विराट्	अतिश ,, ,,	व्यापकेश्वरादि–विद्या, जीवेश्वर-मैत्र्यादि, ईश्वरेण धारितादि-पदा.
योग २	५	१०	३१३	४	१४		मन्त्रों का सर्व-योग २६३६

❀ ओ३म् ❀

अथर्ववेद कांड ६

प्रपाठक २० अनुवाक १ से ५ तक

अनुवाक १ सूक्त १ से २ तक

विषय- स्वर्गादि०, जगदुत्पत्त्यानन्दादि०; विद्युत-अश्वि-मध्वादि०; स्तनयित्न्वादि०, प्रजापतीश्वर-राज्येन्द्रादि पदार्थ विद्या ।

सूक्त १ । मन्त्र २४ । मधुकशा (मधुर कोड़ा) १. पारमेश्वरी माता, २. जल-विद्युत, ३. वेदवाणी

२३२४ दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥ १

२५ महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत एति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं नि विष्टम् ॥ २

२३२६ पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ ३

२७ मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ ४

२८ मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्त्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥

२९ कस्तं प्रवेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः ।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥ ६

३० स तौ प्रवेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ ।
ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥ ७

३१ हिङ्करिकृती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ८

३२ यामापीनामुप सीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ॥ ९

३३ स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ १०

३४ यथा सोमः प्रातःसवन अश्विनोर्भवति प्रियः। एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ ११

३५ यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः। एवा म इन्द्राग्नी वर्चआत्मनि ध्रियताम् ॥

३६ यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः। एवा म ऋभवो वर्चआत्मनि धियताम् ॥ १३

३७ मधु जनिषीय मधु वंसिषीय। पयस्वानग्न आगमं तं मा संसृज वर्कसा ॥ १४

३८ सं माग्ने वर्चसा सृज संप्रजया समायुषा। विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥ १५

३९ यथा मधु मधुकृतः सम्भरन्ति मधावधि। एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १६

४० यथा मक्षा इदंमधु न्यञ्जन्ति मधावधि। एवा मे अश्विनावर्चस्तेजोबलमोजश्च ध्रियताम् ।

४१ यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु। सुरायां सिच्यमानायां यत्तत्र मधु तन्मयि ॥ १८

४२ अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती। यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ।

४३ स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्त्ति ॥ २०

४४ पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षङ्गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥ २१

२३४५ यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ।। २२
४६ मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति । मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद ।।२३
२३४७ यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति । तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति। अन्वेनम्प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ।। २४

सूक्त १ । मधुकशा (मधुर ज्ञान-शक्ति;पत्न-बिजली रूपी गौ)

२३२४ द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष-समुद्र-अग्नि-वायु से मधुकशा पैदा होती है । अमृत-धारिणी उसे देखकर सब प्रजाएँ हृदयों से आनन्दित होती हैं । १

२५ इस गौ का दूध(बल) महान्-विश्वरूप है, वेद इसे समुद्र का वीर्य बताते हैं जहाँ से शब्द करती मधुकशा (बिजली) आती है, वह प्राण-गृह में अमृत है । २

२६ विद्वान् मनुष्य पृथिवी पर इसका चरित बहुधा अलग अलग देखते हैं, यह मानसूनों की उग्र न गिरने वाली नातिन मधुकशा आग-वायु से पैदा होती है । ३

२७ आदित्यों की माता, वसुओं की दुहिता (दुहने वाली पुत्री), प्रजाओं की प्राण, अमृत-केन्द्र, सोने के रंग की, जलयुक्त महा भूनने वाली जल-बिजली मनुष्यों में रहती है । ४

२८ देव बिजली पैदा करते हैं; उनका गर्भ विश्वरूप सूर्य है, उस उत्पन्न तरुण को यह माता पालती है और यह सब भुवनों को प्रकाशित करता है । ५

२९ कौन उसे पाता या जानता है जो इसके हृदय (अन्दर) का सोम-भरा अक्षय कलश(भण्डार) है। जो सुमेधा चतुर्वेदी हो वह इसमें हृष्ट हो । ६

३० वही इस गौ के दो स्तन जानता है जो हजार धाराओं के अक्षय होकर बिना रुकावट ऊर्जा को देते हैं। [ये रयि-प्राण धारण-आकर्षण प्रकृति-विकृति सूर्य-चन्द्र धन-ऋण(पाजिटिव-निगेटिव)हैं ।] ७

३१. जो वृद्धि करती हुई ,बड़ी अन्न-प्राण-लोक-धारिका, उच्च घोष करने वाली नियम से चलती है, तीन दीप्तियों (अग्नि-सूर्य-द्यौ) को चमकाती यह शब्द करती, जल के साथ चलती है । ८

३२ जिन बड़ी बिजली के पास पानी-भरे शक्तिशाली-वर्षक-स्वयंदीप्त मेघ रहते हैं वे कारीरी यज्ञ(मेघ बरसाने की विद्या) के ज्ञाता के लिए मन-चाहा जल-अन्न बरसते-बरसाते हैं । ९

३३ हे प्रजापति ! मेघ-गर्जन तेरी वाणी है; वर्षक तू भूमि पर बल (जल-अन्न) फेंकता है। मानसूनों की उग्र बाँधने वाली गाँठ,नातिन मधुकशा (बिजली) अग्नि-वायु से पैदा होती है । १०

३४-३६ जैसे सोम(ब्रह्मचारी) प्रातः सवन में अश्विओं(माता-पिता) को; द्वितीय सवन में इन्द्र-अग्नि (आचार्य-अध्यापक)को, तीसरे सवन में ऋभुओं (ज्ञानियों)को प्रिय होता है वैसे ही अश्वी-आदि मेरी आत्मा में वर्च-तेज धारण करायें । ११-१३

३७ मैं मधु को उत्पन्न करूँ-माँगूँ ;हे अग्नि! मैं दूध लेकर आया हूं, मुझे वर्च से युक्त कर । १४

३८ हे अग्नि ! मुझे वर्च-प्रजा-आयु से युक्त कर, मेरी यह प्रार्थना ऋषियों के साथ देव-इन्द्र जानें । १५

३९ जैसे मधुकर मधु-वसन्त-चैत्र में यह शहद एकत्र करते हैं वैसे ही अश्वी (सूर्य-चन्द्र दिन रात प्राण-अपान, मात-पिता, अध्यापक-उपदेशक और परमात्मा)मेरी आत्मा में वर्च धारण करें । १६

४० जैसे मक्खियाँ मधु पर यह मधु जमाती हैं वैसे ही अश्वी मुझे वर्च-तेज-बल-ओज दें । १७

४१ जो मधुरता गिरि-पर्वत-गौ-घोड़ों, सींचे जाते जल में वहाँ है वैसी मधुरता मुझ में हो । १८

४२ हे शुभके पति अश्विओ! शहदवत् सारयुक्त ज्ञानसे युक्त करो जिससे जनोंसे वर्चस्वती वाणी बोलूँ। १९

२३४३ हे प्रजा-पालक! मेघ-गर्जन तेरी वाणी है; वर्षक तू भूमि-द्यौ पर बलप्रद जल फेंकता है; उसीसे सब पशु जीते हैं और अन्न-सहित बल पूर्ण-पालित होता है। २०

४४ पृथिवी पर दण्ड; अन्तरिक्ष में मेघ, द्यौ कोडा, बिजली तेज कोड़ा, सूर्य विन्दु के समान है। २१

४५ जो कशाके ७ मधु जानता, मधुमान् होता है- ब्राह्मण-राजा-गौ-बैल-चावल-जौ और ७म मधु। २२

४६ जो ऐसा जानता, मधुमान् होता, इसका भोजन मधुर होता. वह मधुमय लोकों को जीतता है। २३

४७ जो अन्तरिक्ष में गर्जता है, वह मानो प्रजापति ही प्रजाओं के लिए प्रादुर्भूत होता है अतः प्राचीनोपवीत (ईश्वर-प्रेमी, यज्ञोपवीत दाहिने कन्धे पर रखकर) बैठूँ। हे प्रजापति! मेरा विचार कर। जो ऐसा जानता है, प्रजा और प्रजापति उसके अनुकूल होते हैं। २४ ❀

२५ मन्त्रों का सूक्त २। काम

२३४८ सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन।
नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण। १

४९ यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम्॥ २

५० दुष्वप्न्यङ्काम दुरितञ्च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम्।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात्॥ ३

५१ नुदस्व काम प्रणुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः।
तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम्॥ ४

५२ सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचङ्कवयो विराजम्।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवः जीवनं वृणक्तु॥ ५

५३ कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नां छम्बीव नावमुदकेषु धीरः॥ ६

५४ अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवाः हवमा यन्तु म इमम्॥ ७

५५ इदमाज्यङ्घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम्। कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव॥ ८

५६ इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान मम पादयाथः।
तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनु निर्दह त्वम्॥ ९

५७ जहि त्वङ्काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान्।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः॥ १०

५८ अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन् मह्यमेधतुम्।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु॥ ११

२३५९. ते ऽधराञ्चः प्रप्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ।। १२

६० अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः । यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ।। १३

६१ असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्रमृणत् सपत्नान् ।। १४

६२ च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युत् बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान् ।
उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ।। १५

६३ यत्ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यङ्कृतम् ।
तेन सपत्नान् परिवृङ्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ।। १६

६४ येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय ।
तेन त्वङ्काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात प्रणुदस्व दूरम् ।। १७

६५ यथा देवाः ... यथेन्द्रो... बबाधे ।
तथा ..... [शेष ६४ के समान]।। १८

६६ कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ।। १९

६७ यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः । ततस् (पूर्ववत्)२०

६८ यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः । ,, ,, २१

६९ यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः ,, ,, २२

७० ज्यायान् निमिषतो ऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो । ,, ,, २३

७१ न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः । ,, ,, २४

२३७२ यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभि सं विशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ।। २५

सूक्त २ । काम (कमनीय ईश्वर; सत्संकल्प)

२३४८ मैं शत्रु-नाशक, बली काम को स्नेह-घी-हवि से पुष्ट करता हूं । हे काम ! बड़े वीर्य से स्तुत तू मेरे शत्रुओं को नीचे गिरा । १

४९ जो मेरे मन-आँखों का अप्रिय दुष्ट स्वप्न मुझे डराये; प्रसन्न न करे उसे शत्रु को दे दूं और काम की स्तुति कर ऊँचा उठूँ , २

५० हे उग्र स्वामी काम ! दुस्वप्न पाप-सन्तानाभाव-निर्धनता-आपत्ति को उस पर छोड़ जो हमारे लिए पाप-कष्ट चाहे । ३

५१ हे अग्नि-काम ! मेरे शत्रुओं को परे दूर हटा, वे निर्धन हों; भगाये हुओं के नीच अन्धकार रूपी निवास-स्थल भस्म कर दे । ४

२३५२ हे काम ! वह वाणी-गौ तेरी पुत्री कहाती है जिसे कवि विराट् कहते हैं। उससे तू इन मेरे शत्रुओं को हटा और प्राण-पशु जीवन इन्हें छोड़ दें ।५

५३ काम-इन्द्र-वरुण-राजा-विष्णु के बल से, सविता की प्रेरणा से मैं अग्निहोत्र द्वारा शत्रुओं को वैसे ही नाश करूँ जैसे धीर नाविक पानी में नाव का पार करता है।६

५४ मेरा अध्यक्ष बली-उग्र काम मुझे निःशत्रु करे, सब देव मेरे स्वामी हों, इस पुकार पर आ जायें ।७

५५ हे काम को बड़ा माननेवाले देवो! यह घी-युक्त आज्य सेवन कर मुझे अशत्रु करते हुए हृष्ट होओ ।८

५६ हे काम-इन्द्र-अग्नि! शरीरस्थ होकर मेरे शत्रुओंको नीचे गिरा, उन गिरोंके तीव्र-अंधेरे घर जला।९

५७ हे काम! तू मेरे शत्रु मार, इन्हें अँधेरे तम में गिरा, तभी निरिन्द्रिय-अशक्त एक दिन भी न जिएँ।१०

५८ काम मेरे शत्रु मारे; मेरे बढ़नेको बड़ा लोक दे;४ दिशाएँ मेरे लिए झुकें;छः फैली दिशाएँ घी वर्षाएँ।११

[दिशाएँ पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण ४ और नीचे-ऊपर को दो मिलकर ६ भी मानी गयी हैं]।

५९ बन्धन से टूटी नाव के समान वे शत्रु बह जायें, बाण-कटों का फिर लौटना नहीं होता। १२

६० अग्नि-इन्द्र (जीव-सूर्य-बिजली)-सोम (वीर्य-चन्द्र) यव (पृथक-कर्ता)हैं, ये देव इसे पृथक् करें।१३

६१ सब-वीर-रहित शत्रु स्वमित्रों से भी त्यक्त हों; पृथिवी पर बिजलीवत् उग्र देव शत्रुओंको मारे।[१४

६२ आकाश से गिरी या न गिरी बड़ी बिजली सब गरजने वाले मेघों को धारण करती है; वह और उदय होता बल-तेज से शक्तिशाली सूर्य मेरे शत्रुओंको दूर भगाये। १५

६३ हे काम! जो तेरा ३ (शरीर-मन-आत्मा के) घेरे वाला, त्रिविध (आत्मिक-भौतिक-दैविक) ताप-नाशक सुख-दायक प्रकट किया विस्तृत अनाशवान् वेद कवच दिया उससे मेरे जो शत्रु हैं उन्हें दूर कर प्राण-पशु-जीवन इन्हें छोड़ दें। १६

६४-६५ हे काम ! जिस साधन से जैसे देव (विद्वान्) असुरों (दुष्टों) को धकेलते हैं, इन्द्र (राजा) डाकुओ को अँधेरे बन्दी-घर में डालता है उसी से वैसे ही तू मेरे जो शत्रु हैं उन्हें दूर भगा। १७-१८

६६ काम पहले उत्पन्न होता है। देव-पितर-मर्त्य इसे नहीं पाते। उनसे हे काम ! तू सदा बड़ा है, उस तुझे मैं नमः ही करता हूं १९। [उत्तरार्ध 'उसने ...इन्हें' आगे २०-२२ मन्त्रों में समान है।]

६७ जितने विस्तार से द्यावा-पृथिवी-जल-आग फैली हैं... ।२०

६८ जितनी दिशाएँ-प्रदिशाएँ फैली हैं और वे आकाश को दिखाती हैं ... ।२१

६९ जहाँ तक भौंरे-मधुमक्खियाँ-चिमगादड़-चीलें-वृक्षों के साँप, और आकाश के तारा-मण्डल ब्लैक बी-मस्का फ्लाइ-फाक्स-गरुड़मण्डल(एक्विला-कोलम्बा सिगनुर-पवो) फल्गुनि-पतंग हैं... । २२

७० हे मन्यु काम ! तू पलक मारने वाले प्राणियों, स्थिर खड़े(वृक्ष-पर्वत),समुद्र से बड़ा है... । २३

७१ न तो वायु, और न अग्नि-सूर्य-चन्द्रमा भी काम(ईश्वर-सङ्कल्प)को पाते हैं... ।२४

२३७२ हे काम ! जो तेरी कल्याणकारी-सुखमयी शक्तियाँ हैं, जिनसे तू जो चाहता है सत्य होता है, उनके साथ तू हम में प्रविष्ट हो और पापी बुद्धियों-कर्मों को हम से दूर रख। २५।

वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती द्वारा हिन्दी में अनूदित - सम्पादित
अथर्व वेद के काण्ड ९ प्रपाठक २० के अनुवाक १का सूक्त २ समाप्त हुआ।
इति २ सूक्तं समाप्तम्।

अनुवाक २ सूक्त ३ से ४ तक

विषय— उपमिति प्रतिमिति-हविर्धान-पत्नीगृहादि-इष्टान्न-ब्रह्म-कवि-गुरु-लघु-महिम-होमादि-अपां प्रार्थना-पृभूतीरकारादि-बृहस्पति-भग-स्त्री-शारीरकविद्यादि-मनश्शुद्ध्यायुरिन्द्रादि पदार्थविद्या।

सूक्त ३ मन्त्र ३१। शाला।

२३७३.उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत।शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि॥१

७४ यत्ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यःकृतः।बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत्॥२

७५ आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान्। परूंषि विद्वाञ्छस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि॥ ३

७६ वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च।पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि।।४

७७ संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च। इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि।। ५

७८ यानि ते ऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम्।

प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नि न उद्धिता तन्वे भव ।। ६

७९. हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देवि शाले ।। ७

८० अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति। अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि।। ८

८१यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम्।उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ९

८२ अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता ।यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ।।

८३यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन्।प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ११

८४ नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः। नमो ऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ।। १२

८५गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते।विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि।१३

८६ अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह। विजावति० [पूर्ववत्] ।। १४

८७ अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रतिगृह्णामि त इमाम्। यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वे ऽहमुदरं शेवधिभ्यः । तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ।। १५

८८ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता।विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः १६

८९ तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।

मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ।। १७

९० इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन्। वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु ।। १८

९१ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम्।इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः १९

९२ कुलाये ऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः।तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ।।२०

२३९३ या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।

अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ।। २१

२३९४. प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनःशाले प्रैम्यहिंसतीम्। अग्निर्ह्यन्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥२२

९५ इमा आपः प्रभराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः। गृहानुप प्रसीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥२३

९६ मा नः पाशं प्रतिमुचो गुरुर्भारो लघुर्भव। वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥२४

९७ प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ २५

९८ दक्षिणाया [पूर्ववत्] ॥ २६

९९ प्रतीच्या ,, ॥ २७

२४०० उदीच्या ,, ॥ २८

२४०१ ध्रुवाया ,, ॥ २९

२४०२ ऊर्ध्वाया ,, ॥ ३०

२४०३ दिशो दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ॥ ३१

सूक्त ३। मन्त्र ३१। शाला

२३७३ सब ओर द्वारों वाली शाला की उपमा-योग्य ठीक नापी बनावट और चुनायी के बन्धन को हम अच्छे प्रकार से बाँधें [मन्त्र१-७-१५-१६-१९-२१-२२-२४ का भ.ष्य संस्कार विधि में है।]

७४ सब उत्तम पदार्थ-युक्त घर में जो बन्धन(पाश); जालबन्धन और जोड़ (ढूला आदि) बनाये गये हों उन्हें, मेघ को वृहस्पति(सूर्य) के समान, मैं अपने आदेश से हटा दूँ। २

७५ जो सामान एकत्रित हो जो घर को ऊँचा करे, जोड़े; सब जोड़ दृढ़ करे। उन्हें जान कर काटने वाले इन्द्र(बिजली-इंजीनियर) की सहायता से बाँधें। ३

७६ हे सब कष्ट-हर्ता घर! हम तेरे बाँस-बन्धन-जोड़-फूस-पक्खों के बन्धन विशेष बाँधें। ४

७७ नाप से बनी, मान-रक्षक शाला के कैंचियों के समान जुड़ी लकड़ियों के, पल बताने वाली घड़ी के, और अन्दर के चारों ओर के बन्धन बाँधें। ५

७८ घर के भीतर जो मचान-अल्मारी रमणीयता-सुख के लिए होती हैं उन्हें बनायें। हे मान रक्षक शाला! तू हमारे शरीर के लिए ऊँची उठायी हुई हो। ६

७९ हे दिव्य शाला! तू अन्नभण्डार-अग्निशाला-पत्नीसदन-बैठक-देवसदन है। ७

८० हे विशेष उत्पादक! तुझपर हजारों झरोखों वाला; विस्तृत पुरोहित-निर्दिष्ट जाल मुकुटसा बाँधें। ८

८१ हे मान-रक्षक शाला! जो तुझे लेता है, जिससे तू बनायी गयी, वे दोनों बुढ़ापे तक जिएँ। ९

८२ जिसका अङ्ग-अङ्ग पोरुआ-पोरुआ दृढ़ बँधा हो ऐसी सुन्दर शाला इसे वहाँ पहुंचे। १०

८३ हे शाला! जो तुझे बनाता, तदर्थ लकड़ी लाता है; वह परम पद पर स्थित सन्तान-रक्षक तुझे सन्तान के लिए बनाता है। ११

८४ उसके लिए, दाता शालापति के लिए, अग्नि और तेरे पहरेदार के लिए नमः(अन्नादर) करें। १२

८५ गौओं-अश्वों के लिए अन्न हो जो शाला में पैदा हो। हे विविध जीव-जन्तु-सन्तान-प्रजा वाली, हम तेरे बन्धन विशेषतया ग्रन्थित करें। १३

८६ हे पशु-प्रजा वाली शाला! तू अग्नि-पुरुषों को पशुओं के साथ आच्छादित रखती है। हम तेरे बन्धन अच्छे ग्रन्थित करें। १४

२३८७ द्यो-पृथिवी के मध्य विस्तृत कमरों से युक्त यह शाला तेरे लिए स्वीकार करता हूं। जो अन्तरिक्ष(ऊपर की छत)लोक के विमान के लिए विशेष नापा है उसे सुखद निधियों के लिए उदर-समान कक्षाओं से शोभित करता हूं अतः तदर्थ शाला को स्वीकार करूँ। १५

८८ हे शाला ! बल-दूधयुक्त तू भूमि पर मापी-बनायी, सब प्रकार के अन्न रखती हुई स्वीकारकर्ता को हिंसा न कर। १६

८९ हे घास-फूस से ढकी, पल आदि समय-सूचक यन्त्र रक्खे, जगत् को रात के समान आश्रयदात्री नापी शाला ! तू पैरों वाली हथिनी के समान बड़ी हो। १७

९० आने-जाने का बन्द द्वार खोलता हुआ मैं ग्रन्थित करूँ। अँधेरे से ढकी को सूर्य प्रातः प्रकाशित करे।

९१ वेदज्ञ-शिल्पियों से नापी-बनायी शाला की अमर वायु-अग्नि रक्षा करें, घर सोम-युक्त हो। १९

९२ घोंसले पर घोंसला, कमरे पर कमरा बने, वहाँ मध्यमें मर्त्य पैदा हो; जिससे विश्व बढ़ता है। २०

९३ जो दो-चार-छः-आठ-दस पक्षों(कमरों)की बने उस मान-रक्षक शाला में अग्नि गर्भवत् रहे।२१

९४ हे शाला ! मैं सामने पश्चिम(द्वार)वाली अहिंसक तुझमें सामने से घुसूँ। तेरे अन्दर अग्नि और जल यज्ञ के प्रथम द्वार हैं। २२

९५ घर में रोग-निवारक शुद्ध जल का संग्रह हो, घरों में मैं जल-आग के साथ रहूं। २३

९६ हे शाला ! तू हमारा बनाया बन्धन ढीला न कर, बड़ा भार हल्का हो, वधू के समान तुझको इच्छानुसार ले जायें। [ऐसा पहियों वाला घर हो !] २४

२३९७-२४०३ शाला की पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर-नीचे-ऊपर-उपदिशाओं से शामा के महिमा शाली परमेश्वर के लिए नमः, तथा स्वाहायोग्य देवोंके लिए स्वाहा(सुवचन-अन्नाहुति) हो। २५-३१

२४ मन्त्रों का सूक्त ४। ऋषभ (श्रेष्ठ परमेश्वर और बैल)

२४०४ साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत्।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान्॥ १

५ अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभुः सर्वस्मै पृथिवीव देवी।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु॥ २

६ पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः॥ ३

७ पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम्।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः॥ ४

८ देवानां भाग उपनाह एषोऽपां रस ओषधीनां घृतस्य।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवत् यच्छरीरम्॥ ५

९ सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्यस्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः॥ ६

१० आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस् तमु यज्ञमाहुः।

इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥ ७

२४११ इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियङ्ककुत् ।
बृहस्पति संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥ ८

१२ दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमा जुहोति ॥ ९

१३ बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः परमात्मा त आभृतः ।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ १०

१४ य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत् । तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा संस्तौतु भद्रया ॥ ११

१५ पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ । अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥ १२

१६ भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः । पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ १३

१७ गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् । उत्थातुरब्रुवन्पदः ऋषभं यदकल्पयन् ॥ १४

१८ क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः । देवाः सङ्गत्य यत्सर्वं ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ १५

१९ ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् । ऊवध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥ १६

२० शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा । शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥ १७

२१ शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः । जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ १८

२२ ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः । पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥ १९

२३ गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् । तत्सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥ २०

२४ अयं पिपान इन्द्र इद्रयिं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥ २१

२५ पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ २२

२६ उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः । उप ऋषभस्य यद्रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥ २३

२४२७ एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु ।
मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ २४

[इस सूक्त ४ में ऋषभ शब्द से परमात्मा का वर्णन रूपक अलंकार से किया गया है]

२४०४ हजारों शक्तियुक्त, प्रकाशमान, रसवाला, सब रूपों के लोकों को शक्तियों में धारण करता हुआ व्यापक परमात्मा दानी-याज्ञिक के लिए सुख देता हुआ, बड़ा पति होकर संसार-तन्तु फैलाता है। १

५ जो आरम्भ में आपः का निर्माता हुआ, भूमिवत् प्रभु, सब के लिए सुखदाता, हम बच्चों का पिता अहिंसनीय प्रजा का पति है वह हम हजारों पालकों सम्पुष्ट करे। २

६ रक्षा-पूर्ण-अन्दर व्यापक-स्थिर-रसरूप ऋषभ परमात्मा बसे जगत् का सुख-बन्धन धारण करता है, उस दाता को विद्वान् ऐश्वर्य के लिए देवयान मार्गों से प्राप्त करें । ३

७ जीवों का पिता, अहिंसनीय वेद-वाणियों का पति, गरजने वालों (मेघ-उपदेशकों) का रक्षक है, वायु-हिरण्यगर्भ-ब्रह्माण्ड-अन्तरिक्ष-अग्नितेज सभी इसीके वीर्य हैं । ४

८ यह देवों का आश्रय, उन्हें परस्पर नियम में बाँधने वाला, वज्र-औषधि-घी का रस, शक्तिशाली संसार के प्राण को वश में कर शरीर को बड़े पर्वत-समान दृढ़ करता है । ५

९ हे रूपों के निर्माता, प्राणी-जनक ! तू भक्ति-पूर्ण हृदय-कलश पुष्ट करता है । यहाँ तेरी उत्पादक शक्तियाँ कल्याण-कारिणी हों, हे स्वयं धारक! इन्हें हमें दे । ६

१० इसका प्रकाशमय सामर्थ्य प्राण को पुष्ट करता है, उस हजारों के पोषक को यज्ञ कहते हैं । हे विद्वानो ! वह इन्द्र-स्वरूप-धारी दाता ऋषभ हमें उपदिष्ट, कल्याणकारी होकर मिले । ७

११ जो धीर-कवि-मनीषी हैं वे इन बृहस्पति परमात्मा का एकत्रित पोषकरूप बताते हैं कि इस में बिजली का ओज; वायु की बाहें, द्यो-पृथिवी के कन्धे, सामगानों का कूबड़ है । ऐसा बैल है । ८

१२ हे दुग्धादि वाले परमात्मा ! तू दिव्य पूजा बढ़ाता है; तुझे इन्द्र और वेदपति कहा जाता है । जो ब्रह्मोपासक के लिए ऋषभ (ब्रह्म) का दान करता है वह मानो एक मुख से हजार उपदेश देता है । ६

१३ वायु-सूर्य तेरा ही अन्न (सामर्थ्य) धारण करते हैं, तेरा आकाश सूर्य-वायु से धारित है; अन्तरिक्ष (हृदय) में मैं मन से समर्पित हूं, द्यावापृथिवी तेरे आसनवत् वृद्धि-सूचक हैं । १०

१४ जो प्राणों से आत्मा-समान, वेदवाणियों-लोकों-इन्द्रियों में बोलता हुआ सा गति करता है उस ऋषभ के अङ्गों को चतुर्वेदी ब्रह्मा विद्वान् भद्र वाणी से बताये । ११

१५ उसकी बगलें अनुमति (अनुकूल बुद्धि-वेद) की, कोखें भग (सूर्य-ऐश्वर्य) की हैं, मित्र सूर्य-प्राणवायु) कहता है कि उसके दोनों घुटने केवल मेरे हैं । १२

१६ प्रजनन भाग आदित्यों का, कटि के दो भाग बृहस्पति (अग्नि) के, और पूँछ वायु देवकी है जिस से वह औषधियाँ कँपाता है । १३

१७ उसकी गुदा सिनीवाली (अन्नवाली भूमि) की, त्वचा सूर्य-प्रभा उषा की बताते हैं । पैर उत्थाता (सूर्य-प्राण) के बताते हैं, जब बैल के रूपक अलंकार से उसकी कल्पना करते हैं । १४

१८ उसकी गोद-छाती नाराशंस (ज्ञानियों में प्रशंसनीय, नहिन-प्रशंसक भाई) की है, कलश सोम का बताते हैं जब सब विद्वान् मिलकर उस ऋषभ की कल्पना करते हैं । १५

१९ वे उसकी सरमा (बुद्धि) की कुष्टिका (सुमों) से, कूर्म प्राण की खुरों से कल्पना करते हैं । इसका मल कल (एक दिन) जीवित कीटों को बताते हैं । १६

२० जो वेद-वाणियों का अहिंस्य पति परमात्मा है वह सींगों (प्रकट-अप्रकट साधनों, परमेष्ठी-प्रजापतिरूपों [अथर्व ९-७-१]) से विघ्न, चक्षु [सूर्य] से अनाजीविका हटाता, कानों से भद्र प्रार्थना को [बिना कर्णों के] सुनता है । १७

२१ जो वेदज्ञ परमात्मा को समर्पित है वह मानो सैकड़ों यज्ञ करता है, उसे ताप दुःख नहीं देते, विद्वान् और प्राकृतिक शक्तियाँ प्रसन्न रखती हैं । १८

२२ जो वेदज्ञों को ईशोपदेश देकर मन श्रेष्ठ बनाता है वह स्वशरीर में इन्द्रियों की पुष्टि पाता है । १९

२३ ईशोपदेष्टा के पास गौ-सन्तान-शरीर-बल हो, विद्वान् इस सब का अनुमोदन करें । २०

२४ यह विशाल इन्द्र ही चेतना-ऐश्वर्य दे, मेधावी की सुख-दोह्य, नित्य-मन-वत्सा वेद-गौ द्यौ से दुहे । २१

पतञ्जलि कृतं योग-दर्शन-शास्त्रम्

गतांक से आगे

६. प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः। ७. प्रत्यक्ष-अनुमान-आगमाः प्रमाणानि।

६. प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति ये ५ चित्त की वृत्तियाँ होती हैं।

७. इनमें प्रत्यक्ष उसको कहते हैं कि जो चक्षु आदि इन्द्रिय एवं रूपादि विषयों के सम्बन्ध से सत्य-ज्ञान उत्पन्न हो। जैसे दूर से देखने में सन्देह हुआ कि वह मनुष्य है या कुछ और। फिर उस के समीप होने से यह निश्चय होता है कि वह मनुष्य ही है इत्यादि प्रत्यक्ष के उदाहरण हैं।

जो किसी पदार्थ के चिह्न देखने से उसी पदार्थ का यथावत् ज्ञान होता हो वह अनुमान कहाता है। जैसे किसी के पुत्र देखने से ज्ञान होता है कि उसके माता-पिता आदि हैं वा अवश्य थे-इत्यादि, उसके उदाहरण हैं जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अर्थ का निश्चय कराने वाला है, जैसे ज्ञान से मोक्ष होता है-यह आप्तों का उपदेश शब्द (आगम) प्रमाण का उदाहरण है। [क्रमशः]

वेद का अनर्थ (२३)

वेद में कोई कहानी नहीं

स्वामी गङ्गेश्वरानन्द उदासीन ने वेदप्रदीप फरवरी ९१ के अंक में पृष्ठ १८ पर अपनी वेदोपदेश-चन्द्रिका के श्लोक ३९ में ऋग्वेद १०-९८-५ में दो भाईयों देवापि-शन्तनु का वर्णन बताया जो असत्य है। सृष्टि के आदि में ईश्वर-दत्त वेद में कहानी नहीं हो सकती मन्त्र यह है—

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन् देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान्।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद् वर्ष्या अभि॥ [ऋ १०.९८.५]

दैविक अर्थ— देवों की सुमति को पाने वाला, आर्ष्टिषेण (वृष्टि रूपी सेना वाला, मेघों का पुत्र), ऋषि (गतिशील) देवापि (किरणों को पाने वाला बिजली) वृष्टि-यज्ञ करता हुआ आकाश के उपरि समुद्र से नीचे पृथिवी के समुद्र तक वर्षा लाया करता है॥ इससे पहले वृहस्पति (सूर्य) का वर्णन है।

यास्क ने निरुक्त २-१० में यही अर्थ माना है यद्यपि उससे पहले वृहद्देवता (७.१५५-८; ८.१-६) का ऐतिहासिक अमान्य पक्ष भी दिया है अलंकार-कथा-रूप में रहस्य समझाया जाता है।

देवापि (बिजली) के दूर हो जाने से उसका भाई जल नहीं बरसाता। इसे कथा मानना अनर्थ है।

वेदज्योति-सम्बन्धी वक्तव्य, फार्म ४ नियम ८

१ प्रकाशन का स्थान- लखनऊ। २ अवधि- मासिक, तारीख २,३। ३-४-५ मुद्रक-प्रकाशक सम्पादक- नाम- वीरेन्द्र मुनि सरस्वती शास्त्री, पता- सी ८१७ महानगर लखनऊ। ६ स्वामित्व- विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ पिन २२६००६ (रजिस्टर्ड)

मैं, वीरेन्द्र मुनि सरस्वती शास्त्री, इस वक्तव्य द्वारा घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरे ज्ञान और विश्वास में सत्य है। —हस्ताक्षर वीरेन्द्र मुनि सरस्वती शास्त्री १६-२-१९९१ ई०

पृ. २४, वर्ष १५ अङ्क ३ चैत्र (मधु)२०४८ **वेदज्योति** मार्च ९१, न.६९२१/६२ डाक लख २०९

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष ३-२-९१ को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

शतपथ, निरुक्त, अष्टाध्यायी, वेदार्थपारिजात-खण्डन
अथर्ववेद, सामवेद के ब्राह्मण

अनुवादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड१-२, २०), वेदार्थपारिजातखण्डन २०) साम वंश ब्राह्मण१०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००)मगा इये

—वीरेन्द्र सरस्वती, अध्यक्ष, ओ३मित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी ८१७ महानगर लखनऊ ६

वैदिक दैनन्दिनी प्रथम वैशाख, २०४८ विक्रम

तिथि कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पू

वार र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र

नक्षत्र चि स्वा वि वि अ अनु ज्ये मू पू उ श्र ध श पू उ रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु श्ले म पू उ ह चि वि

ता. मा. ३१ अ. १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस,
सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६
उ० प्र०, भारत, पिन २२६००६

सेवा में क्रमांक
श्री लाइब्रेरियन
स्थान गुरुकुल कांगड़ी
पत्रालय विश्वविद्यालय
पिन हरिद्वार
जनपद
प्रदेश

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

वर्ष १५ अंक ४ अथर्व वेद खण्ड १७ साम वेद
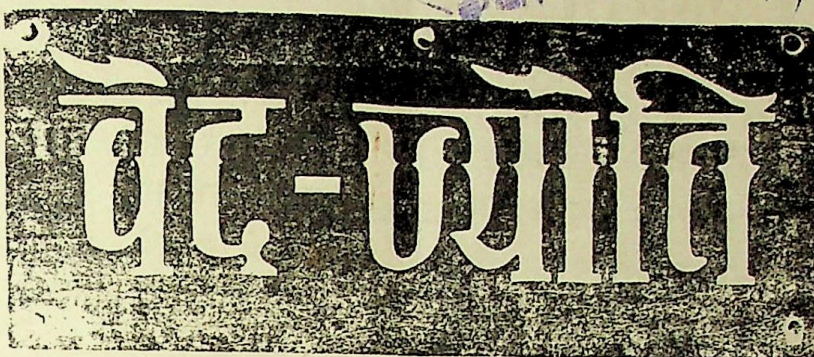
प्रथम वैशाख २०४८ अप्रैल १९९१ अथर्व वेद

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार
वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९१, दयानन्दाब्द १६७
शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर
सम्पादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्
सहायक— विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१
दिल्ली कार्यालय-श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, सी ६ हिल व्यू वसन्तविहार नयीदिल्ली ५७, दूरभाष ६०१४५२

नव वर्ष मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०९२ शुभ हो !

सत्यार्थप्रकाश—मन्त्र-व्याख्या

क्रमाङ्क ६६। ऋषि- भृगु अङ्गिराः, देवता- अनड्वान्, छन्द- त्रिष्टुप्, स्वर-धैवत

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तारिक्षम्।

अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वम्भुवनमाविवेश ॥

सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ८ में लेखक ने उक्षा स द्यावा० ऋ १०.३१.८ के स्थान पर इस अथर्व वेद ४-११-१ का भाग जोड़ दिया। सर्वत्र वही अशुद्ध 'उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम्' छप रहा है। सभी इसे ऋग्वेदानुकूल ही छापें जैसा कि वेदज्योति के मार्च ९१ के अंक में छापा है।

अर्थ- प्राण-गति-युक्त ईश्वर पृथिवी-द्यौ-बड़े अन्तरिक्ष-६ बड़ी दिशाओं को धारण कर रहा है। वह सब भुवन में व्यापक है।

वीरेन्द्र सरस्वती

पतञ्जलि कृतं योग-दर्शन-शास्त्रम्

गतांक से आगे

८. विपर्ययः मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्। ९. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।

८.दूसरी वृत्ति विपर्यय कि जिससे मिथ्या ज्ञान हो; जैसे को तैसा न जानना, वा अन्यमें अन्य भावना कर लेना इसको विपर्यय कहते हैं। शरीर को आत्मा जानना इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

९. तीसरी विकल्प वृत्ति, जैसे किसी ने कहा कि एक देश में हमने आदमी के सिर पर सींग देखे थे। इस बात को सुनकर कोई मनुष्य निश्चय कर ले कि ठीक है- सींगवाले मनुष्य भी होते होंगे। यह झूँटी बात है अर्थात् जिनका शब्द तो हो परन्तु किसी प्रकार का अर्थ किसीको न मिल सके, इसी से इसका ही नाम विकल्प है।

क्रमशः

वेद का अनर्थ (२४) वेद में नाभानेदिष्ठ की कोई कहानी नहीं

स्वामी गङ्गेश्वरानन्द उदासीन ने वेदप्रदीप मार्च ९१ के अंक में पृष्ठ १८ पर अपनी वेदोपदेश-चन्द्रिका के श्लोक ९४ में ऋग्वेद १०-६१-८ में नाभानेदिष्ठ-रुद्र का वर्णन बताया है जो असत्य है। सृष्टि के आदि में ईश्वर-प्रदत्त वेद में कहानी नहीं हो सकती। मन्त्र यह है—

स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परदप दभ्रचेताः।
सरत्पदा न दक्षिणा [illegible] ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे॥

श्री जयदेव शर्मा का भौतिक अर्थ- वह विवाहिता से ही सम्पर्क करे, अल्प-चित्त होने पर परे रहे, धन के लिए पैर न फैलाए, धन से दूर रहे; ससुर का धन न चाहे।

श्री वैद्यनाथ शास्त्री का दैविक अर्थ- वह अग्नि बिजली के समान घी आदि फेन को यज्ञ में दूर तक फेंकता है। अल्प-मनस्क यदि दक्षिणा के लिए रोकनेवाले पैर नहीं हटाता तो वह अग्नि मेरी उन वाणियों को निश्चय ही नहीं ग्रहण करता है। (दक्षिणा के अभाव में यज्ञ यज्ञ नहीं रहता।)

अतः मन्त्र में कथा का सङ्केत तक न होने से सायण-गङ्गेश्वरानन्द का अर्थ अनर्थ है। -वी०स०

समाचार

फाल्गुन में शिवरात्रि-ऋषिबोध-होली, चैत्र में नव संवत्सर-आर्यसमाज-स्थापना-दिवस-राम नवमी महावीर जयन्ती-हनुमान जयन्ती पर्व मनाये गये। वैशाख में मेष-संक्रान्ति(१४-४-९१ को)होगी।

ईराक में युद्ध समाप्त होगया, संयुक्त राष्ट्र संघ की शर्तें मानकर कुवैत खाली कर दिया। भारत के राष्ट्रपति ने लोकसभा भङ्ग कर नये कर दी जून तक नये चुनाव करने का आदेश दिया है। महात्मा हंसराज-दिवस १८-४-९१ को सर्वत्र,विशेषतः दिल्लीमें डी॰ए॰वी॰ संस्था द्वारा मनाया जायगा।

बहालगढ़ में रामलाल कपूर ट्रस्ट के उत्सव में १६-१७ मार्च को वेद-प्रवचन-गोष्ठी आदि हुई,

नीचे अंकित आर्य वेदज्ञों के देहान्त पर हार्दिक शोक व्यक्त किया जाता है-

श्री रामप्रसाद वैदिक तलवन्डी कोटा ३०-१-९१, युद्धवीर, संपादक मिलाप हैदराबाद १-२-९१, महाराज सुदर्शनदेव शाहपुरा १०-२-९१, श्री सत्यकाम वेदालंकार बम्बई १४-३-९१

मानव-वेद-सृष्टि-संवत्

शतन्तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्तेनुमन्यन्तामहृणीयमानाः॥

४३२ पर शत गुणित अयुत के सात शून्य (०००००००) रखने से चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों की पूरी जड़ सृष्टि होती है। पढ़े जाने वाले संकल्प के अनुसार मानव-सृष्टि १४ मन्वन्तरों की; एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का, एक चतुर्युगी तितालीस लाख बीस हजार वर्ष की;एक चतुर्युगी में-कलियुग ४३२००० (चार लाख बत्तीस हजार) वर्ष का होता है, उससे दुगना द्वापर ८६४००० का, तिगुना त्रेता १२९६००० का, और सत्ययुग चौगुना १७२८००० वर्ष का है। एवं मानव-सृष्टि में ९९४ चतुर्युगी और जड़ सृष्टि में १०००, इतना सभी मानते हैं,समस्या शेष बचीं ६ की रहती है कि कहाँ रहें। महर्षि दयानन्द इन्हें आदि में जड़ सृष्टि के बनने में लगी मानते हैं, कुछ आधी आदि, आधी अन्त में, कुछ इनके १४ भाग करके प्रत्येक मन्वन्तर के वर्षों में मिलाते,और कुछ इनको१५ सन्धि मान लेते हैं।

(शेष पृष्ठ २३ पर)

ओ३म्

संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः (स्वयं-शिक्षकः)

रचयिता— महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

प्रवक्ता सम्पादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ,
उपाध्यक्ष: विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ पिन २२६००६ (रजिस्टर्ड)
द्वितीय बार ५०० मुद्रक- आदर्श प्रेस लखनऊ मूल्य ५)

ओ३म्

संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः
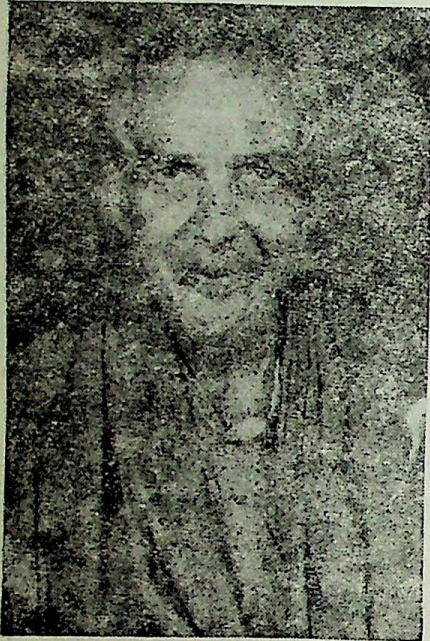
शुभाशंसा
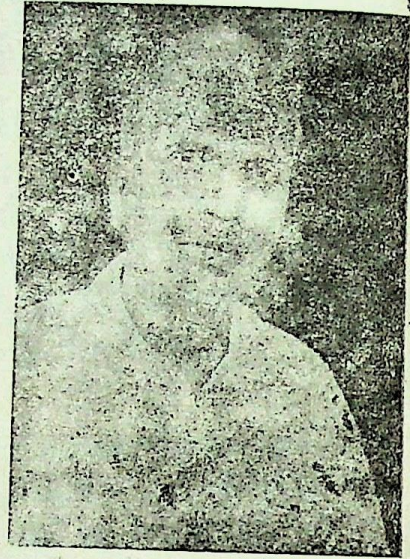
वेदाचार्य [illegible] मुनि सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कृत-वाक्य-प्रबोध इस उद्देश्य से लिखा था कि संस्कृत पढ़नेवाले छोटे बालक-बालिकाओं को भी संस्कृत भाषा का अभ्यास हो जाये, जैसा कि उन्होंने इसकी भूमिका में लिखा है।

ऐसे उत्तम उद्देश्य से जिस ग्रन्थ की रचना महर्षि दयानन्द ने की उसका अधिकाधिक प्रचार सर्व साधारण जनता में होना चाहिए, और ऐसे संस्करण भी निकालने की आवश्यकता अनुभव की गयी कि जिससे इसके द्वारा संस्कृत व्याकरण तथा अनुवाद का भी अभ्यास बढ़ाया जा सके।

संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् आचार्य वीरेन्द्र जी शास्त्री, एम०ए०, काव्यतीर्थ ने संस्कृत-वाक्य-प्रबोध का यह नवीन परिवर्धित विशिष्ट संस्करण इसी उद्देश्य से लिखा और विश्व वेदपरिषद् की ओर से प्रकाशित कराया है।

इसमें स्थान-स्थान पर सन्धि-समास, शब्दों-धातुओं के रूप, अभ्यासार्थ अनुवाद के वाक्य आदि दे दिये गये हैं जिन से छात्रों का संस्कृत-भाषण के साथ-साथ व्याकरण आदि का ज्ञान भी बढ़ जायेगा।

मुझे निश्चय है कि संस्कृत-वाक्य-प्रबोध के बड़े परिश्रम से तैयार किये गये इस नवीन और परिवर्धित संस्करण को छात्र, शिक्षक तथा अन्य संस्कृत-प्रेमी अधिक उपयोगी पायेंगे, और सभी संस्कृत-कक्षाओं तथा पाठशालाओं में इसका उपयोग करके लाभ उठाया जायेगा।

निवेदकः—
धर्मानन्द सरस्वती, विद्यामार्तण्ड;
अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्, आनन्द-कुटीर, ज्वालापुर।

७-१०-१९७८

संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः [स्वयं-शिक्षकः]

प्रस्तावना

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन-चरित और पत्र-विज्ञापन पढ़ने से विदित होता है कि उन्होंने संस्कृत भाषा के प्रचार के लिए कितना महान् परिश्रम किया। पहले वे संस्कृत में ही भाषण करते थे। वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सबका परम धर्म बताकर उसकी पूर्ति के लिए वे संस्कृत का पढ़ना अनिवार्य समझते थे। अंग्रेजी शिक्षा के भयंकर परिणाम जानकर महर्षि ने अनेक पत्रों में उनके पाठनार्थ धन-व्यय न करने का आदेश दिया और अनेक जगह संस्कृत पाठशालाएँ खुलवायीं। आरम्भ में डी० ए० वी० में भी संस्कृत अनिवार्य थी; परन्तु दुःख है कि अब दयानन्द-वैदिक नाम से चलने वाले आर्यसमाज के विद्यालयों में भी सब अनिवार्य नहीं।

महर्षि के संस्कृत-विषयक विचार जानने के लिए 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पृष्ठ २५ १२२ १४७. १५२ २६४ २६५ २६७ २६८ ३२४ ३६६ ३६८ ३६९ ३८९ ४१६ और ४२६ देखने चाहिए।

जब बोलचाल की संस्कृत सीखने की पुस्तक माँगी जाने लगी तो महर्षि ने यह ग्रन्थ रचा, खेद है कि बहुत-से महर्षि-भक्त भी इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में जानते भी नहीं; उसे पढ़ना तो दूर रहा।

इस ग्रन्थ में छोटे-बड़े सब ५२ प्रकरण हैं जिनमें नित्यप्रति व्यवहार में आने वाले वाक्य संगृहीत हैं। महर्षि-मन्तव्य था— मनुष्य ईश्वरीय भाषा बोलें, एतदर्थ यह ग्रन्थ बनाया।

इसका पहला संस्करण वैदिक यन्त्रालय में छपा जो उस समय बनारस में था, अब अजमेर में है, अब से सौ वर्ष पूर्व फाल्गुन शुक्ल ११, संवत् १९३६ वि० (२२ मार्च १८८०) में प्रकाशित हुआ

इसकी रचना-प्रकाशन-समय महर्षि-चित्त स्वस्थ न था, अतः उन्होंने अपने शिष्य-लेखक प० भीमसेन को प्रूफ-शोधन आदि सौंप दिया; उसके विश्वासघात-असावधानी और प्रेस-अव्यवस्था से इसमें कुछ अशुद्धियाँ रह गयीं जिन पर काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के प० अम्बिकादत्त व्यास, बाबू रामकृष्ण आदि ने 'अबोध-निवारण' पुस्तक छपाकर आक्षेप किये थे; जिनपर महर्षि ने श्री बख्तावर सिंह प्रबन्धक वैदिक यन्त्रालय काशी को श्रावण शुक्ल १३, संवत् १९३७ वि० के पत्र में लिखा—

जो संस्कृत-वाक्य-प्रबोध पर पुस्तक छपवाया है सो बहुत ठिकानों पर उनका लेख अशुद्ध है और कई एक ठिकानों पर अशुद्ध भी छपा है। इस अशुद्धि के कारण तीन हैं-- एक शीघ्र बनना, मेरा चित्त स्वस्थ न होना; दूसरा— भीमसेन के आधीन शोधन होना और मेरा न देखना, न प्रूफ को शोधना; तीसरा— छापाखाने में उस समय कोई भी कम्पोजीटर बुद्धिमान् न होना, लैम्पों की न्यूनता होनी। इसके उत्तर में जो जो उनकी सच्ची बात है सो सो शोधक और छापा का दोष रहेगा। इस के खण्डन पर भीमसेन का नाम न लिखना किन्तु पण्डित ज्वालादत्त के नाम से छापना।

पत्र-व्यवहार पृष्ठ २२३

इसी प्रकार महर्षि के अन्य पत्रों में भी संस्कृत-वाक्य-प्रबोध की छपायी की भूलोंका उल्लेख है— 'वेदभाष्य का प्रूफ और छापना संस्कृत-वाक्य-प्रबोध के तुल्य न होगा। ... छापेवालों की भूल से छप गया। वहाँ 'एकत्रैकाङ्गुष्ठ एकत्र चतुरङ्गुलयः' ऐसा चाहिए, सो सुधार दीजिए'। (पृष्ठ ४०९)

आक्षेपों के उत्तर आर्यदर्पण पत्रिका के मई सन् १८८० अंक में पृष्ठ ११३-१२० पर छपे हैं।

इस ग्रन्थ का बहुत महत्त्व है, क्योंकि इसमें महर्षि की विचार-धारा संकलित हैं, हृदय के भाव ओजपूर्ण भाषा में, प्रत्यक्ष, वार्तालाप प्रकार शैली में विद्यमान हैं। —वीरेन्द्र शास्त्री १-९-१९७८

ओ३म्

महर्षिकृतः, संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः

भूमिका

मैंने इस 'संस्कृत-वाक्य-प्रबोध' पुस्तक को बनाना अवश्य इसलिए समझा है कि शिक्षा को पढ़ के कुछ कुछ संस्कृत भाषण का आना विद्यार्थियों को उत्साह का कारण है। जब वे व्याकरण के सन्धि-विषयादि पुस्तकों को पढ़लेंगे तव तो उनको स्वतः ही संस्कृत बोलनेका बोध हो जायगा, परन्तु यह जो जो संस्कृत बोलने का अभ्यास प्रथम किया जाता है, वह भी आगे आगे संस्कृत पढ़ने में बहुत सहाय करेगा। जो कोई व्याकरणादि ग्रन्थ पढ़े बिना भी संस्कृत बोलने में उत्साह करते हैं वे भी इसको पढ़ के व्यवहार-सम्बन्धी संस्कृत भाषा बोल और दूसरेका सुनके भी कुछ-कुछ समझ सकेंगे। जब बाल्यावस्था से संस्कृत के बोलने का अभ्यास होगा तो उसको आगे आगे संस्कृत बोलने का अभ्यास अधिक अधिक ही होता जायगा। और जब बालकभी आपस में संस्कृत भाषण करेंगे तो उनको देखकर जवान और वृद्ध मनुष्य भी संस्कृत बोलने में रुचि अवश्य करेंगे। जहाँ कहीं संस्कृत के नहीं जाननेवाले मनुष्यों के सामने अपना गुप्त अभिप्राय समझाना चाहें तो वहाँ संस्कृत भाषण काम आता है।

जब इसके पढ़ाने वाले विद्यार्थियों को ग्रन्थस्थ वाक्यों को पढ़ायें उस समय दूसरे वैसे ही नवीन वाक्य बनाकर सुनाते जायें, जिससे पढ़ने वालों की बुद्धि बाहर के वाक्यों में भी फैल जाय।

और पढ़ने वाले भी एक वाक्य को पढ़के उसके सदृश अन्य वाक्यों की रचना भी करें कि जिससे बहुत शीघ्र बोध हो जाय, परन्तु वाक्य बोलने में स्पष्ट अक्षर, शुद्धोच्चारण, सार्थकता देश-काल-वस्तु के अनुकूल जो पद जहाँ बोलना उचित हो वहाँ बोलना और दूसरे के वाक्यों पर ध्यान देकर सुनके समझना। प्रसन्नमुख, धैर्य, निरभिमान और गम्भीरतादि गुणों को धारण करके, क्रोध, चपलता, अभिमान और तुच्छतादि दोषों से दूर रहकर अपने अथवा किसी के सत्य वाक्य का खण्डन और अपने अथवा किसी के असत्य का मण्डन कभी न करें और सर्वदा सत्य का ग्रहण करते रहें।

इस ग्रन्थ में संस्कृत वाक्य प्रथम और उनके सामने भाषार्थ इसलिए लिखा है कि पढ़ने वालों को सुगमता हो और संस्कृत की भाषा और भाषा का संस्कृत भी यथायोग्य बना सकें।

काशी, फाल्गुन शुक्ला ११, १९३६ वि०

दयानन्द सरस्वती
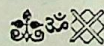
ओ३म्

वेद मे सब सत्य विद्याएँ (विज्ञान)

लेखक—आचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती, एम० ए० काव्यतीर्थ
अध्यक्ष विश्व वेद परिषद्, सी ८१७ महानगर, लखनऊ

सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा द्वारा मानवों के लिए प्रदत्त ज्ञान वेद चार हैं। १- ऋग्वेद, २- यजुर्वेद, ३- सामवेद ४- अथर्ववेद। चारों को ज्ञान रूप में एक ही 'वेद' कह दिया जाता है। यहाँ भी 'वेद' से तात्पर्य उपयुक्त चारों वेदों से है, जो इस समय पुस्तकाकार में उपलब्ध हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने घोषणा की कि वेदों में सब सत्य विद्याएँ हैं और तदनुसार आर्यसमाज का तीसरा नियम बनाया—'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है; वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

'विद् ज्ञाने' धातु से निष्पन्न वेद और विद्या दोनों एक प्रकार से पर्यायवाची हैं, पहला पुल्लिग में है और दूसरा स्त्रीलिंग में है। विद्या को अंग्रेजी में लर्निंग अथवा साइन्स कहा जाता है।

श्री मूलराज तथा ब्राह्म समाज के नेताओं ने महर्षि से कहा था कि आप अपने नियम में से 'सब' शब्द निकाल दीजिये। किन्तु महर्षि अटल रहे। उन्होंने कहा कि जब वेद ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि की आदि में मनुष्यों को प्राप्त हुआ तो उसमें 'सब'! विद्यायें अवश्य होनी चाहिए, चाहे वे सूत्ररूप में ही, संकेतित ही हों। आगे के ऋषि-मुनियों ने इन्हीं का विस्तार किया।

❀ १४ विद्याएं ❀

ईश्वर अनन्त है उसका ज्ञान वेद भी अनन्त है और उसमें प्रतिपादित विद्याएँ भी अनन्त हैं। किन्तु मनुष्यों के उपयोग के लिए विद्वानों ने १४ विद्याएं गिनायीं तदनुसार महर्षि दयानन्द ने जो १- ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (वेदविषयविचार) २- यजुर्वेद भाष्य (९-३४) तथा कानपुर के अपने विज्ञापन में १४ विद्याओं का निर्देश निम्नलिखित प्रकार से किया—

४ वेद, ४ उपवेद, ६ वेदाङ्ग = १४ विद्याएँ हैं, इन्हीं १४ में सब विद्याएँ आ जाती हैं—

१-अग्नि विद्या, २-वायु विद्या, ३-इन्द्र विद्या, ४-आपः (जल) विद्या, ५-पर्जन्य (वृष्टि) ६- अश्वि विद्या, ७- मधु विद्या, ८- भूत विद्या, (भौतिक फिजिक्स), ९- रसायन विद्या (केमिस्ट्री) १०- सृष्टि विद्या (कास्मोलाजी)।

२ यजुर्वेद- कर्मकाण्ड, आधिभौतिक विद्या, १-यज्ञविद्या, २-राजनीति विद्या, ३-समाज विद्याएँ-(सोशियोलाजी), ४ पशु पक्षिविद्या, ५-पाक विद्या।

३ सामवेद- उपासना काण्ड, आध्यात्मिक विद्याएँ— १-ब्रह्म विद्या, २-जीव विद्या, ३-योग विद्या, ४-मोक्ष विद्या।

४ अथर्ववेद— विज्ञान काण्ड- १-कृषिविद्या, (२-४) मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र विद्या।

५ आयुर्वेद— १-वनस्पति विद्या (बाटनी) २-शल्य विद्या (सर्जरी), ३-औषधि क्रिया (मेडसिन) ४-शरीर क्रिया विद्या (फिजियोलाजी) ५ प्राणि विज्ञान (बायलाजी) ६ अस्थि विद्या (अनाटमी)।

६ धनुर्वेद—१ शस्त्रास्त्र विद्या, २ युद्ध विद्या।

७ गान्धर्व वेद— १ सङ्गीत विद्या (वाद्य-नृत्य-गीत)।

८ अर्थवेद—१ अर्थशास्त्र(इकोनॉमिक्स)२ व्यापार विद्या (कामर्स)३ वास्तुविद्या इंजीनियरिंग।

वेदाङ्ग ९— शिक्षा— १ अक्षर विद्या (फोनोलाजी) २ लेखन कला विद्याएँ ।

१०— कल्प-१-यज्ञ विद्या, २-दर्शन शास्त्र।

११— व्याकरण-१-शब्द विद्या।

१२— निरुक्त--१-निर्वचन विद्या (इटीमालोजी) २-भाषा विज्ञान ।

१३— छन्द-१-काव्य-साहित्य विद्या (पोटिक्स)।

१४— ज्योतिष-१ सूर्य-चन्द्र विज्ञान, २ भूगोल ३ भूगर्भ विज्ञान(जियोलाजी) ४ खगोल शास्त्र (एस्ट्रोनामी) ५ गणित—अंक-बीज-रेखागणित।

ये सभी सत्य विद्याएँ हैं। क्या विद्याएँ असत्य भी होती हैं? होती तो नहीं, किन्तु सांसारिक जन असत्य बातों को भी विद्या कह दिया करते हैं, जैसे फलित ज्योतिष [एस्ट्रोलाजी] तथा प्रेत विद्या। ये वेद में नहीं हैं, काल्पनिक हैं। अतः उनको अलग करने के लिए महर्षि ने आर्य समाज के तीसरे नियम में 'सत्य' शब्द का प्रयोग किया है।

'पुस्तक' शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है, किन्तु संस्कृत में यह नपुंसकलिंग है और महर्षि ने इसका प्रयोग हिन्दी में पुल्लिङ्ग में किया है अतः 'विद्याओं का पुस्तक' तदनुसार शुद्ध है। यद्यपि कागज-स्याही रूप वेद पुस्तक अनित्य हैं। किन्तु विद्याओं से पूर्ण ज्ञान-विषय-वर्णन करने वाले ग्रन्थ विषय की दृष्टि से नित्य हैं, क्योंकि वे सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं।

विषय सरल संक्षिप्त और सीमित करने के उद्देश्य से प्रत्येक विद्या के प्रतिपादनार्थ एक-एक ही अधिकांशतः सरल और प्रचलित मन्त्र उदाहरण में प्रस्तुत किया जाता है।

१ अग्नि विद्या--

१. अग्निमीडे पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ (ऋ. १.१.१)

परमात्मा कहता है कि मैं उस अग्नि का वर्णन करता हूं जो सर्वहितकारी, यज्ञ का देव, प्रत्येक ऋतु में उपकारी, दान-भक्षण-आदान में सहायक, और रमणीय पदार्थों का धारण कराने वाला है। विस्तृत ज्ञान के लिए अग्नि सम्बन्धी सूक्त द्रष्टव्य हैं।

२ वायु विद्या--

२. वायवा याहि दर्शत इमे सोमा अरङ्कृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥ ऋ (१.२.१)

वायु आती-जाती चलती है, वस्तुओं को दिखाती है, उसी से संसार के पदार्थ सुशोभित हैं, वह रक्षक है और शब्द को सुनाने वाली है।

३ इन्द्र विद्या—

३. इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्माः मा व स्तेन ईशत माघशंसः ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥ [यजुर्वेद १.१]

हे जीवात्मन्, ये वस्तुएँ तेरे अन्न और ऊर्जा के लिए हैं। तू वायु का सदुपयोग कर अन्न-रस-शक्ति को प्राप्त कर।

जब बिजली मारती है तब कहते हैं कि अशनि ने मारा। यह बोला- मैं अशनि से अलग हूं, दूसरा नाम रख। १४

उससे कहा- तू भव है। भव मेघ है, जिससे सब होता है। भव रूप होने पर उसने कहा कि मैं उस से अधिक हूं, अन्य नाम रख। १५

उससे कहा कि तू महादेव है। इस नाम के रखने से वह चन्द्ररूप होगया। क्योंकि प्रजापति चन्द्र-महादेव है। यह बोला- मैं उससे अधिक हूं, अन्य नाम रख। १६

यह बोला- तू ईशान है। इस नाम से यह आदित्य-रूप हो गया क्योंकि आदित्य सबका ईश है वह बोला- मैं इतना ही हूं आगे नाम न रख। १७

ये अग्नि के ८ रूप हैं, कुमार ९ वाँ, यही अग्नि का तिहरापन है। १८

इसलिए भी कि गायत्री के चरण के ८ अक्षर हैं अतः अग्नि गायत्र कहाता है। यह कुमार उक्त रूपों में प्रविष्ट हुआ। इसे कुमारवत् नहीं देखते, इसके रूपों को ही देखते हैं जिन में यह घुसा। १९

इसे संवत्सर में चयन करे और मन्त्र बोले। कुछ कहते हैं कि दो संवत्सर में चुने। एक में रेतः-सिञ्चन किया वह दूसरे में कुमार हुआ। किन्तु ऐसा न करे, एक में ही चुने; जो रेतः सींचा वही बढ़ता हुआ शयन करता और कुमार होता है, अतः एक संवत्सर में ही चुने और मन्त्र बोले। उस चयन का नाम रखता है जो इसके पाप नष्ट करता है। तू चित्र है यह कह कर चित्र नाम रखता है। सभी चित्र अग्नि हैं। २०

यह पहले अध्याय में तृतीय ब्राह्मण, और पहला [आरम्भ से छत्तीसवां] अध्याय समाप्त हुआ।

शतपथ ब्राह्मण काण्ड ६, अध्याय २ (३७) ब्राह्मण १

[पुरुष-अश्व आदि ५ पशुओं के पाने की विधि]
[उसमे २४ सामिधेनी आदि और इष्टकाओं का रखना आदि]

प्रजापति ने अग्नि-रूपों का ध्यान किया। जो कुमार उसमें प्रविष्ट था उसे ढूँढ़ा। जब अग्नि ने जाना कि मेरा पिता मुझे चाहता है तो वह रूप रखूँ कि यह मुझे न जान सके। १

उसने इन ५ पशुओं को देखा- पुरुष-अश्व-गौ-भेड़-बकरा। देखने [पश्य] से पशु नाम हुआ। २

वह इन ५ में घुसा, ५ पशुओं के रूप हो गया जिन्हें प्रजापति ने चाहा। ३

इन्हें या इनमें अग्नि को देखने [पश्य] से ये पशु कहाये। ४

उसने देखा कि ये ही अग्नि हैं, इनसे आत्मा संस्कृत करूं। जैसे आग चमकती वैसे इनकी आँखें; जैसे आगसे धुआँ होता वैसे इनसे ऊष्मा निकलती। आगके समान ये भी अहित को जलाते हैं, आग की भस्म होती इनका मल, अतः ये ही अग्नि हैं। अतः नाना दिव्य गुणों के लिए इन्हें पाया - सब कर्मों के लिए पुरुष, वरण के लिए घोड़ा, ऐश्वर्य के लिए गौ-बैल, शिल्प के लिए भेड़, ताप के लिए अज। ५

उसने चाहा कि नाना दिव्य गुण देखूँ या अग्नि-रूप, अतः इनको अग्नियों के लिए कामनार्थ पाया और आग के चारों ओर घुमाकर आगे ले जाकर सम्यक् ज्ञान कराया। ६

उसने देखा— जिस श्रियों की चाहा वे इनके सिरोंमें है अतः सिर (की शक्ति) हो ली, बुरे विचार जल में छोड़ दिये। मेरा यज्ञ (आत्मा) विकृत न हो अतः अज (अजन्मा) से सङ्गति की यह प्रजापति ने देखा किन्तु इस अग्नि का अन्त न पाया। ७

उसने चाहा कि जिस आत्मा को जल में बहाया उसका अन्वेषण हो, अतः अन्वेषण किया, जो जल में मिट्टी मिली थी वह और जल मिलाकर इष्टका बनायी। ८

उसने विचारा कि यदि ऐसे ही सदा आत्मा का संस्कार करता रहूं तो मरणशील राक्षस पापी हो जाऊँगा अतः इसे अग्नि से पक्का करूँ। अतः वैसा कर इसे अमर किया। अग्नि-पकी हवि अमृत होती है अतः आग से ईंटें पकाते हैं, इससे इन्हें अमर करते हैं। ९

जो पशु (के दूध आदि) से इष्टि करके देखा तो इष्टका हुई अतः इष्टि करके ही ईंटें बनाए नहीं तो वे अनिष्ट-कारी होंगीं। १०

जो ये श्री हैं वे पशु-शिर हैं जिन्हें सामने लक्ष्य में रखकर ५ चितियाँ चुनता-जोड़ता है। ११

वे ये सब पशु अग्नि हैं अतः वे आग के पास अपनों के ही साथ रमते हैं। अतः जिसके वे होते वहीं अग्नि-आधान होता है। वे यह अग्नि ही हैं जिनसे प्रजापति अग्नि हुआ। १२

कुछ कहते हैं कि यहाँ इन सब से यज्ञ करे, यहीं इनने प्रजापति ने यज्ञ किया यही अग्नि के अन्त तक जाना और पार पाना है। किन्तु ऐसा न करे क्योंकि वह देवों के चले पथ से गिर जायेगा, और क्या? तभी वह इन चितियों को भर सकता है अतः वैसा न करे। १३

पशुओं का पाना अग्नि के लिए स्थान देना है जिसके बिना कोई नहीं रमता। अन्न ही स्थान है उसे सामने रखता है, यह देखता हुआ अग्नि पास रहता है। १४

५ पाँच जानवर रूपी अन्न सामने रखता है यह देखते हुए आग पास रहती है। १५

५ अग्नियों के लिए ५ चितियाँ स्थान हैं जिन्हें देखता हुआ वह पास रहता है। १६

अतःबहुत सी आग रूपी चितियो पर यजमान यथेच्छ कर्म करता है। १७

पहले पुरुष को फिर घोड़ा-गौ-मेड़-अज को पाता है। १८

इनके बन्धन विषम होते हैं,क्रमशः बड़े से छोटे अपापी होने के लिए सबके बन्धन समान हों। १९

कहते हैं कि यह अग्नि पञ्चेष्टक कैसे होता है? जो पुरोडाश-कपालों में मिलती है वह पहली मिट्टी की, दूसरी पशु के मिलने पर; तीसरी जो घी के साथ सोने का अंश रखा जाता है; चौथी जो इध्म-यूप-परिधियाँ हैं वह वानस्पत्य, पञ्चम घी-प्रोक्षण्य-पुरोडाश ने अन्न ये ५ इष्टकाएँ हैं। २०

उनकी २४ सामिधेनियाँ होती हैं— २४ अर्धमास का संवत्सर-अग्नि है, जितनी इसकी मात्रा उतनी से इस को दीप्त करता है। २१

अथवा २४ अक्षरों की गायत्री; गायत्र अग्नि; जितनी इसकी मात्रा; वैसा ही दीप्त करता है। २२

अथवा चतुर्विंश पुरुष; १०-१० हाथ-पैर की अँगुलियाँ; पुरुष प्रजापति-यज्ञ-अग्नि है; जितना यह और इसकी मात्रा है उतने से ही यह इसे दीप्त करता है। २३

वह गायत्री-त्रिष्टुप् दोनों को बोलता है। प्राण गायत्री; आत्मा त्रिष्टुप्; वह इसके प्राण को ही गायत्रियों से, आत्मा को त्रिष्टुपों से दीप्त करता है। बीच में त्रिष्टुप्, दोनों ओर गायत्रियाँ, मध्य में यह आत्मा, दोनों ओर प्राण, बहुत सी पहले सामने गायत्रियाँ, बाद को पीछे कम, क्योंकि सामने के बहुत से प्राण हैं, बाद के नीचे के प्राण कम हैं। २४

२४२५. सूर्य-समान, आकाश से अन्न-प्रद; बिजलीवत् बली, विश्व-व्यापी परमात्मा हमें मिला है। वह हमें आयु-प्रजा देता हुआ सम्पत्ति के पोषणों से सम्बन्धित करे। २२
२६ हे समीप-सम्पर्की ! तू इस आत्मा में पास सम्पर्क कर, हे इन्द्र ! तेरा शक्ति-वीर्य हमें मिले। २३
२७ हे श्रेष्ठ जीवो, यहाँ इस युवा को बताते हैं, उसके साथ खेलते यथेच्छ विचरो, हमें ऐश्वर्ययुक्त करो। २४

अथर्व काण्ड९ प्रपाठक २१ अनुवाक३ सूक्त५ से ६तक

विषय—यजमान-अजो- नाकाग्नि-ज्योतिष्मान्-दक्षिणादि पदार्थ विद्या (महर्षि दयानन्द)

सूक्त ५ मन्त्र ३८। पञ्चौदन अज (५ शक्ति वाला अजन्मा गतिशील आत्मा)

२४२८ आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम्॥ १

२९ इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम्।
ते नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः॥ २

३० प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चकार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा वि पश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम्॥ ३

३१ अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माभिमंस्थाः।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम्॥ ४

३२ ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम्।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः॥ ५

३३ उत्क्रामातः परि चेदतप्तस् तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम्।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम्॥ ६

३४ अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः॥ ७

३५ पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस् त्रीणि ज्योतींषि।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व॥ ८

३६ अजारोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति॥ ९

३७ अजस् त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका॥ १०

२४३८ एतद् वो ज्योतिः पितरस् तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः॥ ११

२४३९ ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
स व्याप्तिमभि लोकं जयतं शिवोऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ।। १२

४० अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् ।
इष्टं पूर्त्तमभिपूर्त्तं वषट्कृतं तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ।। १३

४१ अमोतंवासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम्।तथा लोकान्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः१४

४२ एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः ।
स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठे अधि सप्तरश्मौ ।। १५

४३ अजोऽस्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन् । तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ।। १६

४४ येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ।। १७

४५ अजःपक्वःस्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः।तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम१८

४६ यं ब्रह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः सङ्गमने पथीनाम् ।। १९

४७ अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ।। २०

४८ सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ।। २१

४९ अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमवरुन्द्धे ।
यो ऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ।। २२

५० नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्जो निर्धयेत्।सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ।। २३

५१ इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सङ्गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ।। २४

५२ पंच रुक्मा पंच नवानि वस्त्रा पंचास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति । यो० [पूर्ववत्]२५

५३ पंच रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति ।
स्वर्गं लोकमश्नुते यो ऽजं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ।। २६

५४ या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेपरम्।पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ।।२७

५५ समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः । यो० [शेष पूर्ववत्] ।। २८

५६ अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् । वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम्।।२९

२४५७ आत्मानम्पितरम्पुत्रम्पौत्रम्पितामहम्।जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये।।३०

५८ यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद। एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः। निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना। योऽजं पञ्चौदनम्दक्षिणाज्योतिषं ददाति॥ ३१

२४५९ यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद। कुर्वतीं कुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमादत्ते एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः। निरेवा० [पूर्ववत्]॥ ३२

६० यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद। संयतीं संयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमादत्ते एष वै संयन्नामर्तु० [पूर्ववत्]॥ ३३

६१ यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद। पिन्वतीं पिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमादत्ते। एष वै पिन्वन्नामर्तु० [पूर्ववत्]॥ ३४

६२ यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद। उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमादत्ते। एष वा उद्यन्० [पूर्ववत्]॥ ३५

६३ यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद। अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमादत्ते। एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः० [पूर्ववत्]॥ ३६

६४ अजं च पचत पंच चौदनान्। सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रतिगृह्णन्तु त एतम्॥ ३७

२४६५ तास्त रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि॥ ३८

सूक्त ५। अज (आत्मा)

२४२८ इस आत्मा को वश में ला, कर्म आरम्भ कर, यह ज्ञानी होकर सुकर्मियों का लोक पाये, यह बड़े तमोगुण पार कर तीसरे नाक (मोक्ष) को पहुंचे। १

२९ इस ब्रह्मयज्ञ में ऐश्वर्य के लिए तुझे भजनीय सृष्टि-यज्ञ-कर्ता परमात्मा के लिए सौंपता हूं। जो हमसे द्वेष करते हैं उन (काम आदि) को वश में कर, यजमान के वीर निष्पाप हों। २

३० पद (आचरण) से चली बुरी चाल शुद्ध कर, जीव आचरणों से ज्ञानी होकर बढ़े, यह तमों को पार कर विशेष ब्रह्म-दर्शन करता हुआ मोक्ष पाये। ३

३१ हे विशेष शासक गुरु! तू इस अविद्या को पूर्णतया ज्ञान-तलवार से काट; अभिमान-हिंसा न कर, द्रोह न कर, पूर्णतः समर्थ बना; इसे मोक्ष में आश्रय दे। ४

३२ मैं आचार्य ऋचा से इसका जीवन ज्ञान-अग्नि से तपाता हूं, इसे शान्ति-जल से सींचो। हे उपदेशको! इसे ज्ञानाग्नि से पकाओ, परिपक्व होकर यह वहाँ जाये जहाँ सुकर्मियों का लोक है। ५

३३ यदि तू तपस्वी नहीं तो यहाँ से आगे बढ़, तपश्चर्या से मोक्ष पा, विद्वान् से ज्ञान पाकर इस ज्योतिष्मान् लोक (मोक्ष) को जीत। ६

३४ जो ज्ञानी है, इसे ज्योति भी कहते हैं, इसे जीवन में ब्रह्म के लिए देय बताते हैं, इस लोक में श्रद्धालु द्वारा समर्पित जीव सब अज्ञान दूर करता है। ७

३५ पाँच इन्द्रिय-भोग वाला जीव तीन ज्योतियों (आत्मा-मन-इन्द्रिय की, सूर्य-अग्नि-विद्युत् की, योग ३.५४ के अनुसार दिव्य-प्रतिभा-विवेकज ज्ञान) की ओर आगे बढ़ता हुआ ५ (प्राणों) से ५ प्रकार से पराक्रम करे। हे जीव! तू याज्ञिक सुकर्मियोंके मध्य जा और मोक्ष में विश्राम कर। ८

२४३६ हे अज ! वहाँ जा जहाँ पुण्यकर्मियों का स्थान है, छिपे बाघ के समान हृष्ट होकर संकट पार कर। ५ शक्तियों सेयुक्त आत्मा समर्पित होकर दाता को आनन्द से तृप्त करता है। ९

३७ जीव स्वयं समर्पित को ३ (आत्मिक-दैविक-भौतिक) सुखयुक्त, ३ ज्योतियुक्त, ३ आधार (धर्म-अर्थ-काम) वाले स्वर्ग मोक्ष में धारण करता है। ५ शक्ति-युक्त, ब्रह्म के लिए समर्पित जीव एक यथेच्छ दुहाने वाली, विश्व को रूप देने वाली गौ के समान है। १०

३८ हे प्राणो ! यह जीव तुम्हारी तीसरी (मन-इन्द्रिय-अतिरिक्त) ज्योति है जो ब्रह्म के लिए दी जाती है। इस लोक में श्रद्धा-समर्पित जीव सब अज्ञान दूर करता है। ११

३९ याज्ञिकों-सुकर्मियों का लोक चाहता हुआ योगी अपनी पञ्चभोगी आत्मा को ब्रह्म के लिए देता है। वह व्याप्ति वाले लोक को जीते; ब्रह्म-स्वीकृत वह हमारे लिए कल्याणकारी हो। १२

४० जीव मेधावी ईश्वर की प्रकाश-शक्ति से प्रकाशित-मेधावी-विद्वान् होता है। अतः विद्वज्जन इष्ट-पूर्त-अभिपूर्त (सत्यभाषणादि)-स्वाहाकार यज्ञ को ऋत्वनुसार करें। १३

४१ वह दक्षिणा, घर-बुना वस्त्र-सोना दे, उससे वे लोक पाता है जो द्यौ और पृथिवी के हैं। १४

४२ हे जीव ! ये सोम की दिव्य-स्नेहयुक्त-मधुवर्षक धारणाएँ तुझे मिलें। तू मोक्ष में ७ रश्मिवाले सूर्य के ऊपर पृथिवी और द्यौ का स्तम्भन कर। १५

४३ हे जीव! तू अजन्मा-गतिशील-सुखी है, तुझसे ज्ञानी पवित्र ईश्वर को जानते हैं; मैं भी जानूँ। १६

४४ हे ज्ञानी ! तू जिस कर्म से हजारों धन और सब त्याग वहन करता है उसी से हमें इस यज्ञ तक देवों-विद्वानों में सुख पाने के लिए ले जा। १७

४५ योग-पक्व जीव दुःख हटाता हुआ सुखमय लोक में रहता है अतः हम सूर्य वाले लोक जीतें। १८

४६ हे ईश्वर ! जिस आत्मा को तू ब्रह्मज्ञ और साधारण मनुष्यों में रखता है उसके प्राणों की जो शक्तियाँ हैं उनसे हमें सुकर्मी के लोक (मोक्ष) और प्राणों के पाने में योग्य जान। १९

४७ अज (मुक्त आत्मा) आगे सृष्टि के आरम्भ में विक्रम करता है। उसकी वह पृथिवी छाती, द्यौ पीठ, अन्तरिक्ष मध्य भाग, दिशाएँ बगलें, दो समुद्र (आकाश-भूमि के) कोखें होती हैं। २०

४८ उसके सत्य-ऋत दो चक्षु, सब सत्य-श्रद्धा प्राण, प्रकृति शिर होते हैं। वह मुक्तात्मा अपरिमित-पूज्य हो जाता है। २१

४९ जो दक्षिणा को ज्योतिवाली आत्मा को समर्पित करता है वह अनन्त ईश्वर-मोक्ष को पाता है। २२

५० रोग उसकी हड्डी न तोड़े, न मज्जा पिये। यह परमात्मा को पाकर सर्वत्र प्रवेश करे। २३

५१ मुक्त इसी रूप को उससे मिलाता है, वह उस समर्पक को अन्न-तेज-बल देता है। २४

५२ आत्म-समर्पक को ५ सुवर्णाभूषण, नये वस्त्र, गौएँ-भूमियाँ (५ कोष-प्राण-श्रेष्ठ ज्ञानेन्द्रियाँ) कामना-पूरक होती हैं। २५

५३ जो आत्मा को परमात्मा के लिए देता है उसे विशाल सुवर्ण, ५ ज्योतिष्मान् इन्द्रियाँ और कोष कवच के समान रक्षक वस्त्र हो जाते हैं, वह सुखमय लोक पाता है। २६

५४ जो स्त्री पूर्व-पति छोड़कर अन्य दूसरे को पाती है तो दोनों आत्मार्पण से वियुक्त नहीं होते। २७

५५ दूसरा पति पुनर्विवाहिता के साथ समान-लोक होता है यदि आत्मा को ब्रह्मार्पण करता है। २८

५६ जो सवत्सा-गौ-बैल-तकिया-वस्त्र-सोना (क्रमशः मन-सहित वाणी-प्राण-अन्न-शरीर-आत्मा) दान करते हैं वे उत्तम द्यौ लोक (स्तुति) को पाते हैं। २९

५७ मैं पिता-पुत्र-पौत्र-पितामह-पत्नी-जन्मदात्री माता, जो प्रिय हैं, उन्हें पास बुलाया करूँ। ३०

[आगे २४५८-२४६ ३तक, सूक्त के ३१-३६ तक; ६ मन्त्रों में ६ ऋतुओं(नैदाघ-कुर्वन्-संयत्-पिन्वत्-उद्यत्-अभिभू) का वर्णन है जो क्रमशः ग्रीष्म-वर्षा-शरद्-हेमन्त-शिशिर-वसन्त हैं, जो ज्ञान आवश्यक है। ये नाम सभी वैदिकों के लिए स्मरणीय हैं। क्योंकि सृष्टि-प्रारम्भ मेष राशि की सबसे पहले आयी गर्मी से हुआ, अतः वेद में प्रायः सर्वत्र ऋतु-क्रम नैदाघ से आरम्भ किया है।

इन मन्त्रों का अन्तिम अंश नामतं से ददाति (नाम से देता है) तक केवल एक बार पहले मन्त्र में ही लिखा है, शेष ५ में भी वैसा ही समझना चाहिए।]

२४५८ जो वस्तुतः नैदाघ नामक ग्रीष्म ऋतु को जानता है, वह पञ्चेन्द्रिय अज जीवात्मा वस्तुतः नैदाघ नाम के समान है; यह अप्रिय शत्रु(काम-क्रोधादि)की श्री(शोभा-सम्पत्ति) को जला डालता है और आत्मिक-शक्ति-युक्त हो जाता है जो आत्मा को दान की ज्योति वाले ब्रह्म को देता है। ३१

५९ जो वस्तुतः कुर्वन् (वर्षा) नामक ऋतु को जानता है वह अप्रिय शत्रु की बढ़ती-करती ही श्री को ले लेता है। यह कुर्वन् नाम ... देता है। ३२

६० जो वस्तुतः संयत् नामक (शरद्) ऋतु को जानता है वह अप्रिय शत्रु की एकत्रित-एकत्रित ही श्री को ले लेता है। वह संयत् नाम... देता है। ३३

६१ जो वस्तुतः पिन्वत् नाम(हेमन्त)जानता है, शत्रु की पोषक श्री लेता है; यह पिन्वत् नाम...देता है। ३४

६२ जो वस्तुतः उद्यत् नाम (शिशिर) जानता है,वह शत्रु की उदित श्री लेताहै,यह उद्यत् नाम ...देता है। ३५

६३ जो वस्तुतः अभिभू नाम (वसन्त)जानता है वह शत्रु की बढ़ती श्री लेताहै,यह अभिभू नाम...देता है। ३६

६४ जीव और पंचेन्द्रिय-प्राण पक्के करो,अन्तर्दिशा-सहित सब दिशाएँ तेरे इस जीव को स्वीकार करें। ३७

२४६५ वे वे दिशाएँ तेरे लिए तेरे इस जीव की रक्षा करें, उनके जनों के लिए घी-हवि-ज्ञान देता हूं। ३८

सूक्त ६। अतिथि-अतिथिपति। अतिथि-यज्ञ की सोमयाग से तुलना

पर्याय १, १७ मन्त्र

२४६६ यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं पर्रूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ॥ १

६७ सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥ २

६८ यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रति पश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥ ३

६९ यदभि वदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्रणयति ॥ ४

७० या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥ ५

७१ यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥ ६

७२ यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥ ७

७३ यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥ ८

७४ यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्धे ॥ ९

७५ यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥ १०

७६ यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥ ११

७७ यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ ॥ १२

७८ यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति ॥ १३

२४७९ ये व्रीहयो यवा निरूप्यन्तेऽंशय एव ते । १४

८० यान्युलूखल मुसलानि ग्रावाण एव ते । १५

८१ शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः । १६

८२ स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशा कुम्भ्यो वायव्यानि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् । १७

सूक्त ६ का पर्याय २ । १३ मन्त्र

८३ यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूय३ इद३मिति ।१ । १८

८४ यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते । २ । १९

८५ उप हरति हवींष्यासादयति । ३ । २०

८६ तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति । ४ । २१

८७ स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण । ५ । २२

८८ एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकङ्गमयन्ति यदतिथयः । ६ । २३

८९ स य एवं विद्वान् न द्विषन्नश्नीयान् न द्विषतो ऽन्नमश्नीयान् न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य । ७ । २४

९० सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नश्नन्ति । ८ । २५

९१ सर्वो वाएषो अजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति । ९ । २६

९२ सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो वितताध्वर आहृतयज्ञक्रतुर्य उप हरति १० । २७

९३ प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उप हरति । ११ । २८

९४ प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननु विक्रमते य उप हरति । १२ । २९

९५ योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन्पचन्ति स दक्षिणाग्निः ।१३। ३०

पर्याय ३ । ९ मन्त्र ।

९६ इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति । १ । ३१

९७ पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति [,, पूर्ववत्] । २ । ३२

९८ ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति [,, ,,] । ३ । ३३

९९ प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहा० [पूर्ववत्] ॥ ४ । ३४

२५०० कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहा० ,, ॥ ५ । ३५

२५०१ श्रियं च वा एष संविदं च गृहा० ,, ॥ ६ । ३६

२ एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस् तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ॥ ७ । ३७

३ अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥८ ।३८

४ एतद्वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयाद् ॥९ । ३९

सूक्त ६ का पर्याय ४ । मन्त्र १०

५ स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति ॥ १ । ४०

२५०६ यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनावरुन्द्धे ॥ २ । ४१

७-८ स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति ।३।४२। यावदतिरात्रेणेष्ट्वा० (पूर्ववत्)४ ।४३

९-१०. स " मधु " ।५।४४॥ " सत्त्रसद्येन " " ६।४५

११-१२.स " मांस " ७।४६ " द्वादशाहेन " " ८।४७

१३-१४ स " उदक ९।४८। प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ १० । ४९

पर्याय ५

१५ तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति ॥ १ । ५०

१६.बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वेदेवा निधनम् ॥ २ । ५१

१७ निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥ ३ । ५२

१८ तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति सङ्गवः प्र स्तौति । ४ । ५३

१९.मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रतिहरत्यस्तं यन्निधनम् । निधनं० (शेष १७ के समान) ५ ।५४

२० तस्मा अभ्रो भवन् हिङ्कृणोति स्तनयन् प्रस्तौति ॥ ६ । ५५

२१ विद्योतमानः प्रतिहरति वर्षन्नुद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम् । (शेष १७के समान) ७।५६

२२ अतिथीन् प्रतिपश्यति हिङ्कृणोत्यभि वदति प्रस्तौत्युदकं याचत्युद्गायति । ८ । ५७

२३-२४ उपहरति प्रतिहरत्युच्छिष्टं निधनम् ।९।५८। निधनं० (शेष १७ के समान) १०।५९

सूक्त ६ का पर्याय १

२४६६-६७ जो अतिथि को प्रत्यक्ष ब्रह्म जानते कि जिसके अङ्ग यज्ञ के साधन, मस्तिष्क ऋचाएँ हैं जिसके लाम साम हैं, हृदय यजुर्वेद कहा जाता है, कुशासन ही हवि है । १-२

६८ जब अतिथि-पालक गृहस्थ अतिथियों को आदर देखता है तब मानो यज्ञ-शाला को देखता है । ३

६९ जब अभिवादन करता; जल मगवाता है तब मानो दीक्षा लेता है, यज्ञ के लिए जल लेता है । ४

७० जो ही यज्ञ में जल लाये जाते हैं वे ही यहाँ हैं । ५

७१ जो तृप्ति-कारक आहार लाते हैं वह मानो सोमयाग में (दुग्धार्थ) बाँधा अग्नि-सोम-युक्त पशु है । ६

७२ जो निवास के लिए स्थान बनाते हैं मानो याग के सदन-वस्तु-भण्डार बनाते हैं । ७

७३ जो बिछौना बिछाते हैं मानो यज्ञ के कुश बिछाना है । ८

७४ जो अतिथि के लिए शय्या पर दरी-चादर-कालीन लाते हैं उनसे मानो स्वर्गलोक ही रोका । ९

७५ जो तकिया-मसनद लाते हैं वे मानो यज्ञ की परिधियाँ (घेरने की बड़ी समिधाएँ) हैं । १०

७६ जो अंजन-मालिश का तेल लाते हैं वह मानो यज्ञ का घी ही है । ११

७७ जो भोजन से पहले का खाद्य (नाश्ता) लाते हैं वह मानो सोम-याग के दो पुरोडाश ही हैं । १२

७८ जो भोजन बनाने वाले को बुलाते हैं मानो यज्ञ-हवि बनाने वाले को ही बुलाते हैं । १३

७९ जो धान-जौ निकाल कर लाये जाते हैं वे सोम के अंशु (अंकुर) ही हैं । १४

८० जो ऊखल-मूसल हैं वे मानो सोम कूटने के पत्थर सिल-बट्टे हैं । १५

२४८१ सूप सोम का पवित्र (छन्ना), भूसी सोम की छूँछ, पानी वसतीवरी आपः है। १६

८२ कड़छी यज्ञ की चमची, पकते चावल चलाना सोम का मिलाना घल्लियाँ द्रोण-कलश, बरतन याग के वायव्य पात्र, यह भूमि याग की काली मृगछाला है। १७

सूक्त तीन का पर्याय २। १३ मन्त्र

८३ जब अतिथिपति आहार की वस्तुएँ देखता है कि 'यह और, यह भी' तो वह मानो यजमान-ब्राह्मण का कार्य करता है। १। १८

८४ जब कहता है— और ला, तो यह उससे प्राण को ही बढ़ाता है। २। १९

८५ अन्नादि लाता है मानो हवियाँ पहुंचाता है। ३।२०

८६ अतिथि उनके पास रक्खे भोजनों की अपने में मानो आहुति देता है— ४। २१

८७ हाथ रूपी स्रुचा से, प्राण-यूप में; सुड़कने की ध्वनि रूपी स्वाहा-वषट्कार से। ५। २२

८८-८९ यही प्रिय-अप्रिय अतिथि-ऋत्विज स्वर्गलोक पहुंचाते हैं। जो ऐसा जानता है वह न द्वेष करता हुआ; न द्वेष करने वाले का, न आलोचित का, न आलोचक का खाये। ६-७। २३-२४

९०-९१ निश्चय ये सब निष्पाप होते जिनका अन्न अतिथि खाते, वे पापी जिनका नहीं खाते। ८-९ २५-२६

९२-९४ जो अन्नोपहार देता है वह सदा सिल-बट्टा-युक्त, गीले छज्ज वाला, यज्ञ-विस्तारक; यज्ञ-क्रतु को लिये हुए रहता है इसका प्राजापत्य यज्ञ फैला रहता है, ईश्वर के विक्रमानुकूल चलता है। १०-१२।२७-२९

९५ जो अतिथियों की ज्ञानाग्नि है वह आहवनीय, जो घर में चलता है वह गार्हपत्य, और जिसमें पकाते-पचाते हैं वह सोमयाग की दक्षिणाग्नि है। (तेरह। तीस)

पर्याय तीन। ९ मन्त्र

२४९६-२५०१ जो अतिथि से पहले खाता है वह घरों के इष्ट-पूर्त-दूध-रस-बल-वृद्धि-सन्तान-पशु-कीर्ति-यश-श्री-सम्यक् ज्ञान को खा जाता है। १-६। ३१-छत्तीस

१५०२-४ वास्तव में यह अतिथि वेदज्ञ है अतः उससे पहले न खाये। अतिथि के खा चुकने पर खाये। यह व्रत यज्ञकी सम्पूर्णता-अविच्छेद के लिए है। यही स्वादिष्ठ जो गौ-भूमि-सम्बन्धी दूध या मांस (मन का रुचिकर पनीर-खोया-फल का गूदा) है वही अतिथि से पहले न खाये। ७-९।३७-३९

पर्याय ४ मन्त्र १०

५-१४ वह जो ऐसा जानता हुआ अतिथि के लिए नीचे अंकित पदार्थ डालकर भोजन देता है आगे लिखे सुसमृद्ध यज्ञ करने का फल पाता है

दूध- अग्निष्टोम [वसन्त का सोमयाग जिसमें अग्नि के स्तोम ऋ० ६.४८.१, साम ३५ का गान होता है]

पिघला घी डालने से— अतिरात्र नामक यज्ञ का फल।

मधु डालने से- सत्रसद्य (१३ दिन से लेकर १००० वर्ष तक के) यज्ञ का फल।

मन को रुचिकर पनीर-खोया-फलों के गूदे के डालने से- द्वादशाह (१२ दिन के यज्ञ) का फल।

जल भेंट करने से सन्तानों के उत्पादन के लिए प्रतिष्ठा को पाता है और सन्तानों तथा प्रजाओं का प्यारा होता है। १-१०। ४०-४९

पर्याय ५। मन्त्र १०

२५१५-२५१७ जो ऐसा जानता है उसके लिए उषा हिं (आरम्भ) करती है, सविता प्रस्ताव करता है, बृहस्पति ऊर्जा से उद्गान करता है, त्वष्टा पुष्टि के साथ प्रतिहार करता है, विश्वेदेवाः निधन (सम्पूर्णता) करते हैं, वह सम्पत्ति-प्रजा-पशुओं का निधि हो जाता है। १-३। ५०-५२

२५१८-२४ वह अतिथिपति सर्पत्ति-प्रजा-पशुओं का निधि हो जाता है । उसके लिए—

१ हिंकार	२ प्रस्ताव	३ उद्गान (उद्गीथ)	४ प्रतिहार	५ निधन
उदय होता सूर्य	सङ्गव (प्रभात)	दोपहर का सूर्य	सायं सूर्य	अस्त होता सूर्य
उत्पन्न मेघ	गरजता मेघ	बरसता मेघ	बिजलीचमकाता मेघ	ऊपर चढ़ा मेघ
अतिथि-दर्शन	उनको अभिवादन	उनके लिए जल मगाना	उन्हें जलादि देना	उच्छिष्ट बचा

४-१० । ५३-५९

सूक्त ६ का पर्याय ६ मन्त्र

२५२५ **यत्क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् । १ । ६०**

२६ **यत्प्रति शृणोति प्रत्या श्रावयत्येव तत् ॥ २ । ६१**

२७ **यत्परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते । ३ । ६२**

२८ **तेषां न कश्चनाहोता । ४ । ६३**

२९ **यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति । ५।६४**

३० **यत्संभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत् । ६ । ६५**

३१ **स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यत्पृथिव्यां विश्वरूपम् । ७ । ६६**

३२ **स उपहूतो ऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस् तस्मिन् यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् ॥ ८ । ६७**

३३ **स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद्दिवि विश्वरूपम् ॥ ९ । ६८**

३४ **स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद्देवेषु विश्वरूपम् ॥ १० । ६९**

३५ **स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यल्लोकेषु विश्वरूपम् । ११ । ७०**

३६ **स उपहूत उपहूतः । १२ । ७१**

३७ **आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् । १३ । ७२**

३८ **ज्योतिष्मतो लोकान् जयति य एवं वेद । १४ । ७३**

२५२५—अतिथि यज्ञ में क्षत्ता (भोजन निर्माता) को बुलाना है वह सोमयाग का अध्वर्यु-कर्म में 'आश्रवण' है । १ । ६० ।

२६-२८ इस क्षत्ता का जो उत्तर सुना जाता है वह सोमयाग में अध्वर्यु-काण्ड में 'प्रत्याश्रवण' है । जब भोजन परोसने वाले, बरतन हाथ में लिये सेवक पहले और पीछे आ पहुंचते हैं वे मानों सोमयाग के चमसाध्वर्यु ही हैं । उनमें से कोई भी आहुति न देने वाला नहीं होता । २-४ । ६१-६३ ।

२९—३० जब गृहस्थ अतिथियों को भोजन कराके अपने घर जाता है वह मानो सोमयाग का 'अवभृथ स्नान है । जो अतिथियों को धन भेंट किया जाता है वह मानो सोमयाग में दक्षिणा है । और अतिथि की विदाई के लिये उसके साथ कुछ दूर तक जाना सोमयाग का उदवसान (उदयनीय इष्टि) करना है । ५-६ । ६४-६५ ।

२५३१-३५ अतिथि के समान वह अतिथि सेवक भी निमन्त्रित किया जाता है । निमन्त्रित होकर पृथ्वी पर उन नाना प्रकार के पदार्थों का भोग करता है वह आदर से बुलाया गया अतिथि सेवक निमन्त्रित अन्तरिक्ष में (विमान यात्रा आदि) नाना प्रकार के भोगों का भोग करता है । द्यौ लोक में

बुलाया जाकर नाना प्रकार के पदार्थ सेवन करता है। वह विद्वानों में बुलाया गया विद्या के नाना प्रकार के उपदेश रूपी भोगों को प्राप्त करता है। सर्व साधारण जनों में निमन्त्रित होकर वह उन लोगों के नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों को भोग करता है। ७-११। ६६-७०।

३६-३८ निमन्त्रित अतिथि के समान अतिथि-सेवक भी निमन्त्रित किया जाता है। वह इस लोक (में अच्छे भोगों) को प्राप्त करता है और परलोक में भी जो इस प्रकार से जानता है वह ज्योतिष्मान् विद्वानों के हृदयों पर भी विजय प्राप्त करता है। १२-१४, ७१-७३।

इति तृतीय अनुवाकः

अथर्व काण्ड९ प्रपाठक २१ अनुवाक ४ सूक्त७ से ८तक

विषय ईश्वर-ब्रह्माण्डादि-अलंकारादि-रोगादि-निवारणादि पदार्थविद्या (महर्षि दयानन्द)

सूक्त ७ मन्त्र २६। विश्व-गौ का रूपक। शरीरविज्ञान

२५३९ प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृंगे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम्। १
४० सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः। २
४१ विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः। ३
४२ विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः। ४
४३ श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः। ५
४४ देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः। ६
४५ मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू। ७
४६ इन्द्राणी भसद्वायुः पुच्छं पवमानो वालाः। ४७. ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू। ८-९
४८ धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः। १०
४९ चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत्। ५०. क्षुत्कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः। ११-१२
५१ क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः। ५२ नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः। १३-१४
५३. विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम्। १५
५४ देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम्। १६
५५ रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम्। ५६ अभ्रं पीबो मज्जा निधनम्। १७-१८
५७. अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना। ५८ इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः। १९-२०
५९ प्रत्यङ् तिष्ठन्धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता। ६० तृणानि प्राप्तः सोमो राजा। २१-२२
६१ मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः। २३
६२ युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम्। ६३ एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्। २४-२५
२५६४. उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद। २६

२५३६ (इस विश्व गौ के) प्रजापति (मेघ) और परमेष्ठी सूर्य दो सींग हैं। इन्द्र (विद्युत्) सिर है। अग्नि ललाट है। यम (वायु) कृकाट (जहाँ से प्राण का नियमन होता है) गले की घंटी है। १

४० सोमराजा (चन्द्रमा) मस्तिष्क है। द्यौ लोक ऊपर का जबड़ा, पृथ्वी नीचे के जबड़े के समान है।२

४१ बिजली जीभ है। प्राण दाँत हैं। रेवती नक्षत्र गरदन है। कृत्तिका नक्षत्र कन्धा है। घर्म (घाम) ग्रीष्म की उष्णता उस विश्व-गौ के ककुद् के पास का स्थान है।३

४२ संसार की वायु (साँस) प्राण के समान, सुखमय लोक कण्ठ, कृष्णद्र (गहरे हरे वृक्ष) बैठने का स्थान कूल्हा गोशाला है।४

४३ श्येन (सूर्य) उसकी छाती है। अन्तरिक्ष पेट है। बृहस्पति ग्रह उसका ककुद् (कोंहान कूबड़) बड़ी दिशाएँ रीढ़-सुषुम्णा की हड्डियां है। ५

४४ अग्नि आदि ५ देवों की अग्नायी इन्द्राणी अश्विनी रोदसी शक्तियां पीठ की हड्डियों के भाग हैं। उपसद उपग्रह चन्द्रमा (संग रहनेवाली तन्मात्रायें) वक्षस्थल की पसलियाँ हैं।६

४५ मित्र-वरुण सूर्यचन्द्रमा (हाइड्रोजन-आक्सीजन) दो कन्धे हैं। त्वष्टा और अर्यमा (शिल्पी इंजीनियर और न्यायाधीश) दो बाहों के ऊपरी कन्धे-कोहनी के बीच के भाग हैं। महादेव परमेश्वर शब्द और यज्ञ विश्वगौ की दो बाहें हैं।७

४६ बिजली की शक्ति और सूर्य की धूप गुह्य भाग है। वायु पूँछ है। शोधन वायु बाल हैं।८

४७ ब्राह्मण-क्षत्रिय दो कूल्हे (नितम्ब) हैं। बल और सेना दो जाँघे हैं।९

४८ धारक और प्रेरक (आकर्षण-विकर्षण) दो टखने या घुटने हैं। गन्धर्व (पुरुष वर्ग) जंघाएँ हैं। अप्सरा (स्त्रियां) खुरों के ऊपर पीछे की ओर लगी उँगलियाँ है। अदिति प्रकृति पृथ्वी खुर है।१०

यजुर्वेद अ. १८-३८-४३ में ६ गन्धर्व-अप्सरायें बतायी गयी हैं—

गन्धर्व	अप्सरा	गन्धर्व	अप्सरा	गन्धर्व	अप्सरा
१- अग्नि	ओषधि	२- सूर्य	मरीचि	३- चन्द्रमा	नक्षत्र
४- वाता	आपः	५- यज्ञ	दक्षिणा	६- मन	ऋक्-साम

४९ समस्त चेतना उस विश्वगौ का हृदय है। मेधा बुद्धि जिगर है। व्रत (खाद्यान्न) उसकी आंत है।११
(यकृत से मेधा-सम्पन्न रहता है।)

५० भूख उसकी कोख है. इरा अन्न उसकी बड़ी आँत है। पहाड़ छोटी आँत या मांसपेशियां हैं।१२

५१ क्रोध उसके गुर्दे हैं। मन्यु (तेज उग्रता) उसके अण्डकोश हैं। प्रजा प्रजनन अंग है।१३

५२ नदी जन्म-दात्री सूत्र-नाडी नाभि-नाल है। वर्षा के पति (बादल) उसके स्तन हैं। गर्जने वाला बादल उसका अयन दुग्धाशय है।१४

५३ सर्वत्र फैला आकाश, नक्षत्र या वायु सूर्यरश्मियाँ उसकी खाल है। औषधियाँ उसके लोम हैं और नक्षत्र उसका रूप है।१५

५४ उन्मत्त लोग गुदा हैं। मनुष्य मननशील आँतें है। भक्षक पुरुष पेट हैं।१६

५५ राक्षस उसके खून हैं। इतर जन (नीच पुरुष) उसके ऊबध्य (बिना पचा अन्न गोबर) के समान है।१७

५६ बादल उस विश्व-गौ का मोटा शरीर चर्बी है। धन सम्पत्ति उसकी मज्जा है।१८

५७ अग्नि उस विश्व गौ का बैठने का रूप है। अश्विनौ (दिनरात) या दो तारे उसका उठा हुआ रूप है।१९

५८ इन्द्र (उत्तरायण का सूर्य) उस विश्व गौ का पूर्व दिशा में ठहराना है। यम उसका दक्षिण में ठहरने वाला सूर्य है।२०

५६ पश्चिम में वह विश्वरूपी गौ 'धाता' है और उत्तर में सविता ।२१

६० सोम राजा (चन्द्रमा) घास चरते हुए बैल के समान है ।२२

६१ वर्ष का मित्रवत् होकर सूर्य सबको देखता है, लौटकर आया आनन्द रूप है ।२३

६२ योग में ध्यान किये जाने पर वह विश्वेदेवों का समष्टि रूप है। समाधि (योग) युक्त गाड़ी में जुता हुआ अनडवान् होकर वह प्रजापति है। विशेष मुक्त प्रलयकालीन होकर सूर्यरूप है ।२४

६३ यह ही विश्व का रूप, सर्वरूप और गौ (गाय या बैल) का रूप है ।२५

६४ जो इस प्रकार जान लेता है उसको विश्वरूप और सर्वरूप के पशु प्राप्त हो जाते हैं। २५

सूक्त ८ । मन्त्र २२ । वैद्य

२५६५.शीर्षक्तिं शीर्षामयङ्कर्णशूलं विलोहितम् । सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निमन्त्रयामहे ॥ १

६६ कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् । सर्वं० [पूर्ववत्] ॥ २

६७ यस्य हेतोः प्र च्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः । सर्वं० ,, ॥ ३

६८ यः कृणोति प्रमोतमन्धङ्कृणोति पूरुषम् । सर्वं० ,, ॥ ४

६९ अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम् । सर्वं० ,, ॥ ५

७० यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् । तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ६

७१ य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके । यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहि० ,, ॥ ७

७२ यदि कामादपकामाद् धृदयाज्जायते परि । हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहि० ,, ॥ ८

७३ हरिमाणं ते ऽङ्गेभ्यो ऽप्वामन्तरोदरात् । यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहि० ,, ॥ ९

७४ आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥१०

७५ बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात् । यक्ष्माणां० [पूर्ववत्] ॥ ११

७६ उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि ।० ,, ॥ १२

७७ याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः । अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥१३

७८ या हृदयमुपसर्पन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः ।० [पूर्ववत्] ॥ १४

७९ याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनु निक्षन्ति पृष्टीः ।० ,, ॥ १५

८० यास् तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते । ० ,, ॥ १६

८१ या गुदा अनु सर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।० ,, ॥ १७

८२ या मज्ज्ञो निर्दहन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।० ,, ॥ १८

८३ ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव । यक्ष्माणां० (शेष १० मन्त्रवत्) ॥१९

८४ विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः । यक्ष्माणां० ,, ॥ २०

८५ पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः । अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ॥२१

२५८६ सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥ २२ *ॐ

सूक्त ८-१ रोगों का निवारण

२५६५ सिर में व्यापक सिर का दर्द आदि रोग, कान का दर्द, पीलिया और रक्त-रहित होना (जान्डिस और अनीमिया)—तेरे सब सिर के रोग को हम बाहर करदें । १

६६ तेरे कानों से, कान की भीतरी नाड़ियों से कान के दर्द को, विसर्प (हड़फूटन) को और सिर के पूरे रोग को हम बाहर करें । २

६७-६६ जिस कारण से कान और मुख से यक्ष्मा रोग बहता है जो पुरुष को गूँगा, बहरा और अन्धा कर देता है, अङ्गों में दर्द, अङ्गों में बुखार और सब शरीर में पीड़ा करने वाले सिर सम्बन्धी रोग को दूर करें । ३-५

७० जिसका भयानक स्वरूप पुरुष को कँपा देता है उस सब शरीर में चकत्ता पैदा करने वाले, साल भर या शरद् में होने वाले ज्वर को हम रोक दें । ६

७१ जो जाँघों तक बढ़ता है और गवीनी नामक नाड़ियों तक पहुंचता है उस यक्ष्मा रोग को तेरे भीतरी अंगों से हम बाहर निकालते हैं । ७

७२ यदि काम-दोष से या उससे भिन्न अन्य (क्रोध, द्वेष आदि) से हृदय के पास बलास (बलनाशक कफ रोग) हो जाये तो हम उसे हृदय से और अङ्गों (छाती, फेफड़ों) से बाहर निकाल दें । ८

७३ तेरी हरिमा (पीलिया, अनीमिया) को अङ्गों से, उदर रोग वायु गोला, जलोदर को उदर के अन्दर से, यक्ष्मारोग को धारण करनेवाली दशा को तेरे शरीरके अन्दर से हम बाहर निकालते है । ६

२५७४-२५७६ कफ रोग थूकने से बाहर और रोगकारी पदार्थ मूत्र होकर निकल जाये । तेरे पेट से कड़कड़ाने वाला और खाँसी लाने वाला मूत्र बाहर हो जाये । तेरे पेट फेफड़ों, नाभि और हृदय से सब यक्ष्मा रोगों का विष बाहर करूँ । १०-१२

२५७७-८२ जो पीड़ा-जनक रोग मात्रायें शरीर की ऊपरी सीमा सिर को विशेष रोगी बना देती हैं, जो हृदय की ओर जाती हैं उस पर आक्रमण करती हैं और हँसली की हड्डियों में फैलती हैं, जो दोनों पार्श्वों कोखों पर आक्रमण करती हैं और पीठ तथा पसलियों तक पहुँच जाती हैं, जो तिरछी होकर आक्रमण करती हैं, और छाती के अंगों तक घुस जाती हैं जो गुदाओं में पहुँचती हैं और आँतों को निष्क्रिय कर देती हैं, जो मज्जाओं (हड्डी के अन्दर के भागों) को सुखाती उनमें सन्ताप उत्पन्न करती हैं और पोरे-पोरे, जोड़-जोड़ में दर्द पैदा करती हैं वे सभी पीड़ायें और रोग-मात्रायें दोष-रहित होकर, बिना कष्ट दिये, शरीर के सब छिद्रों से, द्रव रूप होकर, बाहर निकल जायें । १३-१८

८३-८४ जो यक्ष्मा रोग के कीटाणु तुझे व्याकुल करते हुए मूर्छितकर देते हैं और तेरे अङ्गों में कँपकपी पैदा करते हैं, जो विसल्प श्वेतकुष्ठ विद्रध (सूजन, हृदय का फोड़ा) वातरोग (गठिया आदि) और अलजि (आँख के भीतरी दाने और रोहे आदि) हैं उन सब रोगों के विष को मैं तेरे शरीर से बाहर निकाल दूँ । १६-२०

८५-तेरे पैरों से, घुटनों से, कूल्हों (नितम्बों) से, जघन (गुह्य भाग के चारों ओर) से, रीढ़ से, गर्दन की नाड़ियों से और सिर से फैलने वाली पीड़ाओं और रोग को मैं दूर कर दूँ । २१

२५८६ तेरे सिरके कपालों और हृदय की जो विशेष व्याधि है वह ठीक और शान्त हो । उदय होता हुआ सूर्य अपनी किरणों से सिर के रोग को नष्ट करता है और अङ्गों की पीड़ा शान्त करता है । २२

इति चतुर्थो ऽनुवाकः

अनुवाक ५ सूक्त ८ से १० तक

सूक्त ९-१० के २२ और २८=५० मन्त्र कुछ पाठ-भेद से ऋ १-१६४ में भी हैं ।

अनुवाक-विषय- ईश्वराद्याश्चर्याद्यध्यात्म विद्या, व्यापकेश्वरादि विद्या, जीवेश्वर मैत्रादि विद्या ईश्वरेण धारितादि पदार्थ विद्या । (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

ऋषि ब्रह्मा का अस्य वामीय सूक्त ६ । मन्त्र २२ । आत्मा, आदित्य

२५८७ अस्य वामस्य पलितस्य होतुस् तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १

८८ सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २

८९ इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त नामा ॥ ३

९० को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्वस्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥ ४

९१ इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुहते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ५

९२ पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कये ऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ६

९३ अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मनो न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ७

९४ माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८

९५ युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९

९६ तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥ १०

९७ पञ्चारे चक्रे परि वर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न च्छिद्यते सनाभिः ॥ ११

२५९८ पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥ १२

२५९९ द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ १३

२६०० सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १४

२६०१ स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान् न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥ १५

२ साकं जानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १६

३ अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥ १७

४ अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८

५ ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९

६ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २०

७ यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद् यः पितरं न वेद ॥ २१

२६०८ यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभि स्वरन्ति ।
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २२

२५९३ इस प्रशंसनीय सेवनीय पालक श्वेत, ग्रहण करने योग्य, गूढ़ों के आकर्षण करने वाले उन आदित्य का मध्यम (दूसरा अन्तरिक्ष स्थानीय) भरण (पालन) करने वाला, भागको हरण करने वाला खा जाने वाला भ्राता अशनि मेघ मध्यवर्ती विद्युत् और व्यापक वायु है। तीसरा भ्राता स्नेहमय आपः से स्पर्श किया गया, घी-लकड़ी से स्पर्श करने वाला, जलको पीठ पर लिये यह अग्नि है। यहाँ मैं फैलने वाली सात प्रकार की (सुषुम्ण, हरिकेश आदि और बैंगनी, नीला, काला, हरा, पीला, नारंगी और लाल रंग की) किरणों वाले, ७ लोक रूपी पुत्रों वाले, ७ मरुतों वाले, ७ तत्वों से उत्पन्न (अदिति—प्रकृति के) सप्तम पुत्र, सब विश्व और प्रजा के रक्षक स्वामी आदित्य को देखता हूं। १

[टिप्पणी-- आध्यात्मिक अर्थ में परमात्मा का दूसरा भाई जीवात्मा, तीसरा भाई प्रकृति (उससे बना संसार) है, जो ऋग्वेद १-१६४ में उचित है। विज्ञानकाण्ड अथर्ववेद के इस सूक्त में वैज्ञानिक सूर्य और यन्त्र परक अर्थ ही उचित है।]

२५८८. अकेले घूमने वाले, एक चक्र वाले, गतिशील रथ के समान सूर्य में अश्वों के समान ७ रंग की किरणें जुड़ती हैं। इस सूर्य के लिए ७ किरणें रसों को सब ओर से लाकर झुकाती हैं। प्राण रूपी ७ ऋषि इसकी स्तुति करते हैं, ७ रश्मियों के मेलसे बनी एक सफेद रश्मि सूर्यको धारण करती है।

ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त—इन तीन ऋतुओं वाले चक्र संवत्सर = आदित्य के चारों ओर की झिल्ली जरारहित है, वह दूसरे के आश्रित नहीं है। सूर्य स्वयं, ग्रहों और उपग्रहों ये तीनों परस्पर बँधे हैं। द्यौ, अन्तरिक्ष, पृथ्वी-इन तीनों को बाँधने वाला है। अर्वा = घोड़ों से रहित है। जहाँ ये सब पृथ्वी आदि प्रभूत प्राणी और भुवन (लोक) अश्रित रहते हैं। सत्त्व, रजस्, तमस् का प्रकृति चक्र है। वात, पित्त, कफका शरीरचक्र है। भूत, भविष्यत् वर्तमान का कालचक्र है। उत्पत्तिस्थिति प्रलयका जगतचक्र है।

महर्षि दयानन्द—एक चक्र वाले विमान आदि यान में ७ यन्त्र जुड़े हों जिसको 'सप्त' (फैलने वाला) नामक वायु और अग्नि रूपी अश्व चलाये। उसमें प्राणी यात्रा करें। वह घोड़ों से न चलकर विद्युत् वाष्प शक्ति आदि से चले ऐसे तीन बन्धनों वाले यान को शिल्पी जन बनायें। २

८६ इस आदित्य-संवत्सर-विराट् जगत् रूपी रथ में सात रश्मियाँ, ७ ग्रह और ७ काल अवयव (अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि और मुहूर्त) महत् तत्त्व, अहंकार और पाँच भूत (पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश) स्थित हो रहे हैं। ये ही ७ अश्व उसको धारण कर रहे हैं। ७ स्वयं गतिमान् शक्तियाँ, सूर्य प्रेरित रश्मियाँ, ७ छन्दों की वाणियाँ, ७ तन्मात्रायें बहिनों के समान, सब ओर से झुकती हैं। जिनमें रश्मियों के ७ स्वरूप, ७ तत्त्वों के स्वरूप स्थित है।

महर्षि दयानन्द ७ चक्रोंवाले महायन्त्र पर ७ संचालक अध्यक्ष नियत हों। ७ अश्व शक्तियाँ (हार्स पावर्स) अग्नि आदि के प्रेरक शक्तिमान् पदार्थ उसको संचालित करें। बहिनों के समान, स्वयं चालित ७ कला यन्त्र उस महायन्त्र को संचालित करें जिसमें गतियुक्तके यन्त्रों ७ स्वरूपया प्रकारके यन्त्र पृथक् पृथक् स्थापितकिये जायें। ७ इन्द्रियों, प्राणों, तत्त्वों, धातुओंकाबना यह शरीरभी वर्णनीय है। ३

२५९० पहले उत्पन्न होते हुए उसको किसने देखा ? (किसी ने नहीं)। हड्डियों से रहित जीवात्मा और प्रकृति जिस हड्डी वाले शरीर को और कठोर पहाड़ आदि युक्त जगत् को धारण कर रहे हैं। भूमि और उसका बना शरीर, वायु और प्राण, जल और खून तथा जीवात्मा कहाँ थे—यह पूछने को विद्वान् के पास कौन जाता है ? ४

२५९१ हे प्यारे, जो इस गतिशील, पक्षी के समान, वाम (सुन्दर आदित्य और आत्मा के जगत् और शरीर में) छिपे स्वरूप को जानता हो वह इस प्रश्न का उत्तर दे और वर्णन करे। जैसे गौएँ दूध दुहाती हैं और पेड़ जड़ से पानी को पीते हैं, वैसे ही इस रूप और प्रकाश को आदित्य को धारण किये हुएकिरणें सिरकेसमान द्यौऔर अन्तरिक्षसेजलको बरसाती है औरनीचे जल को ऊपर खींचकर बादल के रूप में रखती हैं। तथा इन्द्रियाँ इस आत्मा के स्वरूप (चेतना) को धारण करती हुई सिरसे ज्ञान-आनन्द-रसकोप्रदान करती हैं और अपने सामर्थ्यसेउत्तम ज्ञानप्राप्त करती है।५

२५९२ परिपक्व होने योग्य, न जानता हुआ, मैं मन से, देवों (विद्वानों) के इन स्थापित किये प्रश्नों को, प्राणों और इन्द्रियों के गुप्त तत्त्वों को और प्राकृतिक देवों—अग्नि आदि शक्तियों के शरीरको छिपे गूढ़ स्वरूपों को पूछता हूं। विद्वान्जन सत्य स्वरूप, व्यापक परमात्मा के आश्रय पर निवास स्थान, गतिशील संसार के बीच, देखने योग्य सन्तानके निमित्त, विस्तार के लिये, विस्तृत शरीर की ७धातुओं का विस्तार करते हैं, महत्, अहंकार, पंचभूत—इन ७ का और पाँच ज्ञानेन्द्रिय मन बुद्धि—इन ७ का विविध प्रकार से वर्णन करते हैं। जैसे वस्त्र बुने वाले ताना-बाना को फैलाते हैं। ६

२५६३ अविद्वान् अज्ञानी मैं ज्ञानवान् विद्वानों से ही उसी प्रकार जानने के लिए पूँछता हूं और पूँछू जैसे विद्वान्–विद्वान् से पूछता है। जिसने इन ६लोकों (पृथ्वी, जल, अग्नि, सूर्य, वायु, आकाश) को, ६ दिशाओं और ६ ऋतुओं को इकट्ठा किया, धारण किया वह अजन्मा, गतियुक्त के रूप में कौन सा एक तत्व है ? (वह एक तत्व परमात्मा है)। ७

६४ माता (निर्माण करने वाली प्रकृति, पृथ्वी और बच्चे की माँ) सत्य व्यवहार में पिता (परमात्मा सूर्य और बच्चे के पिता) के समीप आती है, और जल के अन्दर मग्न पृथ्वी सूर्य के बिना (अलग होकर) सूर्य के चारों ओर घूमती है। सृष्टि के पहले वह धारण गुण और विज्ञान के द्वारा उससे संगत हुई, मिली। वह बन्धन चाहती हुई गर्भ–धारक रस से युक्त होकर उत्पत्ति करती है। नमः (झुकाव, आकर्षण) रखने वाले अन्य लोक भी उसी समय पैदा होकर स्थान और नाम को प्राप्त करते हैं। प्रशंसित और अन्नवाले किसान और नमस्करणीय विद्वान्ही वेदवाणीके इस तत्व ज्ञानको पातेहैं।८

६५ माता (प्रकृति, पृथ्वी और शिशु की माँ) बलवान् समर्थ (क्रमशः परमेश्वर, सूर्य और बच्चे के पिता) से संयुक्त होती है। क्रमशः प्रकृति परमाणु ओं आपः में और सुरक्षित नाड़ियों के भीतर गर्भ ठहरता है। वत्स यह जगत्-जीवात्मा, वर्षा जल का प्रवाह और उत्पन्न बच्चा) शब्द करता है और गौ (प्रकृति, सूर्य और माता) को देखता (उसके सहारे पर रहता है।) तीनों लोकों में, विश्व को रूप देने वाले परमात्मा और सूर्य का प्रभाव है। सूर्य के तीन योग (बन्धन) हैं-१ वायु, २ मेघ (विद्युत) और ३ पृथ्वी से उनसे ही विश्व के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। ९

६६ अकेला सूत्रात्मा वायु तीन माताओं निर्माण करनेवाली तीन प्रकार की पृथ्वी को पालन करने वाले ३ (अग्नि, विद्युत,) सूर्य को सब ओर धारण करता हुआ ऊपर स्थित है। वे कभी शक्ति-हीन नहीं होते। उसके स्वरूप के विषय में सब जानने वाले विद्वान् गूढ़ वाणी में विचार करते हैं। १०

२५६७ पांच ऋतुओं (हेमन्त शिशिर को एक मानकर) और पांच प्रकार के वत्सरों (संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, उदावत्सर और अनुवत्सर) वाले जिस घूमते हुए आदित्य या संवत्सर चक्र में और पञ्चतत्त्व-स्वामी परमेश्वर में समस्त भुवन स्थित है। उसका बहुत भारवाला केन्द्र और अध्यक्ष परमेश्वर तप्त नहीं होता और वह सबको बाँधने वाला सनातन केन्द्र-शक्ति कभी नहीं टूटती। ११

२५९८ पांच कालावयव (क्षण, मुहूर्त्त, प्रहर, दिवस, पक्ष) ५ ऋतु रूपी चरण वाले पालन करने वाले, १२ आकृति (१२ मास) वाले संवत्सर को, प्रकाशमान सूर्य के पहले आधे भाग में, अथवा सूर्य को तेज के सर्वोत्तम स्थान में स्थित, वर्षा द्वारा जल बरसाने वाला बताते हैं। और ये दूसरे विद्वान् जीवन में आनन्द देने वाले, सात चक्र (रश्मि ग्रह या कालावयव या परिधि) वाले, सबको दिखाने वाले, ६ ऋतु वाले सूर्य या संवत्सर में जगत् को स्थित बताते हैं। १२

२५९९ हे अग्नि (सूर्य), तेरा यह १२ अरों (मासों) वाला सत्य का चक्र (संवत्सर) द्यो लोक के चारों ओर वर्तमान है वह हानि के लिये नहीं होता। इस संवत्सर में पुत्र के समान, उत्पन्न और दुःख से बचाने वाले ७२० जोड़े (दिन-रात) स्थिर हैं। १३

२६०० नेमि (केन्द्र) के साथ यह जीर्ण न होने वाला काल–चक्र नाना रूप से, विशेष प्रकार से-बार बार आता है। इस उत्कृष्ट रूप से व्यापक प्रकृति में दस (प्राण और पञ्चभूत- पञ्च तन्मात्राएँ) मिलकर उसे धारण करती हैं। सूर्य का प्रकट दिखायी देने वाला भाग लोकों के साथ आकर्षण द्वारा सब ओर से आवरण को प्राप्त होता है और उसी में सब भुवन स्थित है। १४

२६०१ मेरी सती स्त्रियाँ (शक्तियाँ) पुरु के समान (इन्द्रादि) हैं उन्हें आँख वाला देखता है, अन्धा नहीं जानता । जो पुत्रवत् जीव कवि है वही इसे जाने, जो जान लेता वह पिता का पिता होता है । १५

२ साथ पैदा हुओं में एक महत्तत्व, ६ इन्द्रियों के साथ ७ वाँ आत्मा है, ६ ऋतुओं के साथ ७ वाँ आदित्य है। ये नियमित ६ ऋषि देव ईश्वर से पैदा हैं और स्थान-स्थान पर इन के विशिष्ट कर्म चमकते रहते हैं। १६

३ संसार-वत्स को पर-अवर गमन-पैर से सँभालती हुई पृथिवी-गौ और उस्रा-वेद-वाणी उत्थित है। वह कहीं से आती हुई किसी आधे हिस्से में दूर जाती और कहीं उपगृह पैदा करती जो इस यूथ में पहले नहीं होता। १७

४ जो इस के नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तक इसके पिता (परमात्मा-सूर्य) को जानता है वह कौन अपने को कवि मानने वाला बता सकता है कि देव-मन कहाँ से पैदा हुआ। १८

५ कहते हैं कि जो प्रत्यक्ष या कार्य पास हैं वे अप्रत्यक्ष कारण रूप या दूर भी हैं। वे ही कार्य रूप में या पास भी हैं ऐसा कहा जाता है। इन्द्र और सोम (परमेश्वर और जीवात्मा) तथा सूर्य और वायु अथवा सोम तत्व तथा सूर्य और चन्द्र जिनको बनाते हैं वे (कर्म) लोकों को धुरे में जुते घोड़ों के समान धारण करते (आगे ले जाते) हैं। १६

६ एकत्र रहने वाले, मित्र, उत्तम ज्ञान से युक्त इन्द्र-सोम, ईश्वर और जीवात्मा पक्षी के समान, एक ही संसार रूपी वृक्ष का आलिङ्गन करते हैं। उन दोनों में एक (जीवात्मा) स्वादिष्ठ कर्मफल का भोग करता है और दूसरा (परमात्मा) भोग न करता हुआ सबको देखता [कर्मफल] देता है।

तथा दो प्रकार की सूर्य किरणें इस जगत् में हैं एक जीवन को खाती है और दूसरी न खाती हुई केवल प्रकाश करती है। २०

७ जिस जगत् रूपी वृक्ष पर मधुर कर्मफल भोगने वाले जीवात्मा और जल को ग्रहण करने वाली किरणें (पक्षी के समान) आश्रय लेते, उत्पन्न होते तथा उत्पन्न करते हैं उसका जो स्वादिष्ठ, श्रेष्ठ फल बताते हैं वह उन व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता है जो पिता (परमात्मा और सूर्य) को नहीं जानते और उससे लाभ नहीं उठाते। २१

२६०८ जहाँ जीवात्मा तथा किरण रूपी पक्षी अमृत (ज्ञान और जल) के भोग को अपने सामर्थ्य से प्राप्त करते और तप तथा प्रकाश करते हैं वह जगत् का रक्षक (परमात्मा और सूर्य) मुझे धैर्य देने वाला होकर यहाँ मुझ परिपक्व को प्राप्त हुआ है। २२

—❀—

सूक्त १० आत्मा ।

२६०९ यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत ।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस् ते अमृतत्वमानशुः ॥ १

१० गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २

११ जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायद् रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस् तिस्र आहुस् ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥ ३

१२ उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥ ४

१३ हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ५

१४ गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन् मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः । ६

१५ अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान् विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ ७

१६ अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ८

१७ विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ९

१८ य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश ॥ १०

१९ अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश् चरन्तम्
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ११

२० द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश् चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ १२

२१ पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ १३

२६२२ इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ १४

२६२३ न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ १५

२४ अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ १६

२५ सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस् तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ १७

२६ ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस् तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते ॥ १८

२७ ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत् ।
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १९

२८ सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ २०

२९ गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पंक्तिस्तस्याः समुद्रा अधि विक्षरन्ति॥२१

३० कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥ २२

३१ अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति ॥ २३

३२ विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु॥ २४

३३ शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५

३४ त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमन्यो अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६

३५ चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ २७

२६३६ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २८

म र्षि ने सन्धिकाल नहीं माना, इसे माननेवाले(यु. मी., इन्द्रदेवआदि)इसे महर्षि की भूल बताते हैं।
हम राजवीर शास्त्री, स्वा. ओमानन्द, आदित्यपालसिंह आदि) भूल नहीं मानते, क्योंकि—
१ ऋ आप्त थे; भूमिका, सत्यार्थ प्रकाश; मेला चाँदापुर में, मृत्युपर्यन्त ११ वर्ष तक यही माना-कहा।
२ सन्धिकाल केवल मयासुर(असीरियन ने ७स सूर्यसिद्धान्त में माना जो पौराणिक गप्पों से पूर्ण है।
३ सन्धि: प्रोक्तो जलप्लवः के अनुकूल पहली सन्धि के आदि में जल न होने से सन्धि हो ही नहीं सकती।
४ दिन-रातकी सन्धि तो होतीहै पर अलग काल नहीं वैसे यहां भी, काल लगनेका कोई उदाहरण नहीं।

अब तक बीता समय—

६ मन्वन्तर का समय १८४०३२०००० और ७ वें वैवस्वत मन्वन्तर की २७ चतुर्युगी ११६६४००००
वर्तमान २८ वीं चतुयुगी के सत्ययुग के १७२८०००, त्रेता के १२९६०००, द्वापर के ८६४०००
, कलियुग के ५०९१; सब जोड़कर १९६०८५३०९१ होगये,असामान्य ७ सन्धियोंके १२०९६००० मिलानेसे
१९७२९४९०९१ होते हैं जो महर्षि के विरुद्ध सार्वदेशिक सभा क्यों मानती है ? जब कि यह विषय
धर्मार्य सभा में विचारार्थ स्थगित है तो दो वर्षों से बैठक क्यों नहीं बुलाती ? विचाराधीन को सार्व-
देशिक पत्र पर क्यों छापती है? क्या न्यायालय में जाना पड़ेगा ? —वी० सरस्वती सदस्य धर्मार्य सभा

विश्ववेदपरिषद् की परीक्षाओं का पाठ्यक्रम(१९९१ई०से)

वेद, संस्कृत, संस्कार, दर्शन विषयों में चार-चार परीक्षाएँ विशारद, भूषण, रत्न, आचार्य हैं जिनका शुल्क क्रमश: १०), २०), ५०), १००) और प्रश्नपत्र १-२-३-४ होंगे। सभी इनको दें।

वेदविशारद- १.ऋग्वेद मण्डल१ या यजुर्वेद अ. १-३१-३२-३६-४० या साम ११४ मन्त्र या अथर्व.कांड १
२ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पहले ४ प्रकरण, ३ सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास, ४ पंचमहायज्ञ-विधि ५ संस्कारविधि सामान्य प्रकरण ६ आर्याभिविनय ७ संस्कृतवाक्यप्रबोध ८ वर्णोच्चारणशिक्षा

वेदभूषण १म पत्र- कोई एक वेद आधा अर्थ सहित; २य पत्र- भूमिका; संस्कारविधि, सत्यार्थप्रकाश
सन्धिविषय-नामिक-कारकीय-सामासिक, योग।

वेदरत्न १म पत्र- एक वेद पूरा अर्थ सहित, आख्यातिक-उणादिसूत्र।
२य पत्र- एक वेद के ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद्-श्रौत-गृह्य सूत्र।
तृतीय पत्र- निरुक्त-छन्द-अलंकार-मीमांसा प्रदीप- वैदिक ज्यौतिष शास्त्रम्।

वेदाचार्य पत्र १- कोई वेद आधा कण्ठस्थ सस्वर, प्रातिशाख्य। २य पत्र-उसके ब्राह्मणारण्यकोपनिषद्।
३य पत्र- निरुक्त-छन्द-ज्यौतिष-६ दर्शन। चतुर्थपत्र- शेष आधा वेद साथ। ५ म मौखिक।

संस्कार-पौरोहित्य-विशारद १ पत्र — संस्कार-विधि व्याख्या-सहित।

संस्कृत-साहित्य-विशारद १ पत्र- संस्कृत-वाक्य-प्रबोध-गीता-विदुरनीति-मूल रामायण; अनुवाद।

❀ आवेदन-पत्र ❀

नाम……………आयु…………पिता का नाम……………परीक्षा-नाम……………विषय…………

पता स्थान पत्रालय जनपद प्रदेश

हस्ताक्षर तिथि दिनांक

पृ. २४, वर्ष ९५ अङ्क ४ प्रथम वैशाख(माधव)२०४८ वेदज्योति अप्रैल ९१, न. ६९२१/६२ डाक लख२०६

....

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष -४-९१ को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

शतपथ, निरुक्त, अष्टाध्यायी, वेदार्थपारिजात-खण्डन
अथर्ववेद, सामवेद के ब्राह्मण

अनुवादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड१-२, २०), वेदार्थपारिजातखण्डन २०) [illegible] २०), [illegible] २०), [illegible] ३०) [illegible] १००) [illegible]।

—वीरेन्द्र सरस्वती, उपाध्यक्ष, ओ३मित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी ८१७ महानगर लखनऊ६

वैदिक दैनन्दिनी द्वितीय वैशाख २०४८ विक्रम

तिथि कृ१ २ ३ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु१ २ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० ११ १२ १३ १४ १५ पू

वार सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं

नक्षत्र स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र ध शत पूभ उ भ रे अ भ कृ मृ आ पुन पु श्ले म पू उफ ह चि स्वा वि

.२९ ३० म१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८

प्रेषक — मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ उ० प्र०, भारत, पिन २२६००

सेवा में क्रमांक

श्री लाइब्रेरियन

स्थान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

पत्रालय (हरिद्वार

पिन

जनपद

प्रदेश

ऋग्वेद　　　ओ३म्　　　यजुर्वेद

वर्ष १५
अंक ५
अथर्व वेद
खण्ड १८
१२
साम वेद
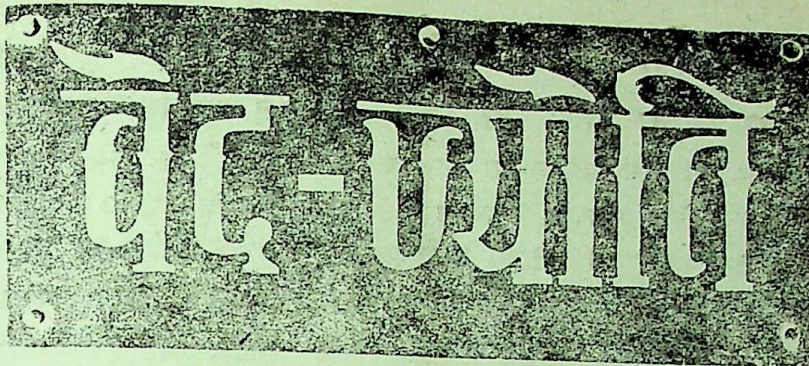
द्वितीय वैशाख २०४८
मई १९९१
अथर्ववेद

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९२, दयानन्दाब्द १६७
शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्
सहायक— विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१
दिल्लीकार्यालय— श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, बी६ हिल व्यू वसन्तविहार नयीदिल्ली५७, दूरभाष६०१४५२

नव वर्ष मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०९२ शुभ हो !

वेदर्षिः वेदाचार्य महामहोपाध्यायः

प० युधिष्ठिरः मीमांसकः

यशस्वी भूयात्

पतञ्जलि कृतं योग-दर्शन-शास्त्रम्

(गतांक से आगे)

१०. अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिः निद्रा । ११. अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ।

चौथी निद्रा अर्थात् जो वृत्ति अज्ञान-अविद्या के अन्धकार में फँसी हो उसका नाम निद्रा है । पाँचवीं स्मृति अर्थात् जिस व्यवहार अथवा वस्तु को प्रत्यक्ष देख लिया हो उसी का संस्कार ज्ञान में बना रहता और इस प्रकार की वृत्ति को स्मृति कहते हैं । इनके निरोध का उपाय—

१२ अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः । १३ तत्र स्थितौ यत्नो अभ्यासः ।

अभ्यास और वैराग्य से अर्थात् सब बुरे कार्यों और दोषों से अलग रहें । इन दोनों उपायों से पूर्वोक्त पाँच वृत्तियों को रोक कर इनको उपासना-योग में प्रवृत्त रखना निरोध है । इनमें स्थिति के लिए यत्न करना अभ्यास है ।

क्रमशः

सत्यार्थप्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमाङ्क ६७ । ऋषि- स्वयंभु ब्रह्म, देवता- परमात्मा, छन्द- त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत

वेनस् तत् पश्यन्निहितङ्गुहा सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ [य.३२-८]

वह बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक है । वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्यापक होकर सब को धारण कर रहा है । जो वह ईसाई-मुसलमान-पुराणियों के कथनानुसार विभू न होता तो इस सृष्टि का धारण कभी न कर सकता । क्योंकि बिना प्राप्ति के किसी का कोई धारण नहीं कर सकता ।

सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ८

महर्षि-भाष्य— हे मनुष्यो ! जिसमें सब जगत् एक स्थान के समान है उस चेतन ब्रह्म का एक बुद्धि वा गुप्त कारण में स्थित नित्य ईश्वर को पण्डित विद्वान् देखता है। उसमें यह सब जगत् प्रलय काल में लीन हो जाता है और सर्ग काल में विविध रूप में प्रकट होता है ।

वह व्यापक ईश्वर प्रकृति-जीव आदि में पट के ताने और बाने के समान व्यापक, उपास्य है ।

वेद का अनर्थ (२५)

वेद में पुरूरवा की कोई कहानी नहीं

वेदप्रदीप अप्रैल ९१ के अंक में स्वामी गङ्गेश्वरानन्द की वेदोपदेशचन्द्रिका के श्लोक ९३ के आधार पर वेद में राजा पुरूरवा की कथा बतायी है जो सत्य नहीं क्योंकि सर्गारम्भ में परमात्मा द्वारा दिये गये ज्ञान में परवर्ती मनुष्यों की कहानी हो ही नहीं सकती । यास्क ने निरुक्त में बताया है कि पुरूरवा गरजने वाला बादल और उर्वशी बिजली है जिसका वर्णन रूपक अलंकार से हुआ है । (क्रमशः)

प्रतिक्रिया

हम वेदज्योति के माध्यम से अथर्व वेद का भाष्य अति रुचि एवं लग्न के साथ पढ़ते हैं । आपका यह प्रशंसनीय कार्य आर्यसमाज के लिए गौरव-पूर्ण है आप द्वारा किया गया भाष्य इतना सरल है कि साधारण पढ़ा-लिखा आर्य भी भाष्य को समझ सकता है । कृपया आप इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए हमारा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करें । —इन्द्रसिंह आर्य, नजफगढ़ नयी दिल्ली । ६-४-९१

वेद में सब सत्य विद्याएँ (विज्ञान)

इन्द्र का आधिदैविक अर्थ विद्युत् है-

[४] इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥

[साम १५८८]ऋ. ८.३.६, अथर्व २०.११८.४ । वहाँ 'सुवानास' पाठ है ।

विद्युत् ने अपनी महिमा से द्यौ से पृथिवी तक शक्ति फैलायी है, उसने सूर्य को दीप्त किया, विद्युत् पर सब भुवन आश्रित हैं और उसके नियन्त्रण में जल और ऐश्वर्य हैं ।

इन्द्रविद्या के सबसे अधिक मन्त्र हैं, १०२८ सूक्तों में २७२ पूर्णतया और ५४ आंशिक रूप मे इन से सम्बद्ध हैं ।

परमात्मा के परिदीप्त तप (ताप हीट) से सृष्टि के आरम्भ में ऋत (गतियुक्त इलेक्ट्रोन) और सत्य (केन्द्रस्थ प्रोटोन) उत्पन्न होते हैं—

[५] ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । (१०.१९०.१)

इन दोनों की विविध मात्राओं से सृष्टि का निर्माण होता है ।

उस विद्युत् की लहरें आकाश में गति किया करती हैं--

[६] शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ (९.४१.३)

[७] यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितो ऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥ (१.४४.१२)

विद्युत् अग्नि से दीप्ति-प्रकाश, प्रकाश से शक्ति-गति, और उससे ध्वनि-तरङ्गों का निर्माण एवं संचालन होता है ।

[८] त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ य१५-३१

अर्थात् बिजली चित्र और शब्द का सबसे बड़ा वाहन है जिसे मनुष्य प्रजाओं में प्रसारित करते हैं ।

[९] यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन् मन्यसे रयिम् ।
तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ [यजु: १९-६४]

अर्थात् अग्नि-बिजली उस शब्द का वाहक है जो कोमल वाणियों से सुनने योग्य होजाता है ।

[१०] ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस् तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ (य १८.३८)

अर्थात् बिजली रूपी अग्नि गौ (वाणी) को धारण करने वाली है ।

यह शब्द तथा रूप का वाहक है—

[११] ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ (य१२-१११)

अर्थात् ऋत-युक्त अग्नि (बिजली) विश्व को दर्शन कराने वाली है । मनुष्य इसे सुख के लिये आगे रखते हैं ।

[१२] विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्ष ये उप द्यवि ष्ठ ।
येअग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥(य ३३.५३)

अर्थात् अन्तरिक्ष और द्यौ के सब विद्वान् मेरे इस शब्द को पास से सुनें ।

१३]या ते अग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा ।...रजःशया...हरिशया...स्वाहा ॥(य५.८)

अर्थात् बिजली को सुरक्षित रखने के लिए लोहा-चाँदी-सोना आदि धातुओं के यन्त्र बनें।

[१४] महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाप्रभूवरीः।मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥
(य ३२-३५)

बिजली के मेघ-समान वाणी के खींचने वाले यन्त्र से उत्पन्न वाणियां तके सूचियों(सूचना, सुई-सुई-समान गतियों) से समर्थ करें ।

उसी बिजली से ध्वन्युच्चोत्पादक यन्त्र का निर्माण होता है—

[१५] तस्यास्ते सत्यसदसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा ।
शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ (य ४-१८)

[१६] देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ।
(य ९.३०)

इन २ मन्त्रों में वाणी का विद्युद्यन्त्र वर्णित है । इसी प्रकार बिजली के दिव्य चक्षु य २५.२ में कहे हैं—

[१७] वातं प्राणेन ...विद्युतङ्कनीनकाभ्याम्...रश्मीन् स्तुपेन ॥

जैसे आँख की पुतली सूक्ष्म केशों की कुण्डलिनी से बनी है वैसे ही बिजली एरियल के सूक्ष्म तन्तुओं (क्वाइलों) से ग्रहण की जाती है । इस विद्या की पुष्टि यजुर्वेद ने की ।

इन्द्र के २ हरि बताये गये हैं जिन्हें पौराणिक जन घोड़े बताते हैं; किन्तु वास्तव में वे इन्द्र-बिजली के २ शक्ति-केन्द्र (पोटेन्शियल) धन-ऋण (पाजिटिव-निगेटिव) हैं जिनके सम्पर्क द्वारा बिजली प्रकट और कार्यकारी होती है ।(१८)युजा निन्द्र ते हरी । हे इन्द्र! मैं तेरे दोनों हरियों केन्द्रों को युक्त करूँ । (यजुर्वेद)

वेद में अग्नि (बिजली) की अर्चियाँ (तरगें) वयः कही गयी हैं क्योंकि वे पक्षी के समान गतिशील हैं —

[१९] अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ (१०-१४०-१)

पूर्वोक्त यजु १८-३८ में बिजली की तरंगों को 'अप्सरा' कहा है, वे आपः (आकाश और जल) में सरण (गति) करती हैं । उसकी पुष्टि वेद १-८८-१ ने की, जिसमें स्पष्ट रूप से बिजली के रथयान (इलेक्ट्रिक कार और जहाज) का वर्णन है —

[२०] आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥

यह अध्वर्यु पढ़ता है— समास्त्वाग्न ऋतवो वर्द्धयन्तु। (यजु २७.१) [हे अग्नि! तुझे वर्ष-ऋतुएँ बढ़ाएँ।] जब अग्नि ने विस्रस्त प्रजापति का समाधान किया तो कहा कि जो मेरी गिनी हुई सामिधेनियाँ हैं उनसे मुझको प्रदीप्त कर। २५

उसने इन को देखा— समास्त्वाग्न ऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या।

सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आभाहि प्रदिशश्चतस्रः॥ (य २७.१)

हे विद्वान्! जो वर्ष-ऋतुएँ-संवत्सर-मन्त्रद्रष्टा-सत्य हैं वे तुझको बढ़ायें, तू दिव्य प्रकाश (सूर्य) से (तत्समान) प्रकाशित हो, सब चारों दिशाओं को चमका। २६

वे (९) मन्त्र एक अग्नि की व्याख्याएँ हैं। इसी के प्रति इसीका संस्कार और ध्यान करे, इसे उत्पन्न करे। वे मन्त्र अग्नि ने देखे अतः आग्नेय, और प्रजापति से प्रदीप्त हुए अतः प्राजापत्य हैं। २७

१२ आप्री मन्त्र हैं। १२ मास संवत्सर हैं जो अग्नि है। जितनी वह और इसकी मात्रा है उतीसे इसे यह तृप्त-प्रसन्न करता है। २८

अथवा १२ अक्षर की जगती है, इसका ही यह सब जगत् है; यही अग्नि है, इसके लिए ही सब चयन होता है। जितनी वह और उसकी मात्रा है उतने से ही यह उसे तृप्त करता है। २९

अथवा १२ अक्षर की जगती ही सब छन्द है, वही प्रजापति-अग्नि है। जितनी वह या उसकी मात्रा है उतने से ही इसे प्रसन्न करता है। ३०

ये 'ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्ति' आदि हैं। जब अग्नि ने विस्रस्त प्रजापति को धारण किया तो कहा था कि ,जो मेरे सम्मत आप्री हों उनसे मुझे प्रसन्न करना। ३१

उसने इन्हें देखा— (यजु २७.११)।

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः। द्युमत्तमसुप्रतीकस्य सूनोः॥

उस प्रदीप्त, अत्यधिक वीर्यवान्, अच्छी सब ओर जाने वाली, पुत्रवत् उत्पन्न आग की समिधा ऊपर, और ज्वालाएँ दीप्त चमकती होती हैं। ३२

वे ये (१२) मन्त्र एक व्याख्या वाले ... (शेष कण्डिका २७ के समान)। प्रजापति के आप्रीणन से प्राजापत्य हैं। ३३

वे विषम पद वाले विषम अक्षर वाले छन्द हैं, उनसे उनके विषम अङ्गों को प्रसन्न करता है। ३४

वैश्वानर पुरोडाश पशु (के दूत) का होता है। सब अग्नियों को पाने के लिए वैश्वानर ही सब अग्नि है। ३५

अथवा वैश्वानर ऋतुएँ है। ये ही चितिया-अग्नियाँ संवत्सर हैं। १२ कपाल १२ मास हैं। याज्या अनुवाक्या अग्नि-रूपों और कामनाओं को पाने के लिए कामवती हैं। ३६

कई कहते हैं— इन पशु-सिरों को लेकर रखता है। ये दोनों प्रकार से पशु हैं। वे मनुष्य राक्षस अनाप्रीत हैं। ऐसा हो आषाढि सौश्रोमति के हुआ। जिसके ये रक्खे वह उससे शीघ्र मर गया। ३७

कुछ अमृतेष्टका बताते हुए सोने की ईंटें रखते हैं वे तो अनृतेष्टका हैं, पशु-सिर नहीं। ३८

कुछ मिट्टी की ही रखते हैं, कि वे पशु तो मर गये अब उनकी मिट्टी ही रह गयी। किन्तु ऐसा न करे। जो इनका रहस्य नहीं जानता उसके लिए ही ये मर गये। वह इन्हीं ५ पशुओं को पाये जितना उसका वश चले। उन्हें ही पहले प्रजापति ने, और अन्तिम श्यापर्ण सायकायन ने तथा उनके बीच वालों ने पाया। अब प्राजापत्य और वायव्य दो को ही पाते हैं। उन दो को ही ब्राह्मण बताता है। ३९

यह अध्याय २ में ब्राह्मण १, और प्रपाठक १ तथा कण्डिका ११० समाप्त।

शतपथ ब्राह्मण काण्ड ६, अध्याय २ (३७) ब्राह्मण २.

[प्राजापत्यादि पशु के अनुष्ठान का सम्प्रदाय]

[प्राजापत्यादि पशु के पाने का समय और उखा-सम्भरण-विधि]

(प्राजापत्य, वायव्य पशु के पाने का समय और उखा-सम्भरण-विधि)

चरक लोग प्राजापत्य को पाते हैं। प्रजापति चयन करके अग्नि हो गया अतः इसे पाकर अग्नि अन्त तक पहुँचता है। १

वह श्याम होता है, रोम श्वेत-काले होते हैं। यह जोड़ा मिथुन प्रजनन है, यही इसका प्राजापत्य रूप है। वह तूपर (सींग-रहित हिंसक) होता है जो प्रजापति है। २

उसकी २१ सामिधेनियाँ होती हैं। १२ मास, पंचतुएँ, तीन ये लोक और २१ वाँ वह आदित्य प्रजापति-अग्नि, वह जितनी है उतनी से इसे दीप्त करता है। ३

अथवा २१ पुरुष है, हाथ-पैरोंकी २० अङ्गुलियाँ, २१वाँ आत्मा-पुरुष-प्रजापति-अग्नि, वह०। ४

गायत्री-त्रिष्टप् दोनों को पढ़ता है, प्रयोजन बता दिया। हिरण्यगर्भ वाले मन्त्र के साथ घ्याघार को प्रतिमन्त्र आघारता है क्योंकि वह प्रजापति अग्नि है। १२ आप्री हैं, प्रयोजन बता दिया। पुरोडाश १२ कपालों का, १२ मास-संवत्सर-प्रजापति। याज्यानुवाक्या 'क' वाली, क प्रजापति है। ५

वायु नियुत्वान् श्वेत तूपर को पाता है। प्रजापति ने प्रजा रचकर देखा, उसका अत्यानन्द से रेतः गिरा, वह बकरा श्वेत तूपर लम्बुदी हुआ। रस ही रेतः है; जितना रस उतनी आत्मा। जो इसे पाता वह आग के अन्त तक पहुँचता है। श्वेत तूपर इसलिए कि रेतः वैसा होता है। वायु-नियुत्वान् के लिए होता है क्योंकि वे दोनों प्राण-उदान हैं जिनको ही वह इस में धारण कराता है। ६

विस्रस्त प्रजापति का देवों के द्वारा संस्कार से मध्य में निकला प्राण उससे इसमें घुस कर जैसे उस पशु में रक्खा था वैसे ही यह इसमें धारण कराता है। वायु तूपर के समान श्वेत है। ७

उसको १७ सामिधेनियाँ होती हैं, १७ वर्ष-प्रजापति-अग्नि है, १२ महीने और ५ ऋतुएँ। जितनी इसकी मात्रा है उतनी से इसे दीप्त करता है। ८

या १७ पुरुष-प्रजापति-अग्नि है, १० प्राण-४ अङ्ग-आत्मा-गरदन-सिर। जितनी०। ९

गायत्री-त्रिष्टुप् दोनोंको पढ़ता है। प्रतिमन्त्र के पीछे १२ आप्री और प्राजापत्य पशु (दूध)पुरोडाश, यहीं वह कामना मिली यह साहित्थि ने कहा था जिसे चरक प्राजापत्य यज्ञ में कहते हैं। १०

या वायव्य पशु और प्राजापत्य पुरोडाश हो तो अर्ध-अर्ध हो जाये; यदि दोनों एक के ही हों तो अर्ध ही पूर्ण हो अर्ध नहीं, दोनों होने पर प्रजापति इस सबका पूर्ण संस्कार करता है। ११

इससे विस्रस्त ... करता है। (शेष कण्डिका ५-७ के समान)। १२

घी का सम्मुख-मध्य-ऊपर होम कर इसके तीनों जगह के प्राण पुष्ट करता है। श्वेत-नियुत्वान् के रूप पाने के लिए शुक्लवती याज्यानुवाक्या हों। १३

कहते हैं कि पशु में घी श्वेत है उससे ही वो और नियुत्वती श्वेत ही जायेंगीं। १४

जिस पशु को लेता है उसमें सबका रूप है। तूपर लम्बुदी में पुरुष का, केसर (कन्धों के बालों) से अश्व का, द खुरों से गौ का, भेड़ के समान खुर होने से भेड़ का और अज तो है ही। इसके पाने से सब (५) मिल जाते हैं। यह अपने कर्म से पञ्चपशु प्राजापत्य नियुत्वातीय है। १५

उसे पौर्णमासी में ले। कुछ कहते हैं कि अमावास्या में ले जब चन्द्र उस रात यहाँ रहता है। १६

किन्तु नहीं, पौर्णमासी को ही ले वह चन्द्र पशु है जिसे देवों ने पौर्णमासी में ही पाया था। १७

संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः

१. गुरु-शिष्य-वार्तालाप-प्रकरणम्

भोः शिष्य ! उत्तिष्ठ, प्रातः कालो जातः। — हे शिष्य उठ, सबेरा हुआ।

उत्तिष्ठामि। — मैं उठता हूं।

अन्ये सर्वे विद्यार्थिनः उत्थिताः न वा ? — और सब विद्यार्थी उठे वा नहीं ?

अधुना तु न उत्थिताः खलु। — अभी तो नहीं उठे हैं निश्चय ही।

तान् सर्वान् अपि उत्थापय। — उन सब को भी उठा दे।

सर्वे उत्थापिताः। — सब उठा दिये।

सम्प्रति अस्माभिः किं कर्तव्यम् ? — इस समय हमको क्या करना चाहिए ?

आवश्यकं शौचादिकं कृत्वा सन्ध्यावन्दनम्। — आवश्यक शौच आदि करके सन्ध्योपासना।

आवश्यकं कृत्वा सन्ध्या उपासिता, अतः परम् अस्माभिः किं करणीयम् ? — आवश्यक करके सन्ध्योपासन कर लिया, इसके आगे हमको क्या करना चाहिए ?

अग्निहोत्रं विधाय पठत। — अग्निहोत्र करके पढ़ो।

पूर्वं किं किम् पठनीयम् ? — पहले क्या पढ़ना चाहिए ?

वर्णोच्चारण शिक्षाम् अधीध्वम्। — वर्णोच्चारण शिक्षा को पढ़ो।

पश्चात् किम् अध्येतव्यम् ? — पीछे क्या पढ़ना चाहिए ?

कश्चित् संस्कृतोक्ति बोधः क्रियताम्। — कुछ संस्कृत बोलने का ज्ञान किया जाय।

पुनः किम् अभ्यसनीयम् ? — फिर क्या अभ्यास करना चाहिए ?

यथायोग्यव्यवहारानुष्ठानाय प्रयतध्वम्। — यथोचित व्यवहार करने के लिए प्रयत्न करो।

कुतः अनुचितव्यवहारकर्तुः विद्यैव न जायते। — क्योंकि उलटे व्यवहारकर्ता को विद्या ही नहीं होती।

को विद्वान् भवितुम् अर्हति ? — कौन विद्वान् होने के योग्य होता है ?

यः सदाचारी प्राज्ञः पुरुषार्थी भवेत्। — जो सत्याचरण शील बुद्धिमान् पुरुषार्थी हो।

कीदृशादाचार्यादधीत्य पण्डितःभवितुं शक्नोति? — कैसे आचार्यसे पढ़कर पण्डित हो सकताहै?

अनूचानतः। — पूर्ण विदयावान् से।

अथ किम् अध्यापयिष्यते भवता ? — अब क्या पढ़ाया जायगा आप से ?

अष्टाध्यायी-महाभाष्यम्। — अष्टाध्यायी और महाभाष्य।

अनेन पठितेन किं भविष्यति ? — इसके पढ़ने से क्या होगा ?

शब्दार्थ-सम्बन्ध-विज्ञानम्। — शब्द-अर्थ (और उनके) सम्बन्ध का ज्ञान।

पुनः क्रमेण किं किमध्येतव्यम् ? — फिर क्रम से क्या क्या पढ़ना चाहिए ?

कल्प-निघण्टु-निरुक्त-छन्दो-ज्योतिषाणि वेदानामङ्गानि मीमांसा-वैशेषिक-न्याय-योग-सांख्य-वेदान्तानि उपाङ्गानि. आयुर्-धनुर्-गान्धर्व-अर्थान् उपवेदान्, ऐतरेय-शतपथ-साम-गोपथ ब्राह्मणानि अधीत्य ऋग्-यजुस्-साम-अथर्व वेदान् पठत । — कल्प-निघण्टु-निरुक्त-छन्द और ज्योतिष वेदों के अङ्ग, मीमाँसा-वैशेषिक-न्याय-योग-सांख्य और वेदान्त उपाङ्ग, आयुर्-धनुर्-गान्धर्व-अर्थ उपवेदों को, ऐतरेय-शतपथ-साम-गोपथ ब्राह्मणग्रन्थोंको पढ़कर ऋग्-यजुस्-साम-अथर्व वेदों को पढ़ो।

एतत्सर्वं विदित्वा किं कार्यम् ? — यह सब जानकर क्या करना चाहिए ?

धर्मजिज्ञासानुष्ठाने एतेषामेवाध्यापनंच। — धर्म की जिज्ञासा-अनुष्ठान और इनकाही पढ़ाना।

महर्षि ने वर्णोच्चारणशिक्षा-व्यवहारभानु बनाये, पाणिनि ने अष्टाध्यायी, पतंजलि ने महाभाष्य

व्याकरण

शब्द-सूची—अब तक संस्कृत के ४८ शब्द आये हैं ।

१ क्रिया के वर्तमान काल [प्रेजेंट टेन्स] को लट् लकार कहते हैं । वर्तमाने लट् ।

२ पुरुष ३ होते हैं—प्रथम पुरुष [अंग्रेजी का थर्ड परसन]हिन्दी में अन्य पुरुष भी कहते हैं । मध्यम पुरुष[सेकण्ड परसन], उत्तम पुरुष [फर्स्ट परसन] । ये तीनों पुरुष सर्वनाम-क्रिया में होते हैं

३ वचन ३ होते हैं— एक वचन [सिंगुलर नम्बर], द्विवचन [डूअल नम्बर], बहुवचन[प्लूरल नम्बर]

४ लिंग तीन होते हैं— पुल्लिंग [मैस्कुलिन जेण्डर], स्त्रीलिंग [फेमिनिन], नपुंसकलिंग[न्युटर]

५ क्रिया और युष्मद्-अस्मद् सर्वनाम तीनों लिंगों में एक समान रहते हैं ।

पुरुष

पुरुष	एकवचन पु०	स्त्री०	नपुं०	द्विवचन पु०	स्त्री०	न०	बहुवचन पु०	स्त्री०	नपुं०
प्रथम [थर्ड]	नरः सः [वह]	सा	तत्	नरौ तौ [वे दो]	ते	ते	नराः ते [वे]	ताः	तानि
मध्यम [सेकण्ड]	त्वम् [तू]			युवाम् [तुम दो]			यूयम् [तुम सब]		
उत्तम [फर्स्ट]	अहम् [मैं]			आवाम् [हम दो]			वयम् [हम सब]		

पठ् धातु के वर्तमान काल में लट् लकार के रूप

पुरुष	प्रत्यय एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	अर्थसहित रूप एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम	अति	अतः	अन्ति	पठति वह पढ़ता है	पठतः वे दो पढ़ते हैं	पठन्ति वे पढ़ते हैं
मध्यम	असि	अथः	अथ	पठसि तू पढ़ता है	पठथः तुम दो पढ़ते हो	पठथ तुम पढ़ते हो
उत्तम	आमि	आवः	आमः	पठामि मैं पढ़ता हूं	पठावः हम दो पढ़ते हैं	पठामः हम पढ़ते हैं

रचना

इसी प्रकार तीनों पुरुषोंके कुल ९ रूपों का क्रम ध्यान में रखकर चल-हस-लिख-खाद्-गम्(गच्छ) वद्-स्था(तिष्ठ ठहरना), उत्तिष्ठ, पा(पिब) पीना आदि क्रियाओं के रूप बोल और लिखकर समझें।

अनुवाद नियम १- जो पुरुष-वचन कर्ता में हो वही क्रिया में हो । नीचे लिखे की संस्कृत बनाओ—

वह पढ़ता है। वे दो लिखते हैं। वे हँसते हैं। तू चलता है। तुम दो खाते हो। तुम उठते हो। मैं अभी उठता हूं। हम दो सचमुच लिखते हैं। हम बैठते हैं। हे बालक ! उठ, सन्ध्याकाल हो गया।

कारक तथा विभक्तियाँ

कारक अर्थ विभक्ति चिह्न उदाहरण अकारान्त के प्रत्यय एकवचन द्विवचन बहुवचन

कर्ता करनेवाला प्रथमा ने या कुछ नहीं नर, नर ने : औ आः नरः नरौ नराः

कर्म जिसे किया जाय द्वितीया को से नर को, नर से ((पूछो) अम् औ आन् नरम् नरौ नरान्

करण साधन तृतीया ने, के द्वारा नर से, नर के द्वारा एन आभ्याम् ऐः नरेण नराभ्याम् नरैः

सम्प्रदान जिसके लिए चतुर्थी को, के लिए नर के लिए आय ,, एभ्यः नराय ,, नरेभ्यः

अपादान अलग होना पञ्चमी से नर से आत् ,, एभ्यः नरात् ,, ,,

सम्बन्ध रिश्ता षष्ठी का के की, रा रे री नर का के की स्य योः आनाम् नरस्य नरयोः नराणाम्

अधिकरण आधार में पै पर नर में नर पर ए योः एषु नरे ,, नरेषु ।

सम्बोधन बुलाना प्रथमा हे ओ अरे कुछ नहीं औ आः हे नर ! हे नरौ ! हे नराः!

टिप्पणी– हिन्दी में सर्वनाम आप के सम्बन्ध का चिह्न ना ने नी भी होता है, जैसे अपना अपने अपनी सर्वनाम में सम्बोधन नहीं होता। जिस शब्द में र या ष हो उसको तृतीया विभक्ति के एकवचन में न को ण हो जाने से एन के स्थान पर एण, और षष्ठी के बहुवचन में नाम् के स्थान पर णाम् होता है।

रचना

नर के समान ही सब अकारान्त पुल्लिङ्ग शिष्य-राम-बालक-जन-पुरुष देव-छात्र-अध्यापक-गज-सिंह-वानर-पिक-शुक-बक-हंस आदि के रूप बोल बोल कर और लिख लिख कर अभ्यास करें।

व्याकरण में पुल्लिंग तत्, सर्व और अस्मद्, युष्मद् के रूप

एकव० द्विव० बहुव० एकव० द्विव० बहुव० एकव० द्विवचन बहुव० एक० द्वि० बहु०

१ सः तौ ते सर्वः सर्वौ सर्वे अहम् आवाम् वयम् त्वं युवाम् यूयम्

२ तं तौ तान् सर्वम् ,, सर्वान् माम्, मा ,, नौ अस्मान्, नः त्वां त्वा ,, वां युष्मान्, वः

३ तेन ताभ्याम् तैः सर्वेण सर्वाभ्याम् सर्वैः मया आवाभ्याम् अस्माभिः त्वया युवाभ्याम् युष्माभिः

४ तस्मै ,, तेभ्यः सर्वस्मै ,, सर्वेभ्यः मह्यम्, मे ,, नौ अस्मभ्यम्, नः तुभ्यम्, ते ,, वां युष्मभ्यं वः

५ तस्मात् ,, ,, सर्वस्मात् ,, ,, मत् ,, अस्मत् त्वत् ,, युष्मत्

६ तस्य तयोः तेषां सर्वस्य सर्वयोः सर्वेषाम् मम, मे आवयोः, नौ अस्माकं, नः तव, ते युवयोः वां युष्माकं, वः

७ तस्मिन् ,, तेषु सर्वस्मिन् ,, सर्वेषु मयि ,, अस्मासु त्वयि ,, युष्मासु

अकारान्त नपुंसकलिंग फलम् के रूप १-२ विभक्तियों में फलम् फले फलानि, शेष में नर के समान हैं।

इसी प्रकार जलम्-बलम्-पानीयम्-भाजनम्-वनम्-ब्राह्मणम्-गृहम् आदि के रूप चलाओ।

आज्ञा अर्थ में लोट् लकार (इम्परेटिव मूड) और विधि (चाहिए) अर्थ में लिङ् लकार

प्रत्यय एकव० द्विव० बहुव० रूप एक० द्वि० बहु० प्रत्यय एक० द्वि० बहु० रूप एक० द्वि० बहु०

प्रथम पु० अतु अताम् अन्तु पठतु पठताम् पठन्तु एत् एताम् एयुः पठेत् पठेताम् पठेयुः

वह पढ़े दो पढ़ें वे पढ़ें उसे पढ़ना चाहिए दो को प० अधिक को प०

मध्यम अ अतम् अत पठ पठतम् पठत एः एतम् एत पठेः पठेतम् पठेत

तू पढ़ तुम दो पढ़ो तुम पढ़ो तुझे पढ़ना चाहिए तुम दो को० तुम्हें०

उत्तम आनि आव आम पठानि पठाव पठाम एयम् एव एम पठेयम् पठेव पठेम

मैं पढ़ूँ हम दो पढ़ें हम पढ़ें मुझे पढ़ना चाहिए हम दो को पढ़ना० हमें पढ़ना०

इसी प्रकार उत्तिष्ठ-उत्थापय-चल-हस-खाद-वद-लिख-नृत्य-पिब-गच्छ आदि के रूप बनाओ।

प्रत्यय

क्त(त)भूतकालमें होता है- जातः[हुआ], उत्थितः[उठा], उत्थापितः[उठाया] उपासिता[उपासना की।

क्त्वा (त्वा) करके अर्थ में होता है- कृत्वा [करके] गत्वा [जाकर]। ऐसे ही खादित्वा-हसित्वा-पठित्वा-लिखित्वा-चलित्वा-स्थित्वा -पीत्वा-क्रीडित्वा आदि बनाओ।

किन्तु यदि क्रिया में उपसर्ग लगा हो तो ल्यप् [य] प्रत्यय लगाया जाता है जैसे विधाय [करके] आगत्य [आकर] अधीत्य [पढ़कर] आदि।

तव्यत और अनीय - 'चाहिए' अर्थ में होते हैं- कर्तव्यम [करना चाहिये]। ऐसे ही स्मर्तव्य-पठितव्य-लिखितव्य-अध्येतव्य-प्रयतितव्य और करणीय-पठनीय-स्मरणीय-अभ्यसनीय आदि हैं।

तुमुन् [तुम]- 'करने को' अर्थ में होता है- कर्तुं [करने को] पठितुम [पढ़ने को] खादितुं अत्तुम् [खाने को] आदि। अंग्रेजी में यह 'टू' होकर क्रिया से पहले लगने लगा- गन्तुं [टू गो] अत्तुं टू ईट हो गया। यह पूर्वकालिक क्रिया (इनफिनिटिव मूड) कहाती है।

अनुवाद और रचना

१ कौन महान् हो सकता है? २ जो धर्मात्मा पुरुष हो। ३ मुझे बली होना चाहिए। ४ मनुष्य कैसा हो? ५ मनुष्य सदाचारी हो। ६ आप पढ़ने को जायें। ७ वेदांगों और ब्राह्मण-ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए। ८ पश्चात् हम क्या पढ़ें? ९ पश्चात् हम वेद पढ़ें। १० मैं वेदों का पढने को प्रस्तुत होता हूं।

[भवान् (आप)के साथ क्रिया में प्रथम पुरुष आयेगा।]

खाली स्थान भरो- १ कः ज्ञानी ... अर्हति? २ यः सदाचारी ...। ३ ... बलवान् भवेयम्। ४. वयं वेदान् ...। ५.... आचार्यात् अध्येतव्यम्। ६.कः ......शक्नोति? ७.एतद् विदित्वा किं ...। ८. ... ... ब्राह्मणानि सन्ति। ९. .. .. वेदान् पठत। १०. वयं ... अधीत्य विद्वांसः ...।

सन्धि और समास

अक्षरों के मेल से यदि कुछ परिवर्तन हो तो उसे सन्धि कहते हैं; शब्दों को मिलाकर संक्षेप करना समास है। शब्द के अन्तिम व्यञ्जन में अगले शब्द के स्वर का मिलाना मात्र संयोग है, सन्धि नहीं। सन्धि ३ प्रकार की है- स्वर, व्यञ्जन और विसर्ग। कालः की विसर्ग : का ओ होकर कालो हो जाना विसर्ग-सन्धि है। शौचादिकं में शौच के च के अ से आदिकं का आ मिलकर बड़ा आ होना दीर्घ-स्वर-सन्धि है। ऐसे ही धर्म-अनुष्ठान मिलकर दीर्घ-स्वर-सन्धि होकर धर्मानुष्ठान बन गया।

एकपद, धातु-उपसर्गऔर समास में ही सन्धि अनिवार्य है अन्यत्र नहीं, वह वाक्य में ऐच्छिक है। व्यञ्जनों के मेल से हुआ परिवर्तन व्यंजन-सन्धि है जैसे सत्-चित् में त को च होकर सच्चित् हुआ।

१. दीर्घ-स्वर-सन्धि-नियम सूत्र— अकः सवर्णे दीर्घः (अष्टाध्यायी ६.१.१०१)

अक् (अ-इ-उ-ऋ) से परे यदि समान वर्ण हो तो दीर्घ अ-अ आ। इ-इ ई। उ-उ ऊ। ऋ-ऋ ॠ हो जाये — शब्द-अर्थ शब्दार्थ। वेद-अङ्ग वेदाङ्ग। उप-अङ्ग उपाङ्ग। हिम-आलय हिमालय विद्या-अर्थी विद्यार्थी। जिज्ञासा-अनुष्ठान जिज्ञासानुष्ठान। दया-आनन्द दयानन्द । विद्या-आलय विद्यालय। हरि-ईश हरीश। भानु-उदय भानूदय। पितृ-ऋण पितॄण।

२. गुण-स्वर-सन्धि का सूत्र- आद् गुणः (६.१.८७)

अ से आगे इ-उ-ऋ-ल. परे रहते गुण (क्रमशः ए-ओ अर्-अल्) हो जाये जैसे—

अ-इ ए- वीर-इन्द्र वीरेन्द्र। अ-उ ओ वर्ण-उच्चारण वर्णोच्चारण। महा-ऋषि महर्षि। त ल्लकार।

सूक्त १० आत्मा-परमात्मा

२६०६ जो गायत्र (२४ अक्षर के गायत्री) छन्द और उस छन्दवाले मन्त्रों में गायत्र (गायक-रक्षक) परमात्मा का वर्णन है। परमात्मा में जीवात्मा आश्रित है। त्रैष्टुभ [त्रिष्टुप् छन्द] के द्वारा, ज्ञान-कर्म-उपासना से पूजित ब्रह्म के द्वारा त्रिष्टुप् छन्द प्रसिद्ध अर्थ परमात्मा को निरन्तर विस्तृत करते हैं। अन्तरिक्ष में वायु, क्षत्रिय में बाहुबल, माध्यन्दिन सवनमें रुद्र विद्युत् में वज्रशक्ति, आत्मा में इन्द्रिय, त्रिष्टुप् छन्द में पञ्चदश स्तोम, और ३ वेदों से स्तुत्य परमात्मा प्राप्त किया जाता है। ४८ अक्षरों के जगती छन्दमें जानने योग्य परमेश्वर और जगत् का वर्णन है तथा परमेश्वर में गति-शील जगत् आश्रित है। द्यौ में आदित्य, अन्नवाली पृथ्वी पर वैश्य, कूल्हों पर नाभि से नीचे का प्राण, वैश्यों पर पशु, तृतीय सवन पर आदित्य और ब्रह्मचर्य पर ४८ वर्षीय आदित्य ब्रह्मचारी और विद्वानों पर श्रुति आश्रित हैं, इसको जो जानता है वह मोक्ष को पाता है। १

१० परमेश्वर गायत्री छन्द से [आरम्भ कर] ऋग्वेद को, ऋग्वेद [के मन्त्रों] से साम [गान] को, और त्रिष्टुप् छन्द (की अधिकता) से यजुर्वेद को; तथा दो पद और चार पद वाले नाश-रहित यजुर्वेद से अथर्व वेद को रचता है। दो पद और ४ पद (चरण) वाले अक्षरों से सात वाणियों (छन्दों) का ज्ञान विद्वान् करते हैं।

विद्वान् पूज्य और व्यापक परमेश्वर को ऋग्वेद से, प्रश्न और प्रतिप्रश्न से, त्रिष्टुप् छन्द से जानें, जीव और ब्रह्म के ज्ञान से ७ छन्दों में विभक्त वेद का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें। मनुष्य पृथ्वी से अन्न, प्राण से आत्मा और आत्मा से परमात्मा को जानें। अन्न से प्राण और मन, आदित्य से क्षात्र बल और ब्रह्म की उपमा है। अन्तरिक्ष से वायु, प्राण और वायु से वाणी, राजा से राष्ट्र-शक्ति, द्यौ और राष्ट्र शक्ति से पृथ्वी मापी (जाती) जाती है। २

११ परमेश्वर गति शक्ति से जगत् के साथ, गति करने वाले सूर्य आदि और गति शील सूक्ष्म जल को तथा आदित्य से प्राण को आकाशमें रोकता, स्तब्ध करता है। अन्तरिक्षमें सूर्यको सबओर से देखता, दिखाता, भ्रमण कराता है। योगी वेदवाणी में ब्रह्म को और ब्रह्म में ज्योति को देखता है। रथ तर साम से सूर्य का वर्णन करता है। गायत्री से सिद्ध किये ऋग्वेद की ओर गान करनेवाले के रक्षक परमात्मा की ३ समिधाएँ = प्रकाशमान अग्नियाँ (सूर्य-विद्युत्-अग्नि) और भूत-भविष्यत्-वर्तमान ३ कालों के सुख बताये जाते हैं। वह परमात्मा उनसे भी अधिक महान् महिमा से अधिक बढ़कर है। ३

१२ मैं इस सुख से दुही जाने योग्य धेनु (परमात्मा, आत्मा, वाणी, विद्या और भूमि रूपी गौ) को वर्णन करता हूं। इस विद्या को चतुर दुहने वाला दुहे। सविता हमारे लिए श्रेष्ठ ऐश्वर्य को उत्पन्न करे। प्रदीप्त घाम और सूर्य अन्न को उत्पन्न करते हैं। इनका मैं उत्तम रीति से उपदेश करता हूं और किया करूँ। ४ (मन्त्र सं० ६१८—पहले ७-७३-७ देखो)

१३ समस्त वसुओं को पालनेवाली, मन से वत्स (जीवात्मा) को चाहती हुई पृथ्वी और दवाणी ध्वनि करती हुई सूर्य के चारों ओर गति कर रही है। वह प्राण-अपान क्षय जीवन देती हुई अहिंसनीय होकर बड़े सौभाग्य के लिये वृद्धि को प्राप्त हो। ५ (१९१६,७-७३-८)

१४ मेघमयी पृथ्वी, जलों के साथ वर्तमान होकर, धूप-दिन और सूर्य को सम्मुख रखते हुए आकाश-चक्र में आती है और प्रजा का पालन करने के लिये शब्द करती है, जल उत्पन्न करते हुए प्रतप्त सूर्य को लक्ष्य करके मानो उस जल आदिको चाहती हुई, जल आदिसे तृप्तकरती है। ६

२६१५ यह मेघ गर्जन का अव्यक्त शब्द करता है जिसके साथ अतिवेग से गति करने वाली

बिजली, मेघ का आश्रय लिये हुए, शब्द करती है। जल से घिरी, वायु से आवृत पृथ्वी परिमित मार्ग पर गति करती है। वह परमाणुओं से मनुष्यों को घेरे रहती है। तीव्र क्रियाओं से मनुष्य को भयभीत करतीहै और नाना क्रियाओंसे मनुष्योंपर उपकार करती है, वह बिजली होती हुई अपना रूप पाती है।७

२६१६ ब्रह्म जीव को कँपाता और चेष्टा कराता तथा प्राणयुक्त करता हुआ, सर्वव्यापक होकर, गति करता हुआ, लोकों, घरों, शरीरों के बीच में निश्चल होकर शयन करता सर्वत्र व्यापक है। और अमर जीवात्मा मरणशील शरीर के साथ रहकर, मृत (गत) शरीर के द्वारा किये कर्मों के अनुसार, नाशवान् जगत् के बीच अन्नादि पदार्थों और शक्तियों से (अनेक योनियों में) विचरता है। ८

१७ परमात्मा के आश्रय पर गति करते हुए, कर्मकर्ता जीवात्मा को सर्वव्यापक परमात्मा धारण किया करता है। हे जीव, उस देव के काव्य (सृष्टि और वेद) को देख, जिसकी महिमा से जो जीव कल प्राण धारण कर रहा था वह आज प्राण त्याग देता है। ९

१८ जो जीव क्रियामात्र करता है वह अपने तथा परमात्मा के स्वरूप को नहीं जानता, जो सब क्रियाओं को देखता जानता है वह परमात्मा उस जीव से भिन्न और छिपा हुआ है। वह माताके गर्भाशयमें अन्दर सब ओरसे ढँका हुआ, बहुतबार जन्म लेनेवाला जीवात्मा प्रकृतिके बन्धनमें आता है।१०

१९ मैं पृथ्वी, इन्द्रिय, वेद वाणी, किरणों के रक्षक स्वामी, नाश को न प्राप्त होने वाले, मार्ग से आगे पीछे चलते हुए परमात्मा-जीवात्मा और सूर्य को देखता समझता हूँ। वह साथ प्राप्त हुई, नाना प्रकार की गतियों (और किरणों) को धारण करता हुआ, भुवनों के अन्दर अच्छे प्रकार से वर्तमान रहता है। ११ (ऋ० १-१६४-३१, १०-१७७-३; यजु० ३७-१७)

२० प्रकाशमान परमात्मा और सूर्य हमारा पिता, रक्षक, उत्पन्न करने वाला है, बन्धनकर्ता, केन्द्र स्वरूप प्राण मेरा भाई है और यह बड़ी प्रकृति और पृथ्वी हमारी माता है। आमने सामने खड़ी दो सेनाओं के समान उत्कृष्ट रीति से विस्तृत पृथ्वी और सूर्य के बीच में मेरा घर और जन्म है,यहाँ पिता सूर्य दुहिता = उषा में किरणों को धारण कराता है। पिता परमात्मा ऐश्वर्यों को दुहने वाली (प्रकृति-पृथ्वी) में गर्भ (ग्रहण सामर्थ्य) को धारण कराता है। सूर्य अन्तरिक्ष में मेघ बनाता है। १२

२१ हे विद्वान्, मैं तुझसे १. पृथ्वी के परले अन्त को, २. सुखवर्षक, बलवान्, अश्व (परमात्मा सूर्य, पुरुष तथा घोड़े) के वीर्य (पराक्रम) को, ३. सब संसार के बन्धनकर्ता केन्द्र को और ४. वाणी के परम व्यापक आकाश को पूछता हूं (कि वे क्या हैं)। १३

२२ यह वेदि (सत्ता का केन्द्र आकाश और वायु, पृथ्वी मध्य रेखा और यज्ञ वेदि) पृथ्वी का परम अन्त है। (क्योंकि पृथ्वी गोल है), यह सोम, सूर्य, प्राण, सोमलतादि का रस-चन्द्रमा और अन्न क्रमशः परमात्मा, सूर्य, पुरुष तथा घोड़े का वीर्य है, यह यज्ञ (परमेश्वर और यज्ञ) भुवन का आकर्षक बन्धन केन्द्र है। चारों वेदों का प्रकाशक परमात्मा, ब्रह्मज्ञानी वाणी का अवकाश है। १४

२३ मैं जैसे का तैसा (वास्तविक) नहीं जानता। जब तक इस (स्थूल)शरीरको नहीं प्राप्त करता तब तक मन से बंधा हुआ, विचार को भीतर रखे हुए विचरता हूं। जब प्रकृति से उत्पन्न (महत् तत्त्व आदि) मुझे प्राप्त हुए, उसके पश्चात् ही सत्य और इस वाणी के भाग।वद्या को मैं प्राप्त होता हूं। १५

२६२४ न मरनेवाला (आत्मा) प्रकृति के बने मरणधर्मा सूक्ष्म शरीर के साथ एकत्र होकर स्वयं धारण की हुई शक्ति, कर्मफल और अन्न जल आदि से बँधकर ऊपर (श्रेष्ठ), नीचे के लोकों (अधम योनियों) को जाता है। विविध गति करने वाले सनातन वे दोनों सर्वत्र जाने वाले हैं। उनमें से एक (शरीर) को विद्वान् अच्छा प्रकार से जान लेते हैं और दूसरे (जीवात्मा) को पूर्णतया नहीं पाते। १६

२६२५ १. सात आध गर्भ रूप (पंच सूक्ष्मभूत, अहङ्कार और महत् तत्त्व) संसार के वीर्य (बीज रूप) होकर व्यापक परमात्मा की आज्ञा से विरुद्ध धर्म वाले (आकाश) में स्थित होते हैं। वे परमेश्वर के कर्म और विचार के साथ सब जगह फैलकर सब रूपों में परिणत हो जाते हैं। उन्हें धारणा शक्तियों और मन से विचार कर विद्वान् जानें।

२ सूर्य की सात किरणें जल को ग्रहण करके सूर्य के शासन में रहती हैं। वे सूर्य से प्राप्त जल वर्षण रूपी अपनी अपनी क्रियाओं और स्तम्भित बल से सर्वत्र व्याप्त होकर सब ओर पहुंचती हैं।

३ सात प्राण संसार के वीर्य हैं। वे सर्वत्र व्यापक परमात्मा के आदेश से जीवात्मा में रहते हैं, वे धारक शक्ति और स्तम्भन बल से सब संसार को सब ओर से घेर लेते हैं।

इन सात गर्भों (भूतों, प्राणों और किरणों) को जानने के लिये विचार और कर्म से जानने का पूर्ण प्रयत्न करके भी विद्वान् जन तिरस्कृत होकर कष्ट पाते हैं। १७

२६ जिस वेद-प्रतिपादित परम आकाश के बीच व्यापक परमेश्वर में ऋचाएँ और समस्त देव (पृथ्वी, सूर्य आदि), आदित्य में सूर्य-किरणें और जीवात्मा में इन्द्रियाँ तथा शरीर आधेय रूप से स्थित हैं, उसको जो नहीं जानता वह ऋचा = वेद मन्त्र से क्या करेगा? (कुछ नहीं।) जो ही उसको जानते हैं वे ही ये विद्वान् उपासना करते और अच्छे प्रकार से जीवन में स्थिर होते हैं। १८

२७ वेदमन्त्र से सूक्ष्मतासे विचार करते हुए विद्वान् समृद्ध वेद से चलने वाले विश्व को समृद्ध करते हैं। तीन (द्यौ अन्तरिक्ष पृथ्वी) में गति वाला ब्रह्म बहुत सौन्दर्ययुक्त होकर और ज्ञान अनेक रूपों वाला होकर स्थित है। उसी से चारों दिशाएँ जीवित रहती हैं। १९

२८ हे अहिंसित (बिजली-प्रजा-विदुषीस्त्री), तू उत्तम शाक फल खानेवाली सौभाग्यशालिनी हो और हम भाग्यवान् हों। सदा शाक और फल खाया कर और अच्छे प्रकार चलती और आचरण करती हुई शुद्ध जल पिया कर। हे मेघ! तू उत्तम जल को धारण कर ऐश्वर्यवान् हो, फिर हम भी ऐश्वर्यवान् होंगे। तू जल का पान कर और इधर-उधर मँडराते हुए सदा पवित्र जल का पान किया कर। २०

२९ विद्युत् जल का निर्माण करती हुई शब्द करती है। वह मेघों में रहने से 'एकपदी', मेघ और सूर्य-दो में रहने से 'द्विपदी', ४ दिशाओं में रहने से 'चतुष्पदी', ४ दिशाओं ४ उपदिशाओं में रहने से 'अष्टापदी' और ८ दिशाओं उपदिशाओं तथा आदित्य- इन ९ में रहने से 'नवपदी' होकर बहुत जल वाली और भुवन की विस्तारिका है। उससे समुद्र तथा जल बहा करते हैं। २१

(ऋ० १-१६४-४१-४२ में) (और आगे १३-१-४२ में भी है)

३० प्राणों को और रस को खींचने वाली सूर्य-किरणें जल को धारण करके उत्तरायण में खींचने वाले जल स्थान अन्तरिक्ष में होकर सूर्य तक चढ़ी रहती हैं। वे फिर दक्षिणायन में जल के घर अन्तरिक्ष से लौट आती हैं और जल से पृथ्वी को विविध प्रकार से सींचती हैं। २२

३१ पाँव वालों की सबसे प्रथम बिना पाँव की शक्ति 'आत्मा' है या प्रकृति है। हे मित्र-वरुण (आक्सीजन-हाइड्रोजन), तुम दोनों में से कौन उसको जानता है? गर्भ में रहनेवाला आत्मा इस प्रकृति के भार को वहन करता है। वह ऋत (सत्य) को पूर्ण करता और असत्य का नाश करता है। २३

३२ विराट् (परमात्मा और प्रकृति) १ वाणी, २ पृथ्वी, ३ अन्तरिक्ष, ४ प्रजापति (सूर्य), ५ मृत्यु और ६ साध्यों (साधना करने वालों) का राजा है। उसके वश में भूत और भविष्य हैं। वह भूत-भविष्य को मेरे वश में करे। २४

२६३३ शक्तिशाली, बाधाओं को दूर करने वाले (परमात्मा) को मैं पास से (आत्मा में) देखता हूं। वह अनेक रूपों में फैलने वाले इस अवर (जीवात्मा और यज्ञाग्नि) से उत्तम है। वीर (आचार्य)

आकाश में सूर्य और मेघ को (अग्नि होम द्वारा) पकाते हैं, विद्याओं को वहन करने और सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्मचारी को (तप द्वारा) परिपक्व करते हैं। ये (तप, यज्ञ और ब्रह्मचर्य) रूपी धर्म सर्वश्रेष्ठ हैं और प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य के हैं। २५

२६३४ गुणों को बतानेवाला प्रकाशमान तीन (१ विद्युत् अग्नि, २ सूर्य और ३ वायु तथा १ ईश्वर, २ जीव, ३ प्रकृति) ऋतु नियम के अनुसार दिखाई देते हैं। इनमें से एक (परमात्मा और विद्युत् अग्नि) संवत्सर (प्रकृति और वर्ष) में बीज बोता है। दूसरा (जीवात्मा- सूर्य) कर्मों से विश्व में चेष्टा करता प्रकाशित होता है। तीसरे (प्रकृति-वायु) की गति दिखायी देती है, रूप नहीं। २६

३५ परमेश्वर की उत्पन्न बतलायी वाणी के परिमित स्थान ४ हैं (नाभि-उरः-कण्ठ-मुख तथा नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपात), जो मननशील ब्रह्म ज्ञानी हैं वे उनको जानते हैं। तीन तो बुद्धि में, गुप्त रहते हैं वे चेष्टा नहीं करते, प्रकट नहीं होते। मनुष्य वाणीके चौथे भाग(निपात = प्रसिद्ध शब्द) को मुख से बोला करते हैं। (यह मन्त्र ऋ० १-१६४-४५ तथा निरुक्त १३-६ में है)

ऋ १. १६४-४५ की व्याख्या में वाणी के ४ स्वरूप के सम्बन्ध में यास्क आचार्य ने निरुक्त १३-९ में निम्नलिखित मतों के अनुसार अनेक प्रकार से वर्णन किये हैं—

१ आर्ष (ऋषियों का) मत— ओम्, भूः, भुवः, स्वः।

२ वैयाकरण मत— नाम,आख्यात, उपसर्ग, निपात। (महर्षि दयानन्द का भी यही मत है।)

३ याज्ञिक मत- मन्त्र,कल्प, ब्राह्मण, व्यावहारिकी वाणी।

४ नैरुक्त मत— ऋग् (पद्य), यजुः (गद्य),साम (गीति), व्यावहारिकी।

५ एक मत— [ऐतिहासिक मत]सर्प वाणी, पक्षियों की वाणी, छोटे रींगने वाले क्रिमियों की वाणी और व्यावहारिकी [मनुष्यों के व्यवहार की] वाणी।

६ आत्म प्रवाद मत या आत्मवादी मत- ग्राम्य पशुओं की, बाजों की, सिंह आदि जंगली पशुओं की और आत्मा [अपने मनुष्यों] की वाणी।

७ ब्राह्मणग्रन्थ मत[मै० सं० १-११-५]- जो वाणी पृथ्वी में वही अग्नि, रथन्तर साम में, जो अन्तरिक्ष में वही वायु, वामदेव्य साम में, जो द्यौ में वही आदित्य, बृहत् साम में, मेघ गर्जन में और ध्वनि रूप में पशुओं में (साधारण मनुष्यों और जानवरों में बची हुई, बढ़ी हुई वाणी ब्राह्मणों में है, अतः वे देव और मनुष्यों की वाणी बोलते हैं।

८ सायणाचार्य ने अपने भाष्य में एक और मत उद्धृत किया है--

मातृका-मान्त्रिका मत- परा [मूलाधार में], पश्यन्ती [हृदय में], मध्यमा [बुद्धि में],वैखरी [मुखमें]

९ सातवलेकर मत— नाभि में, उरस्थल, कण्ठ और मुख में। २७

२६३६ अग्नि = प्रकाशमान सर्वव्यापक परमेश्वर को १ इन्द्र, २ मित्र, ३ वरुण नाम से कहते हैं। और वह ४ दिव्य, ५ सुपर्ण और ६ गरुत्मान् है, एक विद्यमान परब्रह्म को बुद्धिमान् जन बहुत नामों से कहते हैं। उसे ७ अग्नि, ८ यम और ९ मातरिश्वा कहते हैं। २८

यह मन्त्र ऋ १-१६४-४६ है और यास्क-निरुक्त ७-१- तथा १३-१४ में व्याख्यात है। जहाँ अग्नि ८ अर्थ करते हुए उसे १ अन्तरिक्ष का इन्द्र = विद्युत्, २ मित्र (उद्रजन = हाइड्रोजन), ३ वरुण (अम्लजन = ओषजन = आक्सीजन), ४ दिव्य (द्यौ स्थानीय सूर्य), ५ सुपर्ण (जीवात्मा), ६ गरुत्मान् (परमात्मा, उपदेष्टा, महान् आत्मा) ७ यम (मृत्यु) और ८ मातरिश्वा (वायु) बताया है। ९ अर्थ पृथ्वी स्थानीय भौतिक यज्ञाग्नि है। २८॥सूक्त १०, अनुवाक ५, प्रपाठक २१, काण्ड ९ समाप्त॥

ओ३म

अथर्ववेद कांड १०, सूची

प्रपा	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता विषय	छन्द	महर्षि दयानन्द-कथित विषय
२२	१	१	३२	प्रत्यङ्गिरस	कृत्यादूषणम्	बृ गा अ पं त्रि ज	कृत्या-निवारणादि गोवत्तादि
		२	३३	नारायण	प्रजापति ब्रह्म	,,	यज्वादि इन्द्रादि प्रार्थनादि दुरित-त्यागादि सप्ताकाशादि जलादि प्रश्नोत्तरादि ब्रह्मविद्यादि प्रशंसा
	२	३	२५	अथर्वा	वरणमणि वनस्पति चन्द्रमा	,,	मण्यादि विद्या मात्रादि वनस्पतीश्वरादि
		४	२६	,	तक्षक	विष्णुक्रम	कीर्तिभूतिप्राप्त्यर्थं ईश्वरप्रार्थनादि विष-निवारण आदि पदार्थ विद्या
	३	५	५०	सिन्धुद्वीप कौशिक ब्रह्मा	विहव्य	,, आपः	ईश नरेन्द्रौ नौ बलादि; द्वेष-त्यागादि
		६	३५	बृहस्पति	फालमणि बनस्पति आपः	,,	दुष्टवधादि विष्णु-कर्म पृथिव्यादि-विभाग करणादि प्राणयाचनादि; शिल्पादि, आज्य मण्यादि' राज वरुण मणि धारणादि पदार्थ विद्या
२३	४	७	४४	अथर्वा(क्षुद्रः)	स्कम्भः अध्यात्म	ज त्रि उ बृ अ गातप	ऋत प्रश्नादि० ईश्वरे सर्वं स्थितं० महाविद्या० महा व्याख्यानादि प०
		८	४४	कुत्स	,,	,,	
	५	९	२७	अथर्वा	शतौदन	,,	सन्तानोत्पत्ति यज्ञादि० पुत्रेष्टयादि० दशा
		१०	३४	कश्यप	वशा	,,	द्यौः वशा पृथिवी इत्यादि पदार्थ विद्या
योग २	५	१०	३५०	१० ऋषि	१२ देवता		पिछले २६३६ मिलाकर सब २९८६ मन्त्र हुए।

ओ३म्

अथर्व वेद कांड १०

प्रपाठक २२-२३ अनुवाक१से ५ (सूक्त१ से १०तक)

अनुवाक विषयाः- कृत्या-निवारणादि पदार्थ विद्या गोवत्सादि यज्ञादीन्द्राग्निप्रार्थनादि दुरित-त्यागादि सूक्ताकाशादि जलादि प्रश्नोत्तरादि ब्रह्मविद्यादि प्रशंसा (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

सूक्त १। मन्त्र ३२। कृत्या-दूषणम्

२६३७.याङ्कल्पयन्तिवहतौ वधूमिव विश्वरूपांहस्तकृतांचिकित्सवः।साराद्देत्वपनुदाम एनाम्॥१

३८ शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा। सारा० [पूर्ववत्] ॥ २

३९ शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिःकृता। जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं वन्धवृच्छतु ॥ ३

४० अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्। यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ४

४१ अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते। प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥ ५

४२ प्रतीचीनं आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः। प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून्कृत्याकृतो जहि॥६

४३ यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम्।तङ्कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः॥७

४४ यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुधिया। तङ्गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयञ्जनः ॥ ८

४५ ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः।

शम्भ्वी३दङ्कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥ ९

४६ यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम। अपैतु सर्वं मत्पापं द्रविणं मोपतिष्ठतु ॥ १०

४७ यत्ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः।
संदेश्या३त् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥ ११

४८ देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात्।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥ १२

२६४९ यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥ १३

५० अपक्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव। कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ १४

५१ अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहिता प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥ १५

५२ पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या३ अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥ १६

५३ वात इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥ १७

५४ यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा नि चख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥ १८

५५ उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् ।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥ १९

५६ स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि ॥ २०

५७ग्रीवास्तेकृत्येपादौ चापि कर्त्स्यामिनिर्द्रव।इन्द्राग्नी अस्मान्रक्षतांयौ प्रजानांप्रजावती॥२१

५८ सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥ २२

५९ भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते। दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥ २३

६० यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतोऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥ २४

६१ अभ्य१क्ताक्ता स्वरङ्कृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥ २५

६२.परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय। मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥ २६

६३.उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा। उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥ २७

६४. एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ । यस्त्वा चकार तं प्रति ॥ २८

६५ अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥ २९

६६.यदिस्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव।सर्वाः संलुप्येतः कृत्याःपुनःकर्त्रे प्रहिण्मसि॥३०

६७कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणःप्रजाम्। मृणीहि कृत्येमोच्छिषोऽमून्कृत्याकृतोजहि३१
२९६८ यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥ ३२

सूक्त १ । कृत्या

२९३७ चिकित्सक वैज्ञानिक, विवाह में वधू के समान, जिस अनेक रूप वाली, हाथ से बनायी विष-कन्या बनाते हैं वह यदि पास आये तो दूर हटा दें । १

३८ कृत्या-निर्माता से बनायी समझदार सिर-नाक-कान वाली सब रूपों की घातक सेना यदि पास आये तो इसे दूर हटा दें । २

३९ पति से धकेली पत्नी जैसे उत्पादक बन्धु के पास आती है वैसे शूद्र-राजा-स्त्री-ब्राह्मणों की बनायी शत्रु-सेना निर्माता राष्ट्र को वापस हो । ३

४० मैं इस औषधि से उन घातक विष-प्रयोगों को नष्ट कर दूँ जिसे तेरे खेत-गौओं-पुरुषों पर किया जाये । (देखो मन्त्र ४-१०-५ में अपामार्ग) । ४

४१ पाप-कर्ता को पाप लगे, शपथवाले को शपथ हो, कृत्या को दूर हटायें जिससे वह कर्ताको मारे। ५

४२ हमारा आग्नेयास्त्र-ज्ञाता अध्यक्ष आगे बढ़कर शत्रु को लौटाये, कृत्याएँ उलटी करके उनके करनेवालों को मारें । ६

४३ हे सेना ! जो शत्रु तुझसे कहे कि दूर हट; उस प्रतिकूल उठे हुए को वापस लौटा । हम निरपराधों को मारने की इच्छा न कर । ७

४४ हे शत्रु-सेना ! रथ को शिल्पी के समान जो तेरे अङ्ग बुद्धि से जोड़ता है तू वहीं जा, वहीं तेरा स्थान है । यह जन और जनपद तेरा अज्ञात रहे । ८

४५ हे हिंसक सेना ! जो पीड़क अभिचारी तुझे बनाकर लाभ उठाते हैं उनका नाशक यह पुनःसर नामक वरुणास्त्र यन्त्र है उनने नहलाते हैं । ९

४६ यदि हमें दुर्भागिनी, भ्रूण-हत्या कराने वाली, मरे बच्चे पैदा करने वाली हिंसा हो जाये तो वह मेरा सब पाप मुझ से दूर हो, मुझे धन-बल मिले । १०

४७ हे हिंसा ! यदि पालकों को दान करते हुए या यज्ञमें तेरा नाम भी लें तो उस सब पाप से ये औषधियाँ तुझे छुड़ायें । ११

४८ ये तुझे देवों-पितरों के प्रति किये पाप, बुरा नाम लेने, बुरा कहने और अपमान से वेद के मन्त्रों और सूर्य-किरणों के द्वारा पाप से बचायें । १२

४९ जैसे वायु भूमि से धूल, आकाश से मेघ उड़ाती है वैसे मेरा सब पाप वेद से छिन्न हो । १३

५० हे कृत्या ! बन्धन से छुटी गदही के समान रेंकती हुई तू दूर भाग । शक्तिशाली ब्रह्मास्त्र से धकेली तू यहाँ से अपने बनाने वालों के पास जा । १४

५१ हे शत्रु-सेना ! तेरा मार्ग यह है, हम तुझे वापस लौटाते हैं । रथोंवाली तू नष्ट होकर अनेक रूपों मे लूटी हुई वाहिनी के समान दूर भाग । १५

५२ उधर तेरी ज्योति है, तुझे इधर को मार्ग न हो । हमसे अन्यत्र स्थान बना । दूर होकर तू नावों से पार करने योग्य ९० (अनेक) दुर्गम नदियों के पार जा ; हिंसित न हो । १६

अथर्ववेद काण्ड १० (सूक्त १० का शेष)

२६५३ हे कृत्या, जैसे हवा (आँधी) पेड़ों को उखाड़ देती है वैसे तू शत्रुओं को नष्टकर, इन (शत्रुओं) के गौ-अश्व-पुरुष को मत छोड़ । यहाँ से लौट कर तू उनकी प्रजा के नाश की चेतावनी दे ।१७

५४ वे शत्रु जिस कृत्या या वलग (गुप्त घातक प्रयोग) को तेरे जलाशय में, श्मशान भूमि में, खेत में नीचे दबाते हैं, या अत्यन्त कठोर जन तुझ शुद्ध पाप-रहित के प्रति गार्हपत्य (घर की रक्षक) अग्नि में छल से घातक प्रयोग करते हैं, (उन्हें हम नष्ट करें) । १८

५५ ऊपर से ढँके हुए, पटाखे छूटने, जलनेवाले, गाड़े हुए, कुटिल, घातक वैर, शस्त्रास्त्र प्रयोग को हम जानें । वह जहाँ से आया हो वहाँ जाये । घोड़े के समान उल्टा वापस जाये और कृत्या (आग्नेय विस्फोटक] करने वाले की प्रजा को नष्ट करें । १९

५६ हे घातक, हमारे घर में उत्तम फौलाद की बनी तलवारें हैं। तेरे जितने जोड़ हैं उन्हें हम जानते हैं, अनजानी कृत्या, तू यहाँ से उठ और दूर जा । तू यहाँ क्या चाहती है ? यहाँ कुछ न कर सकेगी । २०

५७ हे हिंसा, तेरी गरदनों और दोनों पैरों को भी अवश्य काट दूँगा, तू भाग जा । इन्द्र और अग्नि [राजा और सेनापति तथा विद्युत् अस्त्र और आग्नेयास्त्र] हमारी रक्षा करें जो प्रजा की माता के समान हैं । २१

५८ सोम राजा [ओषधि और चन्द्रमा] रक्षक और सुखकारक हो। संसार के पालने वाले पदार्थ हमें सुखी करें । २२

५९ अग्नि के उत्पादक [प्रकाश] और नाशक [दाह] ये दोनों शक्तियाँ पाप करनेवाले, और दुष्कर्म करने वाले के प्रति दिव्य वज्र रूप विद्युत् अस्त्र को फेंकें । २३

६० हे दुःख देने वाली सेना, बनाने वाले के द्वारा यदि तू दो पैर वाली, चार पैर वाली और सब रूपों वाली होकर आयी है वह तू आठ पैर वाली होकर यहाँ से पीछे लौट । २४

६१ हे विष-कन्या ! पालिश चढ़ी हुई, चित्रित कीगयी और सजायी हुई, तू सब दुःखों को अन्दर भरे हुए है । अतः दूर जा । जैसे पुत्री अपने पिताके पास रहती है वैसे अपने बनाने वाले को जान । २५

६२ हे कृत्या, तू दूर जा । यहाँ मत ठहर । घायल के समान शत्रु के स्थान की ओर जा । वह मृग [सिंह] है । तू मृगयु [शिकारी] है । वह तुझे नहीं काट सकता । २६

६३ या तो दूसरा पुरुष पहले से बैठे हुए को पकड़ कर फेंकने योग्य अस्त्र से मारता है या पहले से मारने वाले के प्रति दूसरा पुरुष बदले में मारता है । २७

६४ इतना ही मेरा वचन सुन । तू जहाँसे आती और जो तुझे बनाता है उनके प्रति अब तू जा २८

६५ हे कृत्या, दोष-रहित की हत्या सचमुच भयंकर है । तू हमारे गौ, घोड़े, पुरुष को मत मार । जहाँ जहाँ छिपी है वहाँ से तुझे हम उठाते हैं । तू पत्ते से भी हल्की हो जा । २९

६६ हे कृत्याओ ! यदि तुम तमसा अस्त्र से भरी हुई हो और जाल से बँधी हुई हो तब भी तुम सबको मिटाकर हम यहाँ से तुम्हें बनाने वाले के पास पीछे लौटाते हैं । ३०

६७ हे सेना ! तू बन्धन के गुप्त घातक प्रयोग करनेवालों, प्रजा पर आक्रमण करनेवालों और कृत्या करने वालों को ही नष्ट कर, जीता न छोड़, कृत्याकारियों को मार । ३१

२६६८ जैसे सूर्य अन्धकार से छूटा रहता है; रात्रि और उषा के चिह्नों को छोड़ देता है; ऐसे ही मैं कृत्या करने वाले के द्वारा किये गये सब बुरे प्रयोग को छोड़े देता हूँ जैसे हाथी अपने ऊपर से धूल झाड़ देता है । ३२

❀—

सूक्त २ केन

२६६९ केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं सं भृतं केन गुल्फौ ।
केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लंखौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ १

७० कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य ।
जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्वस्विज्जानुनोः सन्धी क उ तच्चिकेत ॥ २

७१ चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरङ्कबन्धम् ।
श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥ ३

७२ कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य ।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ॥ ४

७३. को अस्य बाहू समभरद्वीर्यङ्करवादिति। अंसौ को अस्य तद्देवः कुसिन्धे अध्यादधौ । ५

७४ कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥ ६

७५ हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥ ७

७६ मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८

७७ प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः। आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥ ९

७८. आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः। राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥ १०

७९ को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस् ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥ ११

८०. को अस्मिन्रूपमदधात्को मह्मानं च नाम च। गातुङ्को अस्मिन्कः केतुङ्कश्चरित्राणि पूरुषे ॥ १२

८१. को अस्मिन्प्राणमवयत्को अपानं व्यानमु। समानमस्मिन्को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे ॥ १३

८२. को अस्मिन्यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे। को अस्मिन्सत्यङ्कोऽनृतङ्कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ १४

८३ को अस्मै वासः पर्यदधात्को अस्यायुरकल्पयत्। बलङ्को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १५

८४. केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे । उषसङ्केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥ १६

८५ को अस्मिन्रेतो न्यदधात्तन्तुरातायतामिति। मेधाङ्को अस्मिन्नध्यौहत्को बाणङ्को नृतो दधौ ॥ १७

८६ केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद्दिवम्। केनाभि मह्ना पर्वतान्केन कर्माणि पूरुषः ॥ १८

८७ केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम्। केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन्निहितं मनः ॥ १९

२६९८ केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम्। केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥ २०
९९ ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम्। ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे॥ २१
९० केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः। केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत्क्षत्रमुच्यते ॥ २२
९१ ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः। ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत्क्षत्रमुच्यते॥ २३
९२ केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता। केनेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २४
९३ ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता। ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम् २५
९४ मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्। मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः ॥ २६
९५ तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः। तत्प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥ २७

९६ ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स् तिर्यङ् नु सृष्टा३ः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २८

९७ यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्। तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥ २९
९८ न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा। पुरं ० [शेष मन्त्र ९६ के समान] ॥ ३०
९९ अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ ३१
२७०० तस्मिन्हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते। तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ३२
२७०१ प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्। पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥ ३३

३३ मन्त्रों का केन सूक्त २। कः = कौन? प्रजापति और ब्रह्म

२६६९ पुरुष की दो एड़ियाँ-मांस-दो टखने-गिट्टे-घुटने-सुन्दर अङ्गुलियाँ-इन्द्रियों के छिद्र-तलवे-कपाल-मध्य का आधार (धड़-नितम्ब) किसने बनाये-जोड़े-पुष्ट किये? क = परमात्मा ने। १

७० पुरुष के टखने नीचे और हड्डी वाले घुटने ऊपर किससे क्यों किये? दो जाँघें अलग कर और दो घुटनों के जोड़ कहाँ कैसे जमाये? यह कः ही जानता है। २

७१ दो घुटनों के ऊपर सिरों से जुड़े शिथिल धड़ में चार (फेफड़े-हृदय-पेट-आँतें) जुड़े हैं। दो नितम्ब-जाँघें किसने बनायीं? जिनसे कुसिन्ध [भूमि पर गतिशील और कु (बुरा मल-मूत्र) बहाने वाला धड़] बड़ा दृढ हो गया! ३

७२ वे देव कितने-कौन से थे जिन्होंने पुरुष की छाती-गरदन के मोहरे चुने-बनाये? कितनो के कितने स्तन-कपोल-कन्धे-पीठ-पसलियाँ चुनीं-जोड़ीं-बनायीं? ४

७३ किसने इसकी बाहें बनायीं कि पराक्रम करे, किस देव ने शरीर के धड़ पर कन्धे रक्खे? ५

७४ किसने सिर में (आँख-कान-नाक-मुख के) ७ छिद्र विशेष गढ़े, जिनकी विजय की महिमा से चौपाये-दुपाये विविध स्थानों पर मार्ग चलते हैं। ६

७५ जिसने जबड़ों में बहुत चलने वाली जीभ और उसमें बड़ी वाणी रखी वह भुवनों में अन्दर आपः (प्रकृति-परमाणु-कर्म-प्राण-जल-आप्तों) की ओढ़नी ओढ़े कौन है? उसे जानो। ७

७६ इनमें जिस पहले देव ने इस पुरुष के मस्तिष्क-माथा-घेँटी-सिर का पिछला भाग -खोपड़ी-जबड़ों का संचय चुनकर द्यौ (आकाश-मोक्ष) पर आरोहण किया है वह इन देवों में कौन सा है? ८

२६७७ बलवान् पुरुष बहुत से प्रिय-अप्रिय [कर्मों], नींद, बाधा, थकान, आनन्दों और हर्षों को किस कारण धारण करता है ? ९

७८ पीड़ा, दरिद्रता, बीमारी, कुबुद्धि पुरुष में कहाँ से होती हैं ? कार्य-सिद्धि, समृद्धि, अहीनता, बुद्धि और उन्नति की प्रकृति कहाँ से होती है ? १०

७९ इस पुरुष में आपः [द्रवों, रक्तधाराओं] को किसने बनाया, जो नाना प्रकार से अच्छी प्रकार से सर्वत्र घूमने वाले, नाड़ियों में गति करने के लिये बनाये, तीव्र, लाल, बैंगनी, लोहे को साथ ले जाने वाले, तांबे और धुएँ के रंग वाले; ऊपर नीचे और तिरछे चलने वाले हैं। ११

८० इस पुरुष में रूप महिमा, गति, चेष्टा, वाणी, ज्ञान और चरित्रों को कौन स्थापित करता है।१२

८१ इस पुरुष में प्राण, अपान, व्यान को किसने बुना और समान उदान नामक प्राणों को कौन स्थापित करता है ? १३

८२ कौन एक देव इस पुरुष में यज्ञ [जीवात्मा तथा देवपूजा, संगति और दान] को, सत्य और असत्य को रखता है ? मृत्यु और अमरता कहाँ से होती है ? १४

८३ किसने इसके लिये वास [निवास स्थान, शरीर और वस्त्र] चारों तरफ धारण कराये? किसने इस [पुरुष योनि] की आयु कल्पित की, बनायी ? बल को किसने इसके लिये दिया, किसने इसका वेग बनाया ? [उत्तर--'क' ने] ? १५

८४ ये जल किसके द्वारा फैलाए हैं ? किसके द्वारा प्रकाश के लिये दिन किया ? उषा को किसके द्वारा अनुकूल किया ? किसने सायं काल दिया। १६

८५ इस [पुरुष] में वीर्य को किसने धारण कराया कि जिससे प्रजातन्तु फैलता रहे ? इसमें मेधा को, वाणी को, नृतों [नृत्यों = शरीर की चेष्टाओं] को कौन धारण कराता है ? १७

८६ पुरुष ने इस भूमि को किससे ढका ? किसने द्यौ को व्याप्त किया किस महान् सामर्थ्य से पहाड़ों को और किसने कर्मों को वश में किया ? १८

८७ (पुरुष) बादल को, विलक्षण सोम (जल, अन्न, प्राण, चन्द्रमा और सोम रस] को, यज्ञ को, और श्रद्धा को किसके द्वारा प्राप्त करता है ? इसमें मन को (चित्त को) किसने रक्खा ? १९

८८ पुरुष किसके द्वारा श्रोत्रिय [वेदज्ञानी आचार्य) को, किसके द्वारा परमेष्ठी (परमात्मा) को,, किसके द्वारा इस अग्नि [सूर्य, विद्युत्, पार्थिव अग्नि] को प्राप्त करता है और किसके द्वारा संवत्सर [काल] को नापता है ? २०

८९ पुरुष ब्रह्म [वेद और ज्ञान] के द्वारा श्रोत्रिय होता, परमेष्ठी और अग्नि को प्राप्त करता है तथा संवत्सर को नापता है। २१

९० [पुरुष] किससे देवों और दिव्य मनुष्यों वाली प्रजा को अनुकूल बनाकर रहता है ? किससे यह क्षत्र बल सत्य और किससे यह दूसरा क्षत्र-भिन्न बल सत्य कहा जाता है ? २२

९१ पुरुष ब्रह्म [वेद और ज्ञान] से देवों और देवजनी प्रजा को अनुकूल बनाकर रहता है, ब्रह्म से यह क्षत्र बल और क्षत्र-भिन्न बल सत्य कहाता है। २३

९२ किसके द्वारा यह भूमि श्रेष्ठ द्यौलोक और यह ऊपर, तिरछा व्यापक अन्तरिक्ष धारण किया जाता है ? २४

२६९३ ब्रह्म [परमेश्वर] के द्वारा यह भूमि श्रेष्ठ द्यौलोक और यह ऊपर, तिरछा, व्यापक अन्तरिक्ष धारण किया जाता है। २५

६४ अथर्व – निश्चल और पवित्र (परमात्मा और योगी) इस (पुरुष) के मूर्धा और जो हृदय है (उसे) सींकर मस्तिष्क से ऊपर सिर के बीच में प्रेरणा दिया करता है। २६

९५ और वह अथर्वा का सिर देवों (इन्द्रियों और दिव्य गुणों) का खजाना ठीक प्रकार से बना सुरक्षित है। उस सिर की प्राण, अन्न और रक्षा करते हैं। २७

९६ जीव निश्चय ही ऊपर (खड़े रूप में उच्च मनुष्य योनि में) और तिरछे (पक्षी आदि योनि में) उत्पन्न किया गया। (यह) पुरुष सब दिशाओं में प्रकट हुआ था, जो ब्रह्म की पुरी (नगरी)को जानता है (जिसमें शयन करने) से वह पुरुष कहाता है। २८

९७ जो निश्चय उस ब्रह्म की अमृत-परिपूर्ण नगरी को जानता है, उसके लिये (ब्रह्म और ब्रह्म के उपासक, ब्रह्म की प्राकृतिक शक्तियाँ), आँख आदि इन्द्रियाँ प्राण और प्रजा को देते हैं। २६

९८ उसको चक्षु आदि प्राण बुढ़ापे से पहले नहीं छोड़ते जो ब्रह्म को उस नगरी को जानता है, जिसके कारण उसे पुरुष कहा जाता है। ३०

९९ आठ चक्रों [यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि] इन योग के ८ अङ्गों; मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्ध-ललना[जिह्वा मूल-में] आज्ञा-सहस्रार सूर्य चक्रोंवाली; नौ दरवाजों [२ आँख २ कान २ नाक १ मुख और १ लिङ्ग १ गुदा से युक्त], देवों [इन्द्रियों और दिव्य गुणों] की नगरी अयोध्या [युद्ध न किये जाने के योग्य यह शरीर है] उसमें सुनहरी ज्योतिर्मय कोश ज्योति से आवृत स्वर्ग सुखदायक है। ३१

२७०० उस तेजोमय, तीन अरों [सत्व, रजस्, तमस्] वाले बन्धनों [शिरा-धमनी-फेफड़ा-हृदय-संयोजक] वाले, और ३ प्रकार [ज्ञान-कर्म-उपासना] से प्रतिष्ठित हिरण्ययकोश में जो जीवात्मा-युक्त पूज्य ब्रह्म है उसको निश्चय ही ब्रह्म को जानने वाले जानते हैं। ३२

२७०१ अतिशय तेज से प्रकाशमान, दुःख हरण करनेवाली मनोहारिणी, यश से चारों ओर घिरी हुई, कभी पराजित न होने वाली बल सम्पन्न ज्योतिर्मयी नगरी [शरीर-हृदय में] ब्रह्मा जीवात्मा प्रविष्ट होता है और उसमें सब ओर से ब्रह्म प्रविष्ट हुआ है। ३३

यह दशम काण्ड का प्रथम अनुवाक और दूसरा सूक्त पूर्ण हुआ।

अनुवाक २(सूक्त ३ से ४)

अनुवाक विषय— मर्यादि विद्या मात्रादि, वनस्पति ईश्वरादि कीर्ति भूति प्राप्त्यर्थ ईश्वरप्रार्थनादि विष-निवारणादि पदार्थ शिक्षा) -महर्षि दयानन्द सरस्वती)

२५ मन्त्रों का सूक्त ३। वरण मणि। सेनापति-यम-औषधि

२७०२ अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा। तेनारभस्व त्वं शत्रून्प्रमृणीहि दुरस्यतः॥ १

३ प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात्।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः॥ २

४ अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति॥ ३

५ अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात्। अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते॥ ४

६. वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः। यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन्॥५

७ स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परिक्षयाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ।। ६
८ अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् । मृत्योरोजीयसो वधाद्वरणो वारयिष्यते ।। ७
९ यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ।। ८
१० वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः । असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ।। ९
११ अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः । तं मायं वरणो मणिः परिपातु दिशोदिशः ।। १०
१२ अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः । स मे शत्रून्वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ।। ११
१३ इमं बिभर्मि वरणमायुष्मान्छतशारदः । स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ।। १२
१४ यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ।। १३
१५ यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान्प्सातो वनस्पतीन् । एवा सपत्नान्मे प्साहि पू० [पूर्ववत्] ।। १४
१६ यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः । एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय पू० ।। १५
१७ तांस्त्वं प्र छिन्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः । य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ।। १६
१८ यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् । एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं
भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ।। १७
१९ यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि । एवा० [पूर्ववत्] ।। १८
२० यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि । एवा० ,, ।। १९
२१ यथा यशः कन्यायां यथास्मिन् संभृते रथे । एवा० ,, ।। २०
२२ यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः । एवा० ,, ।। २१
२३ यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः । एवा० ,, ।। २२
२४ यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् । एवा० ,, ।। २३
२५ यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि । एवा० ,, ।। २४
२६ यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् । एवा० ,, ।। २५

सूक्त ३ (वरण मणि वनस्पति-कवच-वरुण वरना औषधि और सेनापति)

२७०२ हे मनुष्य यह मेरा (मुझ वैज्ञानिक का) वरण मणि और वरणीय सेनापति शत्रुओं का नाशक और बलवान् है। उससे तू शत्रुओं को पकड़ ले और दुराचारी रोग जन्तुओं को नाश कर । १

३ इनको कुचल, मार, नष्ट कर। यह मणि तेरे सामने आगे ले जाने वाला हो। विद्वान् वैद्य वरण से प्रतिदिन होने वाले अत्याचार को दूर करते हैं। २

४ यह वरण मणि सब औषधियों का सार है। हजारों व्यवहार वाला, दुःख-हर्त्ता, तेजोमय है। यह तेरे शत्रुओं को नीचे गिराये। जो तुझ से द्वेष करते हैं उनको पहले दबा कर रखे। ३

५ यह तेरेलिये फैली हुई घातक क्रियाको दूर करेगा और मनुष्य के भय तथा सब पाप से बचायेगा।

६ यह दिव्य गुण युक्त वरण वनस्पति उस रोग को हटाये, जो इस रोगी में प्रविष्ट हो गया है। उसको निश्चय ही व्यवहार-कुशल वैद्य दूर करें। ५

७ यदि तू सोकर बुरे स्वप्न को देखे कि शेर आदि हिंसक पशु तुझ पर आक्रमण कर रहा है तो और बुरी डरावनी बोली वाले पक्षी के डराने, झपटने, कठोर शब्द से, विनाशसे, विनाशक प्रयोग से यह वरण मणि तुझे बचायेगा। ६

८ शत्रुभय से, विनाश से, विनाशक प्रयोग से और भय से तथा मृत्यु के भयानक वध से तुझे यह वरण मणि बचायेगा। ७

९ जो मेरी माता, मेरे पिता, मेरे भाई, मेरे अन्य अपने मनुष्य और हम जो अपराध करें उससे यह देव वनस्पति वरण हमें बचायेगा। ८

१० वरण मणि के द्वारा मेरे शत्रु बन्धु-रहित पीड़ित होकर न जाने योग्य देश में चले जायें। वे घोर अन्धकार को प्राप्त हों। ९

११ मैं स्वयं रोग-रहित और रोग-रहित वस्तुओं को पाने वाला, दीर्घायु और सब पुरुषार्थसे युक्त हूं। यह वरण मणि सब दिशाओं से मेरी रक्षा करे। १०

२ यह मेरा वरण देव [कवच] छाती पर विराजमान होकर मेरे शत्रुओं को उसी प्रकार पीड़ित करे जैसे राजा दस्यु-असुरों को पीड़ित करता है। ११

१३ मैं इस वरण को धारण करता हूं। (जिससे) आयुष्मान् शतायु होकर रहूं। वह मेरे लिये राष्ट्र को, क्षत्र बल को, पशुओं को और ओज को धारण कराये। १२

१४ (हे सेनापति), जैसे वायु वेग से वृक्षों, वनस्पतियों को तोड़ देता है, वैसे ही मेरे पहले बने हुए और दूसरे शत्रुओं को तू तोड़ डाल। यह वरण तेरी रक्षा करे। १३

१५ (हे सेनापति), जैसे हवा और आग वृक्षों वनस्पतियों को खा जाते (नष्टकर देते) हैं वैसे ही मेरे पूर्व के और अन्य शत्रुओं को तू खा जा (नाश कर)। वरण तेरी रक्षा करे। १४

१६ हे सेनापति, जैसे आँधी से क्षीण किये पेड़ झुक जाते और गिर कर लेट जाते हैं, ऐसे ही तू मेरे शत्रुओं को गिराकर नष्टकर। यह वरण तेरी रक्षा करे। १५

१७ हे वरण, तू उनको निश्चित समय से पहले, आयु से पहले ही, नष्ट कर जो इसके पशुओं और राष्ट्र के भक्षक हैं। १६

१८ जैसे सूर्य प्रकाशित होता है और इसमें तेज स्थापित है। ऐसे ही मेरे लिये वरण मणि कीर्ति और सम्पत्ति को दे तथा मुझे तेज से अच्छी प्रकार बढ़ाये और यश स मुझे अच्छी प्रकार संयुक्त करे। १७

१९ जैसे यश चन्द्रमा और दर्शनीय आदित्य में विद्यमान है।··· १८

२० जैसे यश पृथ्वी पर और इस अग्नि में विद्यमान है।··· १९

२१ जैसे यश कन्या में (विवाह के समय) और इस सजे हुए रथ में है।··· २०

२२ जैसे यश सोम-पान और मधुपर्क में है।···२१

२३ जैसे यश अग्नि-होत्र में और इस वषट्कार (स्वाहा-आहुति) में है।··· २२

२४ जैसे यश यजमान में और इस यज्ञ में स्थापित है।··· २३

२५ जैसे यश प्रजापति (शासक) में और इस परमेष्ठी (राष्ट्रपति) में है।··· २४

२७२६ जैसे देवों में अमृत (विद्वानों के लिये मोक्ष) और इनमें सत्य स्थापित है।··· २५

२६ मन्त्रों का सूक्त ४ । गरुत्मान्- तक्षक

२७२७ इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथः स्थाणुमारदथार्षत् ॥ १

२८ दर्भः शोचिस् तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः । रथस्य बन्धुरम् ॥ २

२९. अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च। उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ३

३० अरङ्घुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् । उद० [पूर्व वत्] ॥ ४

३१ पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् ।
पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ॥ ५

३२ पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥ ६

३३ इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥ ७

३४ संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् ।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥ ८

३५ अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥ ९

३६ अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च ।
इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् ॥ १०

३७ पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः ।
इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥ ११

३८ नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा ।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥ १२

३९ हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥ १३

४० कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम ।
हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥ १४

४१ आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥ १५

४२ इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योभा ॥ १६

२७४३ इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत्पृदाकुं च पृदाक्वम्। स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम्।।१७

४४ इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव। तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित्तेषामसद्रसः ।। १८

४५ सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम्। सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् ।। १९

४६ अहीनां सर्वेषांविषं परावहन्तु सिन्धवः। हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासःपृदाकवः।।२०

४७ ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया। नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् ।। २१

४८ यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत्। कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् ।।२२

४९ ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आ बभूवुः ।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम ।। २३

५० तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि। अधस्पदेन ते पदमाददे विषदूषणम् ।। २४

५१. अङ्गादङ्गात्प्रच्यावय हृदयं परिवर्जय । अधा विषस्य यत्तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ।। २५

२७५२ आरे अभूद्विषमरौद् विषे विषमप्रागपि । अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् । दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत ।। २६

सूक्त ४ । सर्प-विष दूर करना

२७२७ बिजली की गति (औषधि) पहली, सूर्य-भूमि आदि देवों की दूसरी, जल की तीसरी है। साँपों की गति हट जाती, विष ठहरता और नष्ट होता है । १

२८ दर्भ-अङ्गारा-तरूणक[रोहिष -अश्ववाल-काँस-मूँज ये अघाश्व-उग्र सर्प-विष-गतिकेबन्धक हैं ।२

२९ हे सफेद पुनर्नवा सरसों-आक ! तू जड़-फूल-लेप-भक्षण से उग्र सर्प-विष को जल-तैरती लकड़ी के समान निर्बल पानी सा कर दे। ३

३० न्योला डूबकर-ऊपर आकर, अलंघुर [कटुतुंबी-आक]दस्त-वमन के द्वारा बार-बार बोलता है कि तू विष को तैरती लकड़ी के समान निर्बल कर दे । ४

३१ पैद्व [न्योला-आक-कस्तूरी-काँस-तलणी जन्तु] कर्णील-सफेद-काले साँप-रथर्वी-पृदाकुओं को मारता और सिर कुचलता है। ५

३२ हे पैद्व ! तू पहले आगे जा, हम तेरे पीछे जायें उस मार्ग से साँप दूर भगा ।६

३३ यहाँ पैद्व पैदा होता, जल इसका स्थान है, ये शीघ्रगामी शक्तिशाली सर्प-हन्ता के पद हैं। ७

३४ साँप बन्द मुख न खोले, खुला बन्द न करे, इस खेत में नर-मादा दो साँप हैं, दोनों निर्विष हैं । ८

३५ यहाँ पास-दूर जो साँप हैं वे अरस हैं। मैं आया हुआ साँप डण्डे से,बिच्छू हथौड़े से मारूँ। ९

३६ घोड़े के समान दौड़ कर काटने वाले अघाश्व और स्वज नामक चिपटकर काटने वाले दोनों साँपों की यह दवा है। इन्द्र (इन्द्रावरुणी = इन्द्रायन) नामक औषधि तथा अश्वान्तक (अश्मन्तक) और करवीर तथा सफेद आक मुझ पर आक्रमण करने वाले साँप को नष्ट करें। १०

३७ हम स्थिर प्रभाव वाले, स्थिर वीर्य वाले पैद्व की कामना करते हैं, काम में लायें जिससे कि ये फुंकारनेवाले पृदाकू सर्प पीछे हटकर सोते हुए या चिन्तामग्न से होकर स्तम्भित खड़े रह जाते हैं ।११

२७३८ आघातकारी इन्द्र (बिजली और इन्द्रायन औषधि) से ताडित साँप प्राणहीन तथा विषहीन होजाते हैं। इन्द्र मारता है, हम भी मारते हैं। १२

२७३९ तिरछी धारियों वाले साँप मारे जायें। पृदाकु साँप पीस डाले जायें। दर्वि (फनियर), करिक्रत (करैत) काले नाग और चितकबरे साँप को दाभों और कुशाओं आदि सर्पनाशक पदार्थों से उनके उत्पत्ति स्थान दर्भ आदि में मारा जाय। १३

४० किरात वर्ग की जंगल में होने वाली कुमारिका (बन्ध्यककोंटक=बाँझ ककोड़ा) साँप की दवा पहाड़ों के शिखरों पर, ऊँचे टीलों के ढेरों पर लोहे की कुदारियों-खुरपियों से खोदी जाती है।१४

४१ यह प्रभावशाली वैद्य के रूप में अपराजिता (बला मोटा नागदमनी, और विष्णुक्रान्ता कोयल बूँटी) नामक औषधि प्राप्त हुई है। वह निश्चय ही स्वज (लिपटने वाले और काटने वाले) साँप की और बिच्छू की दवा है। १५

४२ विद्युत् और इन्द्रायन औषधि, सूर्य और जल, वायु के झोंके और बादल(अर्थात न-बरना-दोनों घातक (गोकर्णी-मूर्वाकन्द और दारु हलदी औषधियां) मेरे सर्पविष को नष्ट करें। १६

४३ इन्द्र (बिजली और इन्द्रायन औषधि) पृदाकु साँप और पृदाक्व साँपिन को, स्वज-तिरश्चिराजी, कसर्णील और दशोनसि नामक सर्पों को नष्ट करती है। १७

४४ हे महाहिसक साप! तेरे उत्पन्न करने वाले (महासर्प तक्षक और उसके विष) को विद्युत् और इन्द्रायण औषधि पहले नष्ट कर देती है, उनमें कौन सा विष रह जाता है? (कोई नहीं)। १८

४५ सांपों के सिरों को मैं अवश्य पकड़ता हूं। नदी के मध्य में दूर जाकर साँप के विष को धो डालता हूं जैसे तट निवासी मले शरीर को धो डालता है। १९

४६ सब साँपों के विष को नदियाँ दूर बहाकर ले जायें। इस प्रकार तिरश्चिराजि सर्प मार डाल जायें और पृदाकुओं को पीस डाला जाये। २०

४७ मैं उत्तम औषधियों को उत्पादक भूमियों और धान्योंके समान चुनता हूं, विष-नाशक के समान उन औषधियों को प्रयुक्त करता हूं। हे सर्प, तेरा विष बाहर निकल जाये। २१

४८ जो अग्नि में, सूर्य में, पृथ्वी में, औषधियों-कन्दों में और कनक धतूरा [सुहागा] आदि में जो विष है वह सर्प विष को साथ लेकर निकले इस प्रकार (हे सर्प) तेरा विष बाहर जाये। २२

४९ जो अग्नितात, से उत्पन्न दाहक विषवाले, औषधियों के पास जलों में उत्पन्न, बिजली के समान तेजी से हमला करने वाले साँप हैं जिनकी जातियाँ और शरीर प्रायः बड़े हैं उन साँपों के लिये नमः = [स्थावर विष और वज्र से हम प्रतिकार करें]। २३

५० तौदी, कन्या, घृताची (घृतकुमारी और इलायची के) ये नाम हैं। मैं उनके नीचे भूमि में गयी जड़ के साथ विषनाशक जड़ को प्रयुक्त करूँ। २४

५१ (हे रोगी) तू अङ्ग-अङ्ग से (शिरा छेदन कर) रक्त को निकाल, हृदय को छोड़ दे। इसके पश्चात् तेरा जो विष का वेग है वह (मलमार्ग से) नीचे आये। २५

२७५२ सर्पविष(चूषण और छेदन द्वारा) काटे घाव से दूर हो जाये, २ बन्धन द्वारा जहां का तहां रुक जाये, ३ साँप के विष से बनी औषधियाँ या अन्य स्थावर विष में मिलकर नष्ट हो जाये, ४ अग्नि काटे घाव में ही जला दे, ५ सोम औषधि या शान्तिकारक अन्य औषधि (मुख से वमन और अधोमार्ग से विरेचन द्वारा) बाहर निकाले, ६ काटने वाले साँप के पास ही फिर वापस चला जाये जिससे वह साँप स्वयं मर जाये। २६

॥ इति द्वितीयो अनुवाकः समाप्तः ॥

—❀—

अथ तृतीयो अनुवाक: [सूक्त ५-६]

विषय — ईश्वरेन्द्रो नौ-चलादि, द्वेषत्यागादि, दुष्ट वधादि, विष्णुक्रम पृथिव्यादि, विभागकरणादि प्राणयाचनादि, शिल्पादि, आज्य मध्यादि, राज वरुणमणिधारणादि पदार्थविद्या (दयानन्द सरस्वती)

४ विभागों और ५० मन्त्रों का सूक्त ५। आप: (आप्त जन और जल)। २४ मन्त्रों का विभाग १

सक्त ५

२७५३ इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सहस्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ। जिष्णवे योगाय ब्रह्म-योगैर्वो युनज्मि ॥ १

५४ इन्द्रस्यौज० [पूर्ववत्] क्षत्र .. " ॥ २

५५ " इन्द्र ... " ॥ ३

५६ " सोम .. " ॥ ४

५७ " अप्सु... " ॥ ५

५८ " विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप: स्थ ॥ ६

५९ अग्नेर्भाग स्थ अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चोअस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये॥ ७

६० इन्द्रस्य० [पूर्ववत] ॥ ८

६१ सोमस्य० " ॥ ९

६२ वरुणस्य० " ॥ १०

६३ मित्रावरुणयोर्० ॥ ११

६४ यमस्य० ॥ १२

६५ पितॄणां० ॥ १३

६६ देवस्य सवितुर् ॥ १४

६७ यो व आपो अपां भागो३प्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजन:। इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि। तेन तमभ्यतिसृजामो यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्म:। तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ १५

६८ यो व आपो अपामूर्मिर्० [पूर्ववत्] ॥ १६

६९ यो व आपो अपां वत्सो० " ॥ १७

७० यो व आपो अपां वृषभो० ॥ १८

७१ यो व आपो अपां हिरण्यगर्भो० ॥ १९

७२ यो व आपो अपामश्मा पृश्निर्दिव्यो० ॥ २०

७३ यो व आपो अपामग्नयो० ॥ २१

७४ यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम। आपो मा तस्मात्सर्वस्माद् दुरितात्पात्वंहस: ॥ २२

७५ समुद्रं व: प्रहिणोमि स्वां योनिमपीतन। अरिष्टा: सर्वहायसो मा च न: किंचनाममत् ॥ २३

७६ अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत्। प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीका: प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥ २४

सूक्त ५ का विभाग १ (विजय प्राप्ति और आप्त जनों के लिये उपदेश तथा जल)

२७५३-२७५८ (६ मन्त्र) हे आप्त-जल ! तुम इन्द्र (परमेश्वर, आत्मा, सूर्य, राजा, सेनापति और बिजली) की शक्ति के ओज हो, सहनशीलता हो, बल हो, वीर्य हो, धन ऐश्वर्य हो। मैं तुम्हारी विजय के लिये १ ब्रह्म (वेद और विज्ञान) के उपायों, २ क्षात्र-बल, ३ इन्द्र (विद्युत्) की शक्तियों, ४ सोम आदि ओषधियों के साधनों और ५ बल आदि समस्त उपयोगी साधनों के साथ संयुक्त करता हूँ। सब प्राणी मेरे पास आयें। आप्त प्रजाजन भी मेरे कार्यों में सम्मिलित हों। १-६

२७५९-२७६६ (८ मन्त्र) हे श्रेष्ठ आप्तो ! १ अग्नि (परमात्मा, भौतिक अग्नि, अग्रणी नेता, राजा, शासक, सेनापति और विद्वान् पुरुष) के भाग तेज को धारण करने वाले हैं। २ तुम इन्द्र के भाग (विद्युत के तेज को धारण करने वाले) हो, ३ सोम (चन्द्र) की शान्ति को धारण करने वाले हो, ४ वरुण (जल) की शीतलता के धारक हो, ५ मित्र-वरुण (प्राण-अपान, आक्सीजन-हाइड्रोजन) की शक्ति रखने वाले हो, ६ तुम यम (न्यायाधीश) के भाग (न्याय करने वाले) हो, ७ पितरों (पालन करने वाले पितामह आदि के और ऋतुओं) के भाग हो, (उनके समान प्रजा के पालने वाले हो) और ८ देव सविता (सूर्य के समान तेजस्वी हो)। दिव्य प्रजाओं के और श्रेष्ठ कर्मों के सामर्थ्य और तेज को हममें धारण कराओ। मैं तुम्हें प्रजापति के अधिकार से इस राष्ट्र के उपकार के लिये प्रतिष्ठित करता हूँ। ७-१४

२७६७-२७७३ (७ मन्त्र) हे आपः ! जो तुम्हारी १ जल सीमा के अन्दर जलसम्बन्धी सेना का भाग है, २ जलों की लहर (पनडुब्बी सेना) है, ३ जलों का प्यारा बच्चा (जहाज आदि) है, ४ जलों का वृषभ (सुख वर्षक जल-सेनापति) है, ५ जलों का हिरण्य गर्भ (मोती आदि चमकीले रत्नों का भंडार) है, ६ जलों का व्यापक, सूर्य के समान प्रकाशमान विद्युत् भंडार (हाइड्रो-इलेक्ट्रिक) है, और ७ जलों की अग्नियाँ (आग्नेयास्त्र, शस्त्र-भंडार) हैं। ये सब पदार्थ यज्ञ (देव-पूजा, संगठन) में लगने वाले और विद्वानों तथा सैनिकों के नियोजक हैं। ये सब मैं उस राष्ट्र को सौंपता हूँ ! उसका मैं कभी अपमान न करूँ। उनके बल पर हम उस दुष्ट पर आक्रमण करें उसे दूर करें और हराकर छोड़ें जो हमसे द्वेष करता है और जिसने हम द्वेष करते हैं। मैं इस वेद ज्ञान, इस कर्म, इस संकल्प बल और इस वज्र (शस्त्र-भंडार और सशस्त्र सेना) से उस दुष्ट का वध करूँ और विनाश करूँ। १५-२१

२७७४ तीन वर्ष के उद्योगों (ज्ञान, कर्म, उपासना) में हम जो कुछ झूठ बोले हों उस सब पाप से आपः मुझे बचावें। २२

७५ मैं तुम्हें समुद्र की ओर आगे बढ़ाता हूँ। अपने-अपने स्थान को जाओ। सम्पूर्ण आयु तक रोग-रहित होओ। हमें कोई पीड़ा न हो। २३

७६ निर्दोष आपः हमारे दोष को दूर करें। उत्तम विश्वास वाले हमारे दुर्गुण और पाप को दूर करें। बुरे स्वप्नों, बुरे संस्कारों और मैल को दूर बहायें। २४

सूक्त ५ का १२ मन्त्रों का विभाग २। विष्णु

२७७७ विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोग्नितेजाः, पृथिवीमनु विक्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु ।। २५ ।

७८ विष्णोः क्रमोसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः अन्तरिक्षमनुविक्रमेहमन्तरिक्षात्तं...।।२६

२७७९ ,, द्यौसंशितः सूर्यतेजाः। दिवमनु विक्रमेऽहं दिवस्तं० [पूर्ववत्]॥ २७
८० ,, दिक्संशितो मनस्तेजाः। दिशोनु विक्रमेऽहं दिग्भ्यस् तं ,, ॥ २८
८१ ,, आशासंशितो वाततेजाः। आशा अनु विक्रमेऽहमाशाभ्यस् तं० ,, ॥ २९
८२ ,, ऋक्संशितः सामतेजाः। ऋचो ऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं० ,, ॥ ३०
८३ ,, यज्ञ-संशितो ब्रह्म-तेजाः। यज्ञमनु वि क्रमेहं यज्ञात् तं० ,, ॥ ३१
८४ ,, ओषधीसंशितो सोमतेजाः। ओषधीरनु विक्रमेहमोषधीभ्यस्तं० ,, ॥ ३२
८५ ,, अप्सु-संशितो वरुणतेजाः। अपोनु वि क्रमेहमद्भ्यस्तं० ,, ॥ ३३
८६ ,, कृषि-संशितो अन्नतेजाः। कृषिमनु वि क्रमेहङ्कृष्यास्तं० ,, ॥ ३४
८७ ,, प्राण-संशितः पुरुष-तेजाः। प्राणमनु वि क्रमेहं प्राणात् तं० ,, ॥ ३५
२७८८ जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः। इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ।। ३६

सूक्त ५ का १२ मन्त्रों का विभाग २

२७७७–२७८७ (११ मन्त्र) (हे शासक), तू विष्णु [व्यापक, परमात्मा, सूर्य, और यज्ञ] के अनुसार चलने वाला और शत्रुओं का नाश करने वाला है। जो [रोग, द्वेष और दुष्ट]हम [प्रजाजनों] से द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं वह जीवित न रहे। और उसको प्राण छोड़ दे [समाप्त हो जाये]। (इतना सब में समान है।)

तू पृथ्वी पर तीक्ष्ण और अग्नि के समान तथा आग्नेय अस्त्रों से तेजस्वी है। मैं पृथ्वी पर पराक्रम करूँ। हम पृथ्वी से उस [दुष्ट, शत्रु, रोग, दोष] को दूर कर दें। २५

तू अन्तरिक्ष से तीक्ष्ण, वायु-समान तेजस्वी है, मैं अन्तरिक्ष में विक्रम करूँ, उसे निकाल दूँ। २६

तू द्यौ में तीक्ष्ण, सूर्यवत् तेजस्वी है, मैं द्यौ में विक्रम करूँ ...। २७

तू दिशाओं में तीक्ष्ण, मन से तेजस्वी है, मैं दिशाओं में विक्रम करूँ ... । २८

तू उपदिशाओं में तीक्ष्ण, वात के तेज वाला है, मैं उनमें विक्रम करूँ ... । २९

तू ऋग्वेद से तीक्ष्ण, सामवेद से तेजस्वी है, मैं ऋचाओं के अनुकूल विक्रम करूँ, उनसे उसे हटायें। ३०

तू यज्ञ से तीक्ष्ण, ब्रह्मवत् तेजस्वी है। मैं यज्ञ में अनुकूल चलूँ, हम यज्ञ से उसे हटायें। ३१

तू औषधियों से तीक्ष्ण, सोम से तेजस्वी है। मैं औषधियों के अनुकूल चलूँ। उनसे उसे हटायें। ३२

तू जल में तीक्ष्ण, जल-सेना-पति-समान तेजस्वी है। मैं जल में विक्रम करूँ ... । ३३

तू खेती में तेज, अन्न से तेजस्वी है। मैं खेती में विक्रम करूँ। खेती से दोष हटायें। ३४

तू प्राण से तीक्ष्ण है आत्मा से तेजस्वी है, मैं प्राण के अनुकूल विक्रम करूं, शत्रु को प्राण-रहित करूँ। ३५

२८८७ जीत हमारी प्रभाठा-फल हमारा हो हम सब शत्रु-सेनाएँ रोक दें। मैं अमुक गोत्र के अमुक स्त्री के पुत्र (शत्रु) के वर्च-तेज-प्राण-आयु लपेट दूँ (नाश कर दूँ) इसको नीचे गिरा दूँ। ३६

टिप्पणी— नाम न लेकर अमुक कहने से यही मूल अथर्व वेद सिद्ध होता है।

५ मन्त्रों का तीसरा विभाग

२७८९ सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम्। सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम्। ३७
२७९० दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते। ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम्॥ ३८
९१ सप्त ऋषीनभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ,, ॥ ३९
९२ ब्रह्माभ्यावर्ते। तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ,, ॥ ४०
९३ ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ,, ॥ ४१

८९ मैं सूर्य के व्रत पर चलूँ। दक्षता प्राप्त करूँ। वह मुझे धन और ब्राह्मण-तेज दे। ३७
९०-९३ मैं प्रकाशमाना दिशाओं में घूमूँ, ७ ऋषि-वेद-ब्राह्मणों के पास जाऊँ। वे ,,। ३८-४१

विभाग ४ में मन्त्र ९

२७९४ यं वयं मृगयामहे तं वधैस्तृणवामहै। व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम्॥ ४२
९५ वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि। इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद्देवी सहीयसी॥ ४३
९६ राज्ञो वरुणस्य बन्धोसि। सोमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान॥ ४४
९७ यत्ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु। तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते। ४५
९८ अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि। पयस्वानग्न आगमं तं मा संसृज वर्चसा॥ ४६
९९ सं माग्ने वर्चसा सृज संप्रजया समायुषा। विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः॥ ४७
२८०० यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान्॥ ४८
२८०१ परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि॥ ४९
२८०२ अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान्।
सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनुजानन्तु विश्वे॥ ५०

२७९४ जिस शत्रु को ढूँढ़ें उसे वज्रों से नष्ट करें। वेदानुसार उसे राजा के अधिकार में दे दें। ४२
९५ शासक को दो दाढ़ों (कानून-पुलिस) के द्वारा शस्त्र अपराधी को पकड़ में रक्खे, यह आहुति (पकड़) उसे खा जाये। शासक दीप्त-दिव्य-बली हो। ४३
९६ (हे सेनापति) तू राजा वरुण का बन्धन है, उस माता-पिता के पुत्र (शत्रु) को अन्न-प्राण में बाँध (जीवित रखते हुए पकड़)। ४४
९७ हे भूपति-प्रजापति ! जो तेरा अन्न पृथिवी में भरा है उसका भाग हमें दे। ४५
९८ हम दिव्य आपः (जल-आप्तों) को माँगें-पूजें, हम रस से पूर्ण हों। हे अग्रणी ! मैं पयः (दूध-गति) वाला होकर आया करूँ, मुझे वर्च से युक्त कर। ४६
९९ हे राजन्-आचार्य ! मुझे वर्च-प्रजा-आयु से युक्त कर। विद्वान् मेरी इस प्रार्थना को जानें। राजा ऋषियों-सहित मेरे काम को जाने। ४७
२८०० हे अग्रणी ! जो पति-पत्नी सदा लड़ें, वक्ता वाणी कटु बोलें तो उन यातना-कारियों को मन के

मन्यु की वाणों की झड़ी (फटकार) से हृदय मे वेध। ४८

२८०१ हे अग्रणी! तू तप-चक्र से यातना-कारियों और राक्षसों को दूर मार भगा। मूढ़ देवों को तेज से और दीप्त पर-प्राण-तृप्तों को दूर और नष्ट कर। ४९ [यह ८-३-१३ में भी है]

२ विद्वान् मैं इस शत्रु का सिर भेदन के लिए चौफाला वरुणास्त्र वज्र छोड़ूं। वह इसके सब अंग नष्ट करे। मेरे इस कर्म को सब विद्वान् जानें। ५०

३५ मन्त्रों का सूक्त ६। बृहस्पति। फाल मणि (हल-अन्न-परमात्मा-नियम)

२८०३ अरातीयतो भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः। अपि वृश्चाम्योजसा ॥ १

४ वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति। पूर्णो मन्थेन मागमद्रसेन सह वर्चसा ॥

५ यत्त्वा शिक्वःपरावधीत्तक्षा हस्तेन वास्या। आपस्त्वा तस्माज्जीवलाःपुनन्तु शुचयःशुचिम् ३

६ हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत्। गृहे वसतु नोऽतिथिः ॥ ४

७ तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे। स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥ ५

८ यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणि फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। [इतना १० तक समान है]

तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि॥ ६

९ ... तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम्। सोस्मै बलमिद् दुहे ०भू [पूर्ववत्]॥ ७

१० ... तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे। सो अस्मै वर्च इद् दुहे० ,,॥ ८

११ ... तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद्दिशः। सोस्मै भूतिमिद् दुहे० ,,॥ ९

१२...तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोजयद्दानवानां हिरण्ययीः। सोअस्मैश्रियमिद् दुहे ० १०

१३ यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे। सो अस्मै वाजिनं दुहे भू० ,,॥ ११

१४.य...वे। तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः। स भिषग्भ्यां महो दुहे भू०॥ १२

१५. य...वे। तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः। सो अस्मै सूनृतां दुहे०॥१३

१६ य...वे। तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः। स आभ्योऽमृतमिद् दुहे०॥ १४

१७ य...वे। तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम्। सो अस्मै सत्यमिद् दुहे० ॥१५

१८ य...वे। तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाँल्लोकान् युधाजयन्। स एभ्योजितिमिद् दुहे०॥१६

१९ य...वे। तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम्। स आभ्यो विश्वमिद् दुहे० ॥ १७

२० ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत। संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं विरक्षति॥ १८

२१ अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत। प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः ॥१९

२८२२ अथर्वाणो अबध्नताथर्वणो अबध्नत।

तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस् तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २०

२८२३ तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयात् । तेन त्वं द्विषतो जहि ।। २१

२४ यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम । स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ।। २२

२५. य ... आगमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ।। २३

२६. य ... आगमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ।। २४

२७ य ... आगमत् मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह ।। २५

२८ य ... आगमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह ।। २६

२९ य ... आगमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह ।। २७

३० य ... आगमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ।। २८

३१ तमिमं देवता मणि मह्यं ददतु पुष्टये । अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ।। २९

३२. ब्रह्मणा तेजसा सह प्रतिमुञ्चामि मे शिवम् । असपत्नः सपत्नहा सपत्नान्मेऽधराँ अकः ।। ३०

३३ उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः । यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते । स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ।। ३१

३४ यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा । स ... मूर्धतः ।। ३२

३५. यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति । एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं विरोहतु ।। ३३

३६. यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम । तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ।। ३४

७ एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।

२८३८ तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ।। ३५

सूक्त ६ । फाल मणि (फल-दाता ईश्वर), हल-जुती खेती, अन्न

२८०३ मैं अदानशील, दुष्ट हृदय वाले, द्वेषी शत्रु के सिर (अभिमान) को भी अपने ओज से छेदन कर दूँ । १

४ हल से पैदा यह रत्न अन्न मेरे लिए कवच का काम करेगा । यह रत्न, मट्ठा और तेज से भरा मेरे पास आये । २

५ हे फाल ! जो तुझे शिक्षित बढ़ई दराँती-कुदार आदि से छेदें तो पवित्र जीवन-प्रद जल तुझे शुद्ध-पवित्र करे । ३

६ सोना देने वाला यह मणि श्रद्धा-यज्ञ-महत्त्व को दे, हमारे घर में अतिथि बसे । ४

७ उसके लिए घी-जल-शहद अनेक अन्न दें । जैसे पिता पुत्रों के लिए वैसे देवों से आकर यह मणि अन्न कल-कल (भविष्य में) अधिक-अधिक कल्याण करे । ५

८ बृहस्पति (परमात्मा-विद्वान्-सेनापति) जिस उग्र, घी देने वाले, खैर से बने फाल मणि (हल रूपी रत्न) को बल पाने के लिए बाधता (बनाता) [इतना अंश आगे दशम मन्त्र तक समान है] उसे अग्नि (अग्रणी मन्त्री, भूमिस्थ आग) ग्रहण करती है, वह इनके लिए बार बार कल कल [आनेवाले दिनों] के लिए घी दुहता [देता] है । उससे तू शत्रुओं को मार । ६

समाचार

महान् शोक है कि हमारे मान्य सदस्य वेदर्षि
वेदाचार्य प० विश्वनाथ वेद-मार्तण्ड देहरादून
की ११ मार्च १९९१ को १०३ वर्ष की आयु में मुक्ति हो गयी।

शोक है कि संगीतज्ञ आर्योपदेशक प्रज्ञाचक्षु प० रामप्रसाद शर्मा लखनऊ का २७ मार्च को, श्री स्वा. वेदानन्द भजनीक सोनीपत का १२ फरवरी की दुर्घटना में देहान्त हो गया।
शोक है कि डा० श्याम मलिक रीवां, वालकृष्ण शर्मा अशआबाजार, इलाहाबाद, का ६-२-९१ को, श्री कुअरलाल आर्य जसवंतनगर २८-२-९१, श्री जयदेवसिंह [पुत्र श्री वल्लभसिंह का देहान्त होगया।
शोक है कि डा० सत्यव्रत मुलिया महाराष्ट्र [श्री वेदभूषण के भाई] का ७-३-९१ को देहान्त होगया।

विश्ववेदपरिषद् की बैठक वैशाख कृ. १२. शनि ११ मई ९१ को

वेद-सदन सी ८१७ महानगर लखनऊ में प्रातः ८ बजे से होगी। कृपया सभी सम्मिलित हों।-मन्त्री
नि:शुल्क आर्ष गुरुकुल बब्लूर, कामारेडडी (आ.प्र.) बारह वर्ष से चल रहा है। प्रवेशार्थ लिखें।
नवीन लोकसभा और विधान सभाओं के चुनाव मई के अन्त में होंगे, सभी आर्यसभा को वोट दें।
इराक में पराजय के बाद युद्ध समाप्त होकर गृह-युद्ध आरम्भ हुआ।
श्री प्रह्लादकुमार-स्मारक वैदिक संगोष्ठी आर्य समाज हनुमानरोड दिल्ली में मुख्य वक्ता डा० भवानीलाल भारतीय ने निबन्ध पढ़ा, अध्यक्ष श्री मनोहर विद्यालंकार, उद्घाटक श्री पूर्णानन्द वद्यo थे।
'श्री मेघजी भाई आर्य साहित्य पुरस्कार' ११०००) रुपयों का आर्यसमाज सान्ताक्रुज बम्बई ने प्रतिवर्ष जुलाई में सर्वोत्तम आर्य लेखक को देने का यह तीसरा पुरस्कार आरम्भ किया है। आवेदक गत तीन वर्षों में प्रकाशित ग्रन्थ के प्रथम संस्करण की तीन प्रतियां १० अप्रैल १९९१ तक 'संयोजक आर्य साहित्य पुरस्कार, आर्यसमाज सान्ताक्रुज प., बम्बई ४०००५४' को भेजें।-कैप्टन देवरत्न आर्य

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष -५-९१ को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

शतपथ, निरुक्त, अष्टाध्यायी, वेदार्थपारिजात-खण्डन

अथर्ववेद, सामवेद के ब्राह्मण

अनुवादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड १-२, २०), वेदार्थपारिजातखण्डन साम वंशब्राह्मण १०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००) मंगाइये।

—वीरेन्द्र सरस्वती, अध्यक्ष, ओ३मित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी ८१७ महानगर लखनऊ ६

वैदिक दैनन्दिनी ज्येष्ठ २०४८ विक्रम

तिथि कृ१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु१ २ ३ ४ ५ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १५ पू

वार बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु

न ज्ये मू पू ध पू षा उ श्र श त पू भ उ भ रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु म पू फ उ फ ह चि स्वा वि अनु अनु ज्ये मू

ता.म २९ ३० जू१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७

१ जुलाई से मूल्य बढ़ेगा।

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६ उ० प्र०, भारत, पिन २२६००६

सेवा में क्रमांक

श्री लाइब्रेरियन

स्थान गुरुकुल कांगड़ी

पत्रालय पिन विश्वविद्यालय

जनपद (हरिद्वार)

प्रदेश

ओ३म्

ऋग्वेद यजुर्वेद

वर्ष १५ अंक ६

अथर्ववेद खण्ड १६ साम वेद
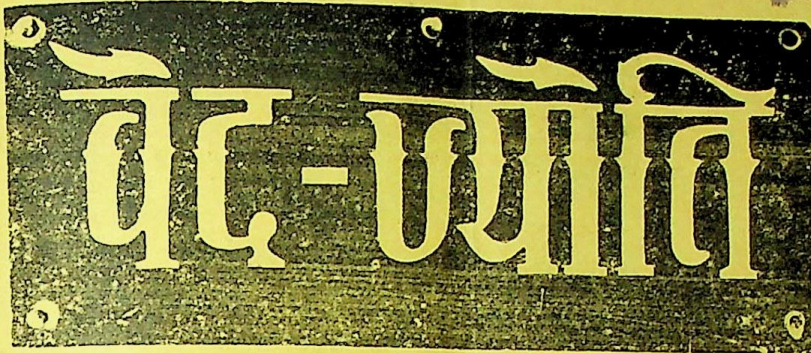
ज्येष्ठ २०४८ जून १९९१ अथर्ववेद

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वेद–मानव–सृष्टि–संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९२, दयानन्दाब्द १६७

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्

सहायक— विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१

दिल्लीकार्यालय– श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, सी६ हिल व्यू बसन्तविहार नयीदिल्ली५७, दूरभाष ६०१४५२

नव वर्ष मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०९२ शुभ हो !

सत्यार्थप्रकाश–मन्त्र–व्याख्या

क्रमाङ्क ६८। ऋषिका– सर्पराज्ञी कद्रू, देवता– अग्नि, सूर्य, आत्मा, छन्द– गायत्री, स्वर– षड्ज

आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरम् पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ।

६ बार ऋ १०–१८९–१, य ३–६, साम ६३०, १३७६; अथर्व ३–३१–१, २०–४८–४

प्रश्न— पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर हैं ? उत्तर–घूमते हैं। प्रश्न– कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है, और पृथिवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है, सूर्य नहीं घूमता इस में सत्य क्या माना जाय ? उत्तर– ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेद में लिखा है, कि–

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिए भूमि घूमा करती है। इस मन्त्रकी व्याख्या महर्षिने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका और यजुर्वेद-भाष्य में भी की है। (स० ८)

विश्व में वेद–प्रचार कीजिए [आचार्य रामकृष्ण शर्मा, खुरजा]

आर्यजनो! सम्पूर्ण विश्वमें पावन वेदप्रचार कीजिए. वेदज्ञानकी दिव्य विभासे आलोकित संसार कीजिए।
हो प्रचंडपाखंड नष्ट सब आर्य बने यह वसुधा सारी, चारों वेदोंसे अनुमोदित सत्वर श्रेष्ठ सुधार कीजिए।

कर सबका उपकार देश में वेद का दीप जलाया तू ने [स्वा. स्वरूपानन्द दिल्ली]

कर पावन वेद प्रकाश ऋषि, भूतल–तम दूर भगाया तू ने।
आर्य समाज बनाया वेदामृत, पीयूष पिलाया तू ने ॥
मिथ्या मत पाखंडों के स्तम्भ पकड़कर हिलादिये। फिरसे वैदिक बगियोंमें फूल सुगन्धित खिलादिये ॥
कहे 'स्वरूपानन्द' देश में वेद का दीप जलाया तू ने ॥
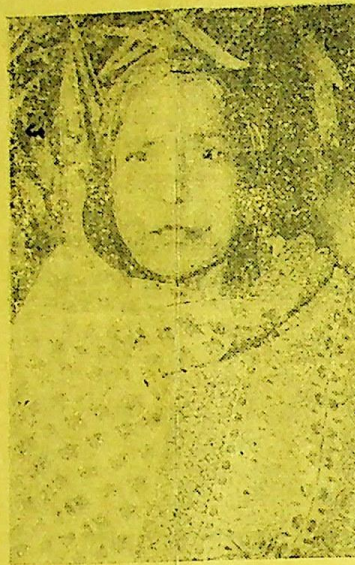
४.६.६० को दिवङ्गत श्रीमती मेवातीदेवी

स्वर्गीया धर्मपत्नी की स्मृति में श्री वेदप्रिय आर्य लखनऊ ने ५००) प्रकाशन-सहायतार्थ दिये।

....

संस्कृत में अनुवाद करो- १ तुम दोनों का क्या नाम है? २ तू कहाँ रहता है ? ३ तेरे माता-पिता हैं वा नहीं ? ४ वह व्याकरण पढ़ता है। ५ मैं पैंतीस वर्ष का हूं। ६ मेरे ५ भाई हैं। ७ आपकी कितनी बहिनें हैं ? ८ आपका घर कहाँ है ? ९ घर में कौन कौन रहता है ? १० हम संस्कृत पढ़ें।

रिक्त स्थान भरो और संस्कृत में उत्तर दो-

१ ...जन्मदेशः कः ...? २ इमे...निवसन्ति? ३ तव...स्तः न वा; ४ भवान्...निवसति ? भवतः किन्नाम ?

संस्कृत में उत्तर दो-

१ तव किं नामास्ति? २ त्वं कुत्र निवससि ; भवान् किं किं पठति ? ४ तव कति भ्रातरः सन्ति ? भवान् कति वार्षिकः ?

३. गृहस्थाश्रम प्रकरणम्

पुनस्ते का चिकीर्षास्ति ? गृहाश्रमस्य।	**फिर तेरी क्या करने की इच्छा है? गृहाश्रम की।**
किं च भोः पूर्णविद्यस्य जितेन्द्रियस्य परोपकार करणाय संन्यासाश्रमग्रहणं शास्त्रोक्तमस्ति तत् न करिष्यसि ?	**क्यों जी, पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय का परोपकार के लिए संन्यासाश्रम ग्रहण करना शास्त्रोक्त है उसको न करोगे ?**
किं गृहाश्रमे परोपकारो न भवति ?	**क्या गृहाश्रम में परोपकार नहीं होता ?**
यादृशः संन्यासाश्रमिणा कर्तुं शक्यते न तादृशो गृहाश्रमिणा, अनेककार्यैः प्रतिबन्धकत्वेनास्य सर्वत्र भ्रमणाशक्यत्वात्।	**जैसा संन्यासाश्रमी से किया जा सकता है वैसा गृहाश्रमी से नहीं, अनेक कार्यों से प्रतिबन्धकता से इसका सर्वत्र भ्रमण अशक्य होने से**

शतपथ ब्राह्मण काण्ड ६, अध्याय २ (३७) ब्राह्मण २

उस अज (न जमने वाले धान) को फाल्गुन-पूर्णिमा में ही ले जो वर्ष की पहली रात है। १८

इसी दिन इन्द्र ने पापी वृत्र को मार कर पाप-रहित होकर यह आरम्भ किया था वैसे ही यह यजमान पौर्णमास से वृत्र मारकर इसे आरम्भ करता है। १९

यह प्राजापत्य कर्म मौन होता है क्योंकि प्रजापति अनिरुक्त हैं, उसने यह चुपचाप किया। २०-२१

इसलिए भी कि यहाँ रेतः सिंचन होता है जो चुपचाप ही होता है। घी-पशु (के दूध)का पुरोडाश, हवि, बस इतना ही पशुयाग है। २२

अष्टमी में उखा-सम्भरण होता है, क्योंकि यह दिन-कर्म-उखा प्राजापत्य हैं। २३

या यह अष्टमी वर्ष का और उखा अग्नि का पर्व है। पर्व में ही पर्व करता है। २४

अथवा अष्टमी और उखा दो विधियाँ हैं वे तिरछी ४, ऊर्ध्वा होकर अष्टमी में ८ होती हैं। २५

अमावास्या में दीक्षा लेता है क्योंकि उसी तिथि को यज्ञ विस्तृत किया जाता है, मैं भी उसी से यज्ञ उत्पन्न करूँ। २६

अथवा दीक्षित उखा-योनि में रेतः सींचता है, उससे कृत लोक के साथ हो जाता है। २७

वह यदि एक वर्ष से कम दीक्षित हो तो लोक-रहित इष्टकाएँ होंगी, ईंटें लोकों से बढ़ जायेंगीं, यदि बहुत लोक बनाकर उतनी इष्टका न रखे तो लोक बढ़ जायें। यदि अमावास्या में दीक्षा लेकर अमावास्या में क्रय करे तो जितना लोक बनाये उतनी ईंटें रखे और अगले पक्ष में सब अग्नि चुन जाये। २८

कहते हैं कि जितनी इस अग्नि की इष्टकाएं हैं उतने ही क्रय में दिन-रात होते हैं; और जो क्रय से ऊपर हैं वे कैसे इसके अनुकूल हों? क्रय से अधिक दिनों के अवकाश में अध्वर्यु अग्नि चुनता है। अवकाश न होने पर कहाँ चुने? तेरहवाँ मास होने पर उतने ही लोक हो जाने से लोक और ईंटें बराबर हो जाती हैं। २९

पूर्णिमा को पशु-प्राप्ति, अष्टका को उखा-सम्भरण, अमावस को दीक्षा सब पहली ही को होता है, इससे सब सम्पत्ति पाता है। ३०

इसका यह कर्म संवत्सर-अग्नि तक कैसे चलता है? इस पर कहते हैं कि इन ५ पशुओं की २४ सामिधेनियाँ, १२ आप्री, ११ अनुयाज, ११ उपयज सब ५८ होती हैं। ३१

उनमें ४८ अक्षरों की जगती के लिए ही यह सब होता है। ३२

अथवा ४८ अक्षरों की जगती सब छन्द-प्रजापति-अग्नि है। ३३

अब जो दस बचे वे दस अक्षरों का विराट् छन्द-दिशा-प्राण-अग्नि हैं। ३४

वपा पशु-पुरोडाश मास के ६०-६० दिन-रात हैं, उनसे मिलकर मास-ऋतु-संवत्सर-अग्नि को और कामना तथा अन्न को पाता है। ३५

अब इस प्राजापत्य यज्ञ की २१ सामिधेनी, १२ आप्री, ग्यारह अनुयाज, ग्यारह उपयज, वपा, पुरोडाश, हवि, मिलकर ५८ की और २ आधार मिलकर ६० की कामना तथा अन्न को पाता है। ३६

अब इस नियुत्वतीय की सत्तरह सामिधेनी, बारह आप्री, ग्यारह अनुयाज, ग्यारह उपयज; वपा पुरोडाश-हवि, दो आधार, दो स्विष्टकृत् इन ५८ की, और वनस्पति-वसाहोम मिलाकर ६० (षष्टि) कामनाओं को और वर्ष में अन्न आदि को पाता है, इस का कर्म वर्ष तक अग्नि से चलता है। ३७

कहते हैं कि पशुयाग में समिष्टयजु होम और अवभृथ स्नान न हो। यह तो अग्नि-आरम्भ है और वह देव-विसर्जन। आरम्भ में विसर्जन नहीं होता। अवभृथ तस्थान है, जिसके करने से पशु-प्राण अन्दर चला जाये, वह मर जाय अतः उसे ठीक स्थित रखे। अब व्रतों के विषय में— ३८

इस यज्ञ के समय ऊपर आसन पर न सोए, न मांस खाये, न मैथुन करे। यह दीक्षा तो नहीं है न मेखला न मृगचर्म अतः ये ऐच्छिक है। मैत्रावरुणी पयस्या से पहले मैथुन तो नहीं करे। ३६

कहते हैं कि इस यज्ञ में ब्रह्मा के लिए दक्षिणा तो दे ही। ऐसा न हो कि मेरा यह यज्ञ बिना दक्षिणा रह जाये। ब्रह्मा तो सबसे मुख्य है। किन्तु ऐसा न करे। वह इस इष्टका को करता है। दक्षिणा ऐसी है जैसे इष्टका में इष्टका दे। इसे वही दे जो उपयोगी हो। ४०

ब्राह्मण २ पूर्ण हुआ।

ब्राह्मण ३

चितियों का ऋषि-देवता-संबन्ध से उत्पत्ति-प्रकार

देव यही बोले— चेतो चुनाओ, चिति को चाहो। उनके चेताने पर प्रजापति ने यह पहली स्वयं फैली चिति देखी। अतः उसे प्रजापति के द्वारा रखता है। १

उससे अग्नि बोली— मैं पास आजाऊँ? किसके साथ? पशुओं के। अच्छा। पशिवष्टका के साथ, वही यह दूब की ईंट है। अतः इससे मिले हुए औषधि-पशु-अग्नि और यह आये। २

वे बोले— चुनो-चुनाओ ही, चिति को चाहो। इससे ऊँची चाहो। उन चुनने वालों में इन्द्राग्नी और विश्वकर्मा ने दूसरी स्वयं फैली चिति अन्तरिक्ष को देखा। अतः उसे उनके द्वारा रखता है। ३

उनसे वायु बोली— मैं आऊँ? किसके साथ? दिशाओं के। अच्छा। यह दिश्यों (दिशाओं में स्थितों) द्वारा कहा। अतः स्वयं फैली चिति में दिश्य रखे जाते हैं जिनसे वायु आया करती है। ४

वे बोले— चुने ही जाओ, चिति को चाहो, इससे उच्च की इच्छा करो। उनके चुनने पर प्रजापति ने तीसरी स्वयं फैली चिति द्यौः देखी। अतः उसे प्रजापति द्वारा रखता है। ५

उससे वह आदित्य बोला— मैं पास आगमन करूँ? किसके साथ? लोकम्पृणा के साथ। अच्छा। यह नाम अपने के लिए कहा। अतः तीसरी स्वयं फैली द्यौ लोकम्पृणा के साथ मिला रक्खी जाती है। अतः वह आदित्य द्यौ के साथ इससे मिला हुआ पास आता है। ३

वे ये ६ देवता यह जो कुछ है वह सब हुए। वे देव ऋषि बोले— इन्हें जानो, जैसे कि हम यहाँ हैं। वे बोले — चुनो, चिति को चाहो जिससे हम यहाँ भी रह सकें। उनके चुनने पर देवों ने दूसरी चिति देखी ऋषियों ने चौथी। ७

वे बोले— हम पास आयें? किसके साथ? जो इन लोकों में पास पड़े। अच्छा। इस प्रकार जो भूमि से ऊपर अन्तरिक्ष से नीचे है उससे देव आये यह दूसरी चिति हुई, और जो अन्तरिक्ष से ऊपर द्यौ से नीचे है उससे द्रष्टा आये वह चौथी। ८

वे बोले— चुनो, चिति को चाहो। इसे चुनने वालों ने देखा, अतः चितियाँ कहायीं। ६

प्रजापति ने पहली चिति देखी, वही उसका आर्षेय है, देवों ने दूसरी, वे ही उसके आर्षेय हुए, इन्द्राग्नि-विश्वकर्मा ने तीसरी चिति देखी वे ही उस के आर्षेय, ऋषियों ने चौथी, वे ही इसके आर्षेय, और प्रजापति ने पाँचवीं चिति देखी वही इसका आर्षेय हुआ। जो ऐसा चितियों का आर्षेय जानता है उसको ये चितियाँ आपयवती और बन्धुमती होती हैं॥ १०

❀ यह अध्याय २ में ब्राह्मण ३ और अध्याय २ (३७) पूर्ण हुआ॥

अर्थात् बिजली के वाहनों (कार-रथ-वायुयान) से तू आया जाया कर। (अनेक बार आये मन्त्र २६)

इन्द्र का १६ वार आया मन्त्र

२७-४२ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥

ऋग्वेद मण्डल तीन के सूक्त तीस का २२, इकतीस का २२, बत्तीस का १७, चौतीस का ११, पैंतीस का ११; छत्तीस का ग्यारह, अड़तीस का १०, उनतालीस का ६, तितालीस का ८, ४८ का ५, ४९ का ५, पचास का पाँच, मण्डल दस के सूक्त ८९ का अठारह, एकसौ चार का ग्यारह, यह ऋग्वेद में चौदह बार है। सामवेद में संख्या तीन सौ उनतीस वीं है, वहाँ धनानाम् के स्थान पर धनानि पाठ है। अथर्व में सोलहवीं वार काण्ड २० के सूक्त ग्यारह का ग्यारहवाँ मन्त्र है।

इन्द्र का अर्थ सामवेद में ईश्वर, अथर्व में बिजली-सूर्य, और ऋग्वेद में ईश्वर-राजा-सेनापति राष्ट्रपति-मन्त्री-वैश्य-वणिक्-सूर्य-बिजली-वायु-मेघ-किसान-जीवात्मा-मन-ब्रह्मचारी-संन्यासी-विभागाध्यक्ष आदि हो सकते हैं जिससे पुनरुक्ति दोष न रहेगा।

हम इस भरे संसार में धनादि के विभाग में ज्ञानी-धनी-श्रेष्ठ नेता-श्रोता-तेजस्वी, नक्षत्रों में दुष्टों के नाशक, धनों के उत्तम विजयी इन्द्र (परमेश्वर-जीवात्मा-सूर्यादि) की रक्षा के लिए आह्वान करें।

❀ प्रथम ऋग्वेद-विद्या के अन्तर्गत चौथी आपः [जल] विद्या ❀

४६-४३ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥

(ऋ १०-९-४; साम ३३; य ३६.१२; अ १-६-१)

दिव्य जल अभीष्ट पाने तथा तृप्ति के लिए हमें कल्याणकारी हों; तथा हमपर सुख-वर्षा करें। जल-अणु का निर्माण मित्र-वरुण (हाइड्रोजन २-आक्सीजन १) से है जिसका वर्णन इस मन्त्र में है-

४७-४६ मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥ [ऋ १.२.७]

साम ८४७, यजु ३३-५७

वैदिक कोष निघण्टु में घृताची का अर्थ जल बताया है जिसकी उत्पत्ति पूत-दक्ष मित्र हाइड्रोजन तथा रोग-भक्षी वरुण आक्सीजन से है। इस मन्त्र का यह अर्थ सर्वप्रथम पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी ने सौ वर्ष पहले किया था। यजुर्वेद १४-२४ में भी मित्र तथा वरुण का अनुपात दिया है-

५० मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं ०

५१-५३ अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥ (अ १.४.४)

ऋ १.२३-१९ य ९-६

जल में अन्दर अमृत तथा औषधि है इसका वर्णन निम्नाङ्कित मन्त्र में किया गया है—

५४-५८ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥
५९-६३ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥

६४-६८ तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥
ऋ १०.९.१-३, य ११.५०-५२, ३६.१४-१६, साम १८३७-१८३९, अ १.५.१-३

६९.७० ईशाना वार्याणा क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥ १०-९-५; अ १.५.४

७१-७३ अप्सु मे सोमोऽब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवम् । आपश्च विश्वभेषजीः ॥ (१-२३-२०, १०-९-६, अ १-६-२)

७४-७६ आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ १-२३-२१
१०-९-७, अ १-६-३

मित्र-वरुण से जल की उत्पत्ति ऋग्वेद ७-३३-११ में भी बतायी गयी है—

७७ उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वेदेवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥

हे वसिष्ठ (जल)! तू उर्वशी (बिजली) में मित्र-वरुण से उत्पन्न पुत्र है। सब देव तुझे आकाश में पाते हैं।
वरुण जल तथा जल-सेना-अधिपति का भी नाम है—

७८ वरुणोपामधिपतिः स मावतु० । अथर्व ५-२४-४

जल-विद्या के अन्तर्गत समुद्र-विद्या भी है जिसमें समुद्री जहाज का प्रयोग भी आ जाता है—

७९-८० शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शन्नोहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शन्नो अपां नपात् पेरुरस्तु शन्नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ [७-३५-१३, अ १९-११-३]

इसमें महर्षि दयानन्द ने अपां नपात् पेरु का अर्थ पानी का न गिरनेवाला पारकर्ता जहाज किया है।
जल-विद्युत् की ओर भी संकेत है। (ऋ ७-३५-१३, अथर्व काण्ड उन्नीस सूक्त ग्यारह मन्त्र तीन)

८१ सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ [१०-६३-१०]

इसमें वर्णित दैवी नाव वाष्प से चलने वाले जहाज ही हैं।

८२ वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ॥ [१-२५-७]

जल का अधिपति वरुण विमानों का पद और समुद्री नावों को जानता है।

समुद्र के अन्दर चलने वाली पनडुब्बियों का स्पष्ट वर्णन निम्नांकित में है—

८३ यास्ते पूषन्नावो अन्तःसमुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ [६-५८-६]

समुद्र की लहरों पर आश्रय लेनेवाले कारीगर का वर्णन देखिये—

८४-८५ परिप्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधिश्रितः । कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ ९-१४-१, सा४८६

२. नाम-निवास-स्थान-प्रकरणम् ।

तव किम् नाम अस्ति? देवदत्तः । तेरा क्या नाम है ? देवदत्त ।
को ऽभिजनो युवयोर् वर्तते ? कुरुक्षेत्रम् । कौन जन्मदेश तुम दोनों का है ? कुरुक्षेत्र ।
युष्माकं जन्मदेशः को विद्यते? पञ्चालाः । तुम्हार जन्मदेश कौन है ? पंजाब ।
भवन्तः कुत्रत्याः ? वयं दाक्षिणात्याः स्मः । आप कहाँ के हैं ? हम दक्षिणी हैं ।
तत्र का पूर् वः ? मुम्बापुरी । वहाँ कौन नगरी तुम्हारी(है)? मुम्बई ।
मे क्व निवसन्ति ? नयपाले । ये लोग कहाँ रहते हैं ? नयपाल में।
अयङ्किम् अधीते ? व्याकरणम् यह क्या पढ़ता है ? व्याकरण को ।
त्वया किम् अधीतम् ? न्यायशास्त्रम् । तूने क्या पढ़ा है ? न्यायशास्त्र ।
अयं भवदीयश् छात्रः किं प्रवर्चयति ? यह आपका विद्यार्थी क्या पढ़ता है ?
ऋग्वेदम् । ऋग्वेद को ।
त्वङ्किङ्कर्तुङ्गच्छसि ? पाठाय व्रजामि । तू क्या करनेको जाता है ? पढ़ने को जाता हूं ।
कस्माद् अधीषे ? यज्ञदत्तात् । किससे पढ़ता है ? यज्ञदत्त से ।
इमे कुतो ऽधीयते ? विष्णुमित्रात् । ये किससे पढ़ते हैं ? विष्णुमित्र से ।
त्वयि पठति कियन्तः संवत्सराः व्यतीताः ? पंच । तुझे पढ़ते हुए कितने वर्ष बीते १ ५ ।
भवान् कति वार्षिकः ? त्रयोदश वार्षिकः । आप कितने वर्षके हुए ? तेरह वर्ष के ।
त्वया पठनारम्भः कदा कृतः ? तूने पढ़ने का आरम्भ कब किया ?
यदा अहम् अष्टवार्षिकः अभूवम् । जब मैं ८ वर्ष का हुआ था ।
तव मातापितरौ जीवतो न वा ? जीवतः । तेरे मातापिता जीते हैं वा नहीं ? जीते हैं ।
तव कति भ्रातरो भगिन्यश्च ? तेरे कितने भाई-बहिन हैं ?
त्रयो भ्रातरः एका च भगिनी अस्ति । तीन भाई और एक बहिन है ।
तेषु त्वं ज्येष्ठः, ते, सा वा ? उनमें तू बड़ा है अथवा वे अथवा वह ?
अहम् एवाग्रजो ऽस्मि । मैं ही सबसे पहले जन्मा हूं ।
तव पितरौ विद्वांसौ न वा ? तेरे माता-पिता विद्वान् हैं वा नहीं ?
महा विद्वांसौ स्तः । बड़े विद्वान् हैं।
तर्हि त्वया पित्रोःसकाशात्कुतो न विद्यागृहीता? तो तूने मातापिताके पास क्यों न विद्या ली?
अष्टम वर्ष पर्यन्तङ्गृहीता । आठवें वर्ष पर्यन्त ली थी ।
मातृमान पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो श्रेष्ठ माता पिता आचार्य वाला पुरुष

वेद इति शास्त्रविधेः ।	विद्वान् हो यह शास्त्र को विधि होने से।
अन्यत् च, गृहे कार्यबाहुल्येन निरन्तरं	और भी घरमें कार्य के अधिक से लगातार
अध्ययनम् एव न जायते।	अध्ययन ही नहीं होता।
अतः परं कियद् वर्ष पर्यन्तम् अध्येष्यसे?	इसके आगे कितने वर्ष पर्यन्त पढ़ेगा?
पञ्चत्रिंशद् वर्षाणि ।	३५ वर्ष (तक)।

व्याकरण

इन प्रकरण के ३३ नये शब्द जोड़कर कुल ८१ शब्द हुए।

संस्कृत में ४ प्रकार के शब्द हैं– १ नाम सर्वनाम, २ आख्यात (क्रिया) [दोनोंके रूप बदलते हैं], ३ उपसर्ग, ४ निपात (अव्यय) इनका व्यय नहीं होता, रूप नहीं बदलते, ना।लिङ्ग-विभक्ति-वचनों में समान रहते है। सब उपसर्ग २२ हैं, ये क्रिया में पहले लगकर उनका अर्थ विशेष कर देते हैं।

प्र–परा–अप–सम्–अनु–अव–निस्–निर्–दुस्–दुर्–वि–आङ्–नि–अधि–अपि–अति–सु–उत्–अभि–प्रति–परि–उप। ये प्रादि उपसर्ग [गति]वेद में क्रिया के बाद या व्यवधान में भी लगाये जाते हैं।

शब्द–रूप ६. सर्वनाम पुल्लिङ्ग भवान् (आप) — ७. स्त्रीलिङ्ग भवती

विभक्ति	एक वचन	द्वि वचन	बहुवचन	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन	अर्थ
प्रथमा	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः	भवती	भवत्यौ	भवत्यः	आप आप ने
द्वितीया	भवन्तम्	,,	भवतः	भवतीम्	,,	भवतीः	आप को
तृतीया	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः	भवत्या	भवतीभ्याम्	भवतीभिः	आप से
चतुर्थी	भवते	,,	भवद्भ्यः	भवत्यै	,,	भवतीभ्यः	आप के लिए
पंचमी	भवतः	,,	,,	भवत्याः	,,	,,	आप से
षष्ठी	भवतः	भवतोः	भवताम्	,,	भवत्योः	भवतीनाम्	आपका–के–की
सप्तमी	भवति	,,	भवत्सु	भवत्याम्	,,	भवतीषु	आप में, पर

क्रिया के रूप ४– अस् धातु (होना) वर्तमान काल लट् लकार

पुरुष	एक वचन		द्वि वचन		बहु वचन	
प्रथम	अस्ति	वह है	स्तः	वे दो हैं	सन्ति	वे हैं
मध्यम	असि	तू है	स्थः	तुम दो हो	स्थ	तुम हो
उत्तम	अस्मि	मैं हूं	स्वः	हम दो हैं	स्मः	हम हैं

विसर्ग सन्धि– सूत्र ३. विसर्जनीयस्य सः। ४. ससजुषो रुः। ५. अतो रोर् अप्लुताद् अप्लुते।

विसर्ग के स्थान पर स हो– पुनः–ते पुनस्ते। भगिन्यः–च भगिन्यश्च (: को स, स को श हुआ।)

स का रु [र्] होता है– युवयोस्–वर्तते युवयोर्वर्तते। अप्लुत अ के बाद रु को उ हो यदि अ परे हो– कः–अभिजनः, कस्, करु, क उ, [अ–उ मिलकर ओ, को अभिजनः हो गया।

पूर्वरूप स्वर सन्धि सूत्र ६– एङः पदान्तादति (६–१–१०९) पद के अन्त के ए ओ से अ परे रहते अ को पूर्व का रूप हो जाये। इसे बताने के लिए अ कीजगह अवग्रह चिह्न ऽ लगाते हैं– को-अभिजनः कोऽभिजनः। कुतो–अधीयते कुतोऽधीयते।

समास १. द्वन्द्व– सूत्र ७– चार्थे द्वन्द्वः। दो शब्दों के बीच में 'च'(और)को हटाने से दो शब्दों का जोड़ा बन जाने से यह द्वन्द्व समास है– माता च पिता च माता–पितरौ। एकशेष से पितरौ हुआ।
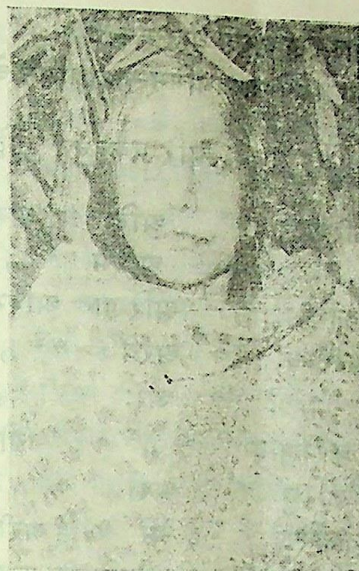
४.६.८० को दिवङ्गत श्रीमती सेवातीदेवी
स्वर्गीया धर्मपत्नी की स्मृति में श्री वेदप्रिय आर्य लखनऊ ने ५००) प्राकनश-सहायतार्थ दिये,

....

संस्कृत में अनुवाद करो– १ तुम दोनों का क्या नाम है? २ तू कहाँ रहता है ? ३ तेरे माता-पिता हैं वा नहीं ? ४ वह व्याकरण पढ़ता है। ५ मैं पैंतीस वर्ष का हूं। ६ मेरे ५ भाई हैं। ७ आपकी कितनी बहिनें हैं ? ८ आपका घर कहाँ है ? ९ घर में कौन कौन रहता है ? ० हम संस्कृत पढ़ें।

रिक्त स्थान भरो और संस्कृत में उत्तर दो–

१ ...जन्मदेशः कः ...? २ इमे...निवसन्ति? ३ तव...स्तः न वा; ४ भवान्...निवसति ? भवतः किन्नाम ?

संस्कृत में उत्तर दो–

१ तव किं नामास्ति? २ त्वं कुत्र निवासमि ;भवान् किं किं पठति ?४ तव कति भ्रातरः सन्ति ? भवान् कति वार्षिकः ?

३. गृहस्थाश्रम प्रकरणम्

पुनस्ते का चिकीर्षास्ति ? गृहाश्रमस्य।	फिर तेरी क्या करने की इच्छा है? गृहाश्रम की।
किं च भोः पूर्णविद्यस्य जितेन्द्रियस्य परोपकार करणाय संन्यासाश्रमग्रहणं शास्त्रोक्तमस्ति तत् न करिष्यसि ?	क्यों जी, पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय का परोपकार के लिए संन्यासाश्रम ग्रहण करना शास्त्रोक्त है उसको न करोगे ?
किं गृहाश्रमे परोपकारो न भवति ?	क्या गृहाश्रम में परोपकार नहीं होता ?
यादृशः संन्यासाश्रमिणा कर्तुं शक्यते न तादृशो गृहाश्रमिणा, अनेककार्यैः प्रतिबन्धकत्वेनास्य सर्वत्र भ्रमणाशक्यत्वात्।	जैसा संन्यासाश्रमी से किया जा सकता है वैसा गृहाश्रमी से नहीं, अनेक कार्यों से प्रतिबन्धकता से इसका सर्वत्र भ्रमण अशक्य होने से

व्याकरण शब्द-धातु-रूप

१ नये शब्द जोड़ कर सब ८७ हुए । संन्यासाश्रमिन्-गृहाश्रमिन् के रूप करिन्(हाथी)के समान है-

विभक्ति	करिन् एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	अरि एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	अर्थ
१	करी	करिणौ	करिणः	अरिः	अरी	अरयः	शत्रु, ने
२	करिणम्	,,	,,	अरिम्	,,	अरीन्	को
३	करिणा	करिभ्याम्	करिभिः	अरिणा	अरिभ्याम्	अरिभिः	से, द्वारा
४	करिणे	,,	करिभ्यः	अरये	,,	अरिभ्यः	के लिए
५	करिणः	,,	,,	अरेः	,,	,,	से
६	,,	करिणोः	करीणाम्	,,	अर्योः	अरीणाम्	का के की
७	करिणि	,,	करिषु	अरौ	,,	अरिषु	में पर
सम्बोधन	हे करिन्	हे करिणौ	हे करिणः	हे अरे	हे अरी	हे अरयः	हे अरे ओ

अरि के समान इकारान्त पुल्लिङ्ग हरि-कवि-मुनि आदि के रूप चलेंगे । अभ्यास करो।
इस पाठ में तृतीया एकवचन में करिणा के समान ही 'आश्रमिणा' प्रयुक्त है ।

कृ धातु-रूप	वर्तमान काल में लट् लकार			भविष्यत्काल में लृट् लकार		
पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
मध्यम	करोषि	कुरुथः	कुरुथ	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उत्तम	करोमि	कुर्वः	कुर्मः	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

लृट् में करिष्यति के समान धातु-प्रत्यय के बीच में 'इष्य' लगाकर भविष्यति पठिष्यति आदि बनेंगे । आकारान्त या पा स्था आदि में केवल स्य लगकर यास्यति पास्यति स्थास्यति आदि बनेंगे ।

सन्धि-विच्छेद-पुनः-ते । विकोर्षा-अस्ति । श्रमण-अशक्य । जित-इन्द्रिय । पर-उपकार ।

समास २— बहुव्रीहि

इसमें प्रयुक्त पदों से अन्य पद प्रधान होता है जैसे पूर्णविद्य, विग्रह- पूर्ण है विद्या जिसकी वह जितेन्द्रियः— जितानि इन्द्रियाणि येन सः ।

५- अनुवाद- हिन्दी की संस्कृत बनाओ-

१ क्या तुम परोपकार को करोगे ? २ हम परोपकार को करेंगे । ३ वह यज्ञ करेगा । ४ क्या तू सन्ध्या नहीं करेगा ? ५ मैं प्रातः सायं सन्ध्या को अवश्य करूँगा । ६ क्या तुम दोनों वेद पढ़ोगे ? ७ हम दोनों वेद पढ़ेंगे । ८ क्या आप अनुवाद करेंगे? ९ वे अनुवाद करेंगे । १० हम सदा सत्य बोलेंगे।

५ रचना- १ गृहाश्रमी के रूप लिखो । २ चल के लृट् में रूप लिखो । ३ सन्धि करो- वेद-उक्त, ब्रह्मचर्य-आश्रम, देव-इन्द्र, नमः-ते, महा-आशय । ४ विग्रह-सहित समास बताओ— महाशय, पूर्णायु, जित-क्रोधः, महा-यशः ।

***

२८०९-२८१२ (४ मन्त्र) — ... उस फाल मणि को इन्द्र (सम्राट् और विद्युत्) सुख-पूर्वक ओज-वीर्य के लिए लेता है। वह मणि इसके लिए बल ही देती है।० (शेष पूर्ववत)। ७

.. जिसे सोम (सेनानायक और चन्द्र) बड़े सुनने और देखने के लिए लेता हैं, वह इसे वच देता है। ८

...जिसे सूर्य धारण कर इन दिशाओं को जीतता है, वह इसी ऐश्वर्य ही देता है उससे तू शत्रु जीत। ९

...जिसे चन्द्रमा धारण करता हुआ प्राण-प्रद नक्षत्रों की नगरियाँ जीतता और श्री ही देता है, १०

२८१३-२८१९ (७ मन्त्र)- जिस मणि (नियम) को बड़ा पति ईश्वर शीघ्र तेज चलने वाले वायु के लिए बाँधता है वह इसके लिए अधिकाधिक दिन प्रतिदिन बल देता है उससे तू शत्रु को मार। ११

...उसे अश्वी (सूर्य-चन्द्र) इस खेती की रक्षा करते हैं वह वायु दोनों अश्वी वैद्यों को बल देता है।० १२

...उसे धारण कर प्रातःकालीन सूर्य आकाश जीतता है वह इसको प्यारी सत्य वाणी देता है ०। १३

...उसे धारण कर आपः (जल-नीहारिकाएं) क्षीण न होकर सदा दौड़ती हैं, वह इनको अमृत देता है। १४

...इस शम-दायी नियम को राजा वरुण (मेघ) धारण करता और इसके लिए सत्य ही देता है•। १५

... उसे धारण कर सब देव सब लोकों को युद्ध से जीतते हैं, वह इनको विजय ही देता है। ० १६

... उसे सब देवियाँ (प्रकृतिक शक्तियाँ) धारण करती हैं, वह इनके लिए विश्व को ही देता है।० १७

२० ऋतुएं, उनके मास आदि उस नियम को बाँधते, संवत्सर इसे बाँधकर सब जगत् को बचाता है १८

२१ भीतरी देश, प्रदिशाएं वह नियम बाँधती हैं, प्रजापति-रचित नियम मेरे शत्रुओं को नीचा करता है। १९

२२ अथर्ववादी, स्थिरचित्त योगी नियम बाँधते हैं, साथ में स्नेही वैज्ञानिक दस्युओं के किलों को तोड़ते है, उससे तू द्वेषियों को मार। २०

२३ वह नियम विधाता धारण करता है, वह जगत् रचता है, उससे तू द्वेषियों का हनन कर। २१

२८२४-२८३० [७ मन्त्र] बृहस्पति जिस असुर-नाशक, प्राण-रक्षक मणि [नियम-अन्न] को बाँधता है वह रस और वर्च के साथ मुझे मिलता है। २२

... वह गौ-बकरी-भेड़-अन्न-प्रजा के साथ मुझे मिलता है। २३

... वह चावल-जौ-महत्ता-सम्पत्ति ,, । २४

... वह मधु- घी की धारा-अन्न ,, । २५

... वह ऊर्जा-दूध-जल-धन-शोभा ,, । २६

... वह तेज-दीप्ति-यश-कीर्ति ,, । २७

... वह सब योग-विभूतियों-सम्पत्तियों के साथ मे मिलता है। २८

३१ विद्वान् इस जल-क्षत्रवर्धक-शत्रु- नाशक मणि [अन्न-नियम] को पुष्टि के लिए मुझे दें। २९

३२ मैं कल्याणकारी नियम को ब्रह्म-तेज के साथ लेताहूं, अशत्रु शत्रुनाशक वह शत्रुको नीचे करे। ३०

३३-३४ देवोत्पन्न यह मणि मुझे द्वेषी से ऊँचा करे, जिससे ये तीनों लोक जल-दूध पाते हैं और देव-पितर-मनुष्य सदा जिसका आश्रय लेते हैं वह यह मणि श्रेष्ठता के लिए मेरे सिर चढ़े। ३१-३२

३५ जैसे बीज उर्वरा में हल से जुतने पर पैदा होता है वैसे मेरे पास प्रजा-पशु-अन्न अन्त पैदा हों। ३

३६ हे यज्ञ-वर्धक, सैकड़ों शक्ति वाले नियम! जिस कल्याणकारी तुझे मैं लेता हूं इसे तू श्रेष्ठ बनाने को समर्थ हो। ३४

२८३७ हे अग्नि [ईश्वर-अग्रणी-आग]! तू इस आत्मा-पद-लकड़ी का सेवन करता हुआ होमों से सम्पन्न हो। ब्रह्म से अग्नि के दीप्त होने पर हम दुःख-नाशक-अन्न-प्रजा-पशु को प्राप्त करें ३५

यह सूक्त ६ और अनुवाक ३ समाप्त हुआ।

अथर्ववेद काण्ड१० प्रपाठक २३ सूक्त७-१०

अनुवाक ४ [सूक्त ७ से १० तक]

अनुवाक-विषय– तप-ऋत प्रश्नादि, ईश्वरे सर्वं स्थितमित्यादि, महाविद्यादि, ब्रह्मविद्यादि, महाव्याख्यानादि पदार्थ विद्या (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

४४ मन्त्रों का सूक्त ७ । स्कम्भ (खम्भा– आधार– परमात्मा

२८३८ कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥१

३९ कस्मादङ्गाद्दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा ।
कस्मादङ्गाद्वि ममीतेऽधि चन्द्रमा मह: स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥२

४० कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् ।
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥ ३

४१ क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ४

४२ क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ५

४३ क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ६

४४ यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वां अधारयत्।स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥७

४५ यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत्तद् बभूव ॥ ८

४६ कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतङ्कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य ।
एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥ ९

४७ यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १०

४८ यत्र तपःपराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम्।ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्क०॥११

४९यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षंद्यौर्यस्मिन्नध्याहिता।यत्राग्निश्चन्द्रमाःसूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः०१२

५०, यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः । स्कम्भ० ॥ १३

५१ यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही । एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्क०॥ १४

५२ यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते। समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिता स्क०१५
५३ यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रथमाः। यज्ञो यत्र पराक्रान्त स्कम्भं ०॥ १६
५४ ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्। यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम्। ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनु संविदुः॥ १७
५५ यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुराङ्गिरसोऽभवन्। अङ्गानि यस्य यातव स्कम्भं ०॥ १८
५६ यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत। विराजमूधो यस्याहु स्कम्भ ०॥ १९
५७ यस्मादृचो अपातक्षन्यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्क०२०
५८ असच्छाखा प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः। उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते०२१
५९ यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः। भूतंच यत्र भव्यंच सर्वेलोकाः प्रतिष्ठिताः स्क०२२
६० यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा। निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ॥२३
६१ यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्मज्येष्ठमुपासते। यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्॥२४
६२ बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे। एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः॥२५
६३ यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत्। एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनु संविदुः॥२६
६४ यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्रा विभेजिरे। तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः॥२७
६५ हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः। स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोकेअन्तरा॥२८
६६ स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम्। स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रेसर्वसमाहितम्॥२९
६७ इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम्। इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥३०
६८ नाम नाम्ना जोहवीवि पुरा सूर्यात् पुरोषसः।
यदजः प्रथमं सम्बभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्॥ ३१
६९ यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्। दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥३२
७० यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः। अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै० [पूर्ववत्]॥ ३३
७१ यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसोभवन्। दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै० ,,॥ ३४
७२ स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम्।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश॥ ३५
७३ यः श्रमात्तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे। सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै०॥ ३६
७४ कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः। किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदाचन॥३७
७५ महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे।
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः॥ ३८

७६ यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेमितं स्कम्भं० ॥ ३९

७७ अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना। सर्वाणि तस्मिञ्ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥४०

८७ यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद । स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥ ४१

७९ तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥ ४२

८० तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात् ।
पुमानेनद् वयत्युद्‌गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके ॥ ४३

२८८१ इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥ ४४

स्कम्भ । खंभा आधार परमात्मा

२८३८ इस ईश्वर के किस अंग में तप, किस में ऋत, इसके व्रत-श्रद्धा-सत्य कहाँ स्थित हैं ? १

३९ इसके किस अंग से अग्नि दीप्त होती है ? किससे वायु बहती है ?, महान् स्कम्भ के अङ्ग को नापता हुआ चन्द्रमा किस अंग से मापता है ? २

४० इसके किस अंग में भूमि, किससे अन्तरिक्ष, किसमें रक्षित द्यौ, किसमें द्यौ का ऊपरी भाग है ? ३

४१ कहाँ जाना चाहते हुए अग्नि ऊपर को जलती, हवा बहा करती है ? जहाँ जाना चाहती जल-भँवरें घूमा करती हैं उस स्कम्भ को बता कि वह अत्यन्त सुखस्वरूप प्रजापति निश्चय कौन सा है ? ४

४२ वर्ष के साथ मिले पक्ष-मास कहाँ जाते हैं ? जहाँ ये जा रहे हैं उस स्कम्भ को बता ।० ५

४३ कहाँ जाना चाहती ये जवान, विरुद्ध रूपवाली (गोरी-काली) दिन-रातें मिलकर दौड़ रही हैं ? आपः (जल-धाराएँ) जहाँ जाने की इच्छुक जा रही हैं उस० । ६

४४ जिस पर टिक कर प्रजापति (सूर्य) सब लोकों को धारण करता है उस० । ७

४५ प्रजापति जिस दूर-नीचे मध्यम विश्वरूप को बनाता है उसमें स्कम्भ कितना प्रविष्ट है और जिसमें नहीं वह कितना है ? ८

४६ वह भूत काल में कितना प्रविष्ट है, और इसका कितना भाग भविष्य में सो रहा है ? एक अंग जो हजारों में बाँटा वहाँ वह कितना प्रविष्ट है ? ९

४७ जहाँ जन लोक-कोश-आपः-वेद और जिसके अन्दर सदसत् (प्रकृति-जगत्) को जानते हैं उस०।१०

४८ जहाँ तप आगे होकर श्रेष्ठ व्रतको धारण करता, जहाँ नियम-श्रद्धा-कर्म-ज्ञान एकत्र हैं उस०।११

४९ जिसमें भूमि-अन्तरिक्ष-द्यौ टिके हैं, जहाँ अग्नि-चन्द्र-सूर्य-हवा अर्पित हैं उस० । १२

५० जिसके अंग में सब ३३ देव (८ वसु-११ रुद्र १२ आदित्य-१ इन्द्र-१ यज्ञ) समाहित हैं उस० । १३

५१ जहाँ प्रथम उत्पन्न मन्त्र-द्रष्टा (अग्नि-वायु-आदित्य-अंगिरा) और ऋचा-साम-यजु-महान अथर्ववेद एवं एक मन्त्र-द्रष्टा अथर्वा समर्पित हैं उस० । १४

५२ जहाँ मोक्ष-मरण स्थित हैं, समुद्र जिसकी नाड़ियाँ पुरुष में समाहित हैं उस० । १५

५३ जिसकी चार दिशाएँ मनुष्य-हृदय की पहली चार नाड़ियाँ हैं, जहाँ यज्ञ आगे चला उस० । १६

२८५४ जो जीवात्मा में ब्रह्म को जानते हैं वे परमेष्ठी को जानते हैं, जो परमेष्ठा-प्रजापति-ज्येष्ठ ब्रह्म को जानते हैं वे स्कम्भ को भी अच्छे प्रकार से जानते हैं। १७

५५ जिसका सिर सूर्य, चक्षु किरणें, अङ्ग गतिशील नक्षत्र आदि हैं उस स्कम्भ०। १८

५६ जिसका मुख अथर्ववेद, जीभ मधुर वाणी [वेदत्रयी], अयन प्रकृति को बताते हैं उस०। १९

५७ जिससे ऋचाएँ छाँटीं, यजु कहा, साम जिसके लोम, अंगिरा का अथर्व मुख है उसे स्कम्भ०। २०

५८ स्थित होती असत्य-शक्ति(प्रकृति) का कुछ लोग परम तत्त्व के समान जानते हैं और कुछ अन्य उसे सत्य मानते वे उस शक्ति की उपासना करते हैं। २१

५९ जहाँ आदित्य-रुद्र-वसु, भूत-भविष्य और सब लोक एकत्र हैं उस स्कम्भ०। २२

६० जिसकी निधि(वेद-जगत्)की ३३ देव सदा रक्षा करते हैं उसे कौन(प्रजापति)जानता है ? २३

६१ जहाँ ब्रह्मज्ञानी ज्येष्ठ ब्रह्म की उपासना करते हैं उन्हें जो प्रत्यक्ष पाये वह ज्ञानी ब्रह्मा हो। २४

६२ वे देव बड़े प्रसिद्ध हैं जो असत् (कारण प्रकृति) से पैदा होते हैं लोग स्कम्भ के जिस अंग को असत् कहते हैं। २५

६३ जहाँ स्कम्भ जगत् रचता हुआ जिस पुराण (प्रकृति) को बदलता है वह स्कम्भ का एक अंग है। २६

६४ जिसके अंग में तेंतीस देव अवयव-रूप में विभक्त हैं उन्हें कुछ ही ब्रह्म-वेत्ता जानते हैं। २७

६५ मनुष्य हिरण्यगर्भ (नेबुला)को परम अकथनीय जानते हैं जिसे पहले स्कम्भ ने सींचा। २८

६६ स्कम्भ में लोक तप-ऋत स्थित है, हे स्कम्भ ! मैं तुझे प्रत्यक्ष जानूँ, इन्द्र में सब समाया है।२९

६७ इन्द्र में लोक-तप-ऋत स्थित हैं, हे इन्द्र ! मैं तुझे प्रत्यक्ष जानूँ, स्कम्भ में सब प्रतिष्ठित हैं। (दोनों नाम परमेश्वर के हैं)। ३०

६८ नाम के साथ नाम(नमनयोग्य ओ३म्) को भक्त सूर्योदय-उषा काल से पहले बार बार गाये। जो अज (अजन्मा-गतिशील परमात्मा) पहले सदा से है वही स्व (आत्मा) का राज्य देता है, जो जीव पहले आगे बढ़ता है वही वह स्वराज्य पाता है जिससे बढ़कर कुछ वस्तु नहीं। ३१

६९ भूमि जिसके पैर, और अन्तरिक्ष पेट है, जिसने द्यौ को सिर किया ऐसे ज्येष्ठ ब्रह्म को नमः।३२

७० सूर्य और बार-बार नया चन्द्र जिसके चक्षु हैं, अग्नि को जिसने मुख किया ऐसे०। ३३

७१ वायु जिसके प्राण-अपान, नक्षत्र चक्षु है, दिशाओं को जिसने नाड़ियाँ किया०। ३४

७२ स्कम्भ ने ये दोनों द्यावा-पृथिवियां, महान् अन्तरिक्ष, ६ बड़ी दिशाएँ धारण की हैं, इस में यह सब भुवन प्रविष्ट है। ३५

७३ श्रम-तप से प्रसिद्ध जो सब लोकों में समाया, सोम (आनन्द) को स्वरूप बनाये है ऐसे०। ३६

७४ क्यों वायु नहीं सोती, मन आराम नहीं करता, सत्य पाने के इच्छुक आप कभी नहीं सोते ? ३७

७५ महा पूजनीय ईश्वर भुवन के मध्य में तप में पराक्रमी, गतिशील ब्रह्माण्ड की पीठ पर है, और जो भी कोई देव हैं इसी पर आश्रित हैं जैसे वृक्ष की शाखाएँ तने के चारों ओर हों। ३८

७६ जिसके लिए विद्वान् हाथ-पैर-वाणी-कान-चक्षु से सदा आदर देते हैं परिमित में अमित ऐसे०।३९

७७ उसका अज्ञानान्धकार नष्ट है, वह पाप से अलग है, उस प्रजापति में सब तीन ज्योतियाँ (सूर्य-विद्युत्-अग्नि हैं)। ४०

७८ जो ब्रह्माण्ड में स्थित बुने हुए सुनहरे जगत को जानता वह गुप्त प्रजापति है। ४१

७९ कोई दो विरूप युवतियां (ऋण-धन, जोड़-तोड़, सर्जन-प्रलय शक्तियाँ)एक के बाद दूसरी, ६ मयूख(खूंटे-दिशाओं) वाले विश्व-वस्त्र को बुनती हैं, एक तन्तु फैलाती, दूसरी उसे समेटती है। दोनों न अलग होतीं, न अन्त तक पहुँचती हैं। ४२

२८८० नाचती हुई स्त्री उन दोनों में कौन पहली है यह नहीं जानता। वास्तव में पुरुष परमात्मा ही इसे बुनता वही निगलता संहार करता है, पुरुष मोक्ष में यह कार्य छोड़ देता है। ४३

८१ ये ६ मयूखें (खूटियाँ-किरणें-दिशाएँ-ऋतुएँ) द्यौ को थामे हुए हैं और बुनने के लिए सामों (मेघ-प्राण-वायु-आदित्य आदि) को तसर (शटल) बनाये हुए हैं। ४४

सूक्त ८। आत्मा

२८८२ यो भूतंच भव्यंच सर्वं यश्चाधितिष्ठति। स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥१

८३ स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः। स्कंभ इदंसर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्चयत्

८४ तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्न्यन्या अर्कमभितो विशन्त।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश॥ ३

८५ द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये॥ ४

८६. इदं सवितर्विजानीहि षड यमा एक एकजः। तस्मिन्हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः॥५

८७ आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत्पदम्। तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत्प्राणत्प्रतिष्ठितम्॥ ६

८८ एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व तद् बभूव॥ ७

८९ पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो अनु संवहन्ति।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयो ऽवरं दवीयः॥ ८

९० तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस् तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः॥ ९

९१ या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चाद्या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सा ऋचाम्॥ १०

९२ यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत्।
तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव॥ ११

९३ अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते।
ते नाकपालश् चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य॥ १२

९४ प्रजापतिश् चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः॥ १३

९५. ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम्। पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः॥१४

९६ दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति॥ १५

२८९७·यतःसूर्य उदेत्यस्तं यत्रच गच्छति तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किंचन ।। १६

९८ ये अर्वाङ् मध्यमुत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ।। १७

२८९९ सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ।। १८

२९००. सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् विपश्यति। प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिन्ज्येष्ठमधिश्रितम् ।।

१. यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु। स विद्वान्ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद्ब्राह्मणं महत् ।।२०

२. अपादग्रे समभवत्सो अग्रे स्वराभरत् । चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ।। २१

३. भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु । यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ।। २२

४. सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः । अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ।। २३

५. शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन्निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ।। २४

६ बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते। ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ।। २५

७ इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे। यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ।। २६

८ त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ।। २७

९ उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ।। २८

१० पूर्णात्पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते । उतो तदद्य विद्याम यतस् तत्परिषिच्यते ।। २९

११ एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ।। ३०

१२ अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता । तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ।। ३१

१३ अन्तिसन्तं न जहात्यन्तिसन्तं न पश्यति। देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।। ३२

१४ अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्। वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ।। ३३

१५ यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः। अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ।। ३४

१६ येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः ।
ये आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ।। ३५

१७ इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ।। ३६

२८१८ यो विद्यात्सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३७

१९ वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३८

२० यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत्प्रदहन् विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात्क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥ ३९

२१ अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥ ४०

२२ उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि विचक्रमे । साम्ना ये साम संविदुरजस्तद्ददृशे क्व ? ४१

२३ निवेशनः सङ्गमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा । इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ४२

२४ पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् । तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४३

२८२५ अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ ४४

काण्ड १० में अनुवाक ४ और सूक्त ८ पूर्ण हुआ ।

सूक्त ८

२८८३ जो भूत-भविष्य और सब (वर्तमान) का अधिष्ठाता है और जिसका केवल आनन्द स्वरूप है, उस महद् ब्रह्म के लिए नमः हो । १

८३ स्कम्भ से थामे ये द्यौ भूमि स्थित हैं, उसीमें यह आत्मासहित प्राणी-अप्राणी संसार है । २

८४ तीन प्रजाएँ (ग्रह-उपग्रह-धूमकेतु) अति गतियुक्त होकर सूर्य के चारों ओर रहती हैं। लोकों का निर्माता बड़ा सूर्य सब दिशाओं में आविष्ट है । ३

८५ वर्ष की १२ पुट्ठियां (मास), १ चक्र, तीन केन्द्र (गरमी-वर्षा-शीत) हैं। इसे कौन जानता है ? उसमें ३६० खूँटे-कीलें हैं जो विचलित नहीं होतीं ।

जीव-चक्र में १२ प्राण, तीन गुण सत्त्व-रजस्-तमस्, ७२० हृदय की नाड़ियां हैं जिनमें मन घूमा करता है । ४

८६ हे विद्वान् ! यह जान ले कि ६ यम (नियामक ऋतुएँ, दो-दो मास के ६ जोड़े और १ मलमास अकेला है । ५ भूत और १ परमात्मा ६ नियामक हैं । ५ में १ आकाश परमात्मा में लय होता । ५

८७ पुराना प्रसिद्ध ज्ञातव्य बुद्धि-गुहा में स्थित परमात्मा में यह सब गतिशील प्राणी-जगत् आश्रित और प्रतिष्ठित है । ६

८८ एक चक्र-नेमि (नियम-केन्द्र) वाला (परमात्मा-ब्रह्माण्ड-सूर्य) आगे-पीछे हजारों शक्ति-युक्त है। वह एक समृद्ध शक्ति से सब भुवन बनाता है, शेष शक्ति कहाँ है ? (अप्रकट है ।) ७

८९ पांच (भूत-प्राण) को वहन करने वाला (परमात्मा) इनके आगे और ये इसके पिछलग्गू हैं। इसका न चलना दिखायी देता, चलना नहीं । वह परम निकट और परम दूर है । ८

२८९० तिरछे बिल (छेद) वाला, ऊपर पेंदी वाला चमचा [सिर] है उसमें सब रूपों वाला (ज्ञान) रखा है, वहा ७ ऋषि साथ साथ बैठते हैं जो इस महान् शरीर के रक्षक हुए। (७ ऋषि ५ ज्ञानेन्द्रियां-मन-बुद्धि या २ कान गोतम-भरद्वाज, २ चक्षु विश्वामित्र जमदग्नि, २ नाक वसिष्ठ-कश्यप, १ मुख अत्रि हैं। सूर्य भी नीचे बिल वाला ऊपर बँधा है जिसकी ७ रङ्ग की किरणें हैं। ९

९१ जो शक्ति सामने-पीछे-सब तरह-सब ओर युक्त है, जिससे संसार-यज्ञ आगे बढ़ता है उसे तुझ से पूछता हूं कि वह मन्त्रों में वर्णित कौनसी है? उत्तर— वह सबसे अधिक सुखस्वरूप परमात्मा की शक्ति है। १०

९२ जो जगत् गति करता, गिरता, स्थित, प्राणयुक्त, अप्राण, आंख-मीचे, उत्पन्न, अनेकरूप है, उसे पृथ्वी को परमात्मा धारण करता है यह प्रलय में एक ही हो जाता है। ११

९३ अनन्त-विस्तृत, द्यौ-पृथिवी अन्त के साथ सङ्गत है, उन्हें अलग करता, इसका भूत-भविष्य-ज्ञाता, मोक्षपालक परमात्मा उन दोनों में विचरता है। १२

९४ प्रजापति संसार-गर्भ में अन्दर विचरता है, अदृश्य वह बहुत प्रकार से विविध शक्तियों में प्रकट होता; समृद्धता से वह सब भुवन पैदा करता, जो इसका शेष है समृद्ध सुखमय ज्ञानमय है। १३

९५ ऊपर जल-भरे घड़े के समान मेघ को चक्षु से सब देखते हैं, मन से सब नहीं जानते। १४

९६ बड़ा पूज्य ब्रह्म भुवन के मध्य में पूर्ण से और निर्धन से दूर अलग है; उसके लिए राष्ट्र-धारी बलिदान करते हैं। १५

९७ जहां से सूर्य उदय होता और जहाँ अस्त होता है उसीको मैं बड़ा मानता हूं उससे बड़ा कुछ नहीं। १६

९८ जो वर्तमान-मध्य-प्राचीन वेदवेत्ता ईश्वर को सर्वत्र बताते हैं वे सब उसे आदित्य-द्वितीय अग्नि और तृतीय हंस नाम से सब ओर बताते हैं। १७

९९ आकाश में गिरे इस हरि हंस (रस-हरण-कर्ता सूर्य) के हजारों दिनों (युगों) तक दो पक्ष (दिन-रात) फैले हैं। वह सब देवों (ग्रहों) को छाती पर रखकर सब भुवन देखता हुआ घूमता है। यह मन्त्र आगे १३.२.३८ और १३.३.१४ में भी है। १८

२९०० जिसमें ईश्वर स्थित है वह सत्य ऊँचा तपता, ब्रह्म से नीचे देखता, प्राण से तिरछे जीता है। १९

२९०१ जो उन अरणियों (शरीर-ओम्) को जानता है, जिससे वसु (ईश्वर-जीव) मथा जाता है, वह विद्वान् महान् ज्येष्ठ ब्रह्म को माने और जाने। २०

२ पहले ईश्वर अपाद होता है और सुख-स्वरूप धारण करता है, फिर सेवनीय चतुष्पाद होकर प्रलय में सब भोजन (संसार) को वश में ले लेता है। ४ पाद— प्रकाश (दिशाएँ), अनन्त, ज्योति, आयतन, ४ वेदधर्म-अर्थ-काम-मोक्ष। २१

३ वह भोग्य होता और अन्न (परमात्मा के आनन्द) को बहुत खाता है जो सर्वोपरि सनातन देव परमात्मा की उपासना करता है। २२

४ इसे सनातन कहते हैं, और वर्तमान में वह फिर नया हो जाता है जैसे दिन-रात एक दूसरे के रूपों में नये होते रहते हैं। २३

५ इसमें सौ-हजार-दस करोड़-असंख्य धन है, इसे देखते हुए सब इसका धन पाते हैं अतः वह सब का रुचिकर है। २४

६ एक [जीव] बाल से भी अत्यन्त सूक्ष्म है और एक [प्रकृति] नहीं सी दिखायी देती, एक सबसे चिपटा देव [परमात्मा] है वह मेरा प्यारा है। २५

२९०७ यह कल्याणकारी-अजर-अमर परमात्मा मरणधर्मा मनुष्य के घर[आत्मा]में है, वह जिस [जीव] के लिए विद्यमान है वह कम करता और जीर्ण-स्तुत्य होता है । २६

८ हे जीव ! तू स्त्री-पुरुष-कुमार-कुमारी है, बूढ़ा होकर डण्डे के साथ चलता है, उत्पन्न होकर नाना प्रकार के मुख वाला होता है। २७

९ और इनका पिता या पुत्र, बड़ा या छोटा भाई बनकर एक ही जीव मन में प्रविष्ट है वही पहले उत्पन्न हुआ फिर गर्भ में आता है । २८

१० पूर्ण परमात्मा से पूर्ण (जगत्-वृक्ष) प्रकट होता, यह उसी से सींचा जाता है, और उसे हम सदा जानें जिससे यह जगत् सींचा जा रहा है । २९

११ यह सनातन पुरानी शक्ति सदा से सब के चारों ओर है। यह बड़ी देवी उषाओं को प्रदीप्त करती, वह एक-एक उन्मष से देखती है । ३०

१२ अवि [रक्षक ईश्वर और मेष राशि का सूर्य] प्रसिद्ध देव सत्य से घिरा है, उसके रूप से ये वृक्ष हरे और हरी मालाओं वाले हैं । ३१

१३ पास रहते ईश्वर को आत्मा न छोड़ता न देखता है। देव के काव्य वेद को देख, यह और इसे देखने वाला न मरता न पुराना होता है । ३२

१४ अपूर्व परमात्मा से भेजी वेदवाणियां यथार्थ सत्य कहती हैं । वे जहां तक पहुंचती हैं उसे महान् वेदज्ञ कहते हैं । ३३

१५ जहां देव-मनुष्य केन्द्र में अरों के समान आश्रित हैं उस जलों के फूल, परमाणुओं के पोषक (हृदय-कमल,संसार)को तुमसे पूछता हूं कि जहां वह ब्रह्म प्रज्ञा प्रकृति के साथ स्थित है । ३४

१६ जिन देवों से प्रेरित होकर वायु तेज चलती हैं, जो साथ मिली विस्तृत ५ दिशाएँ धारण करते, जो आहुति को बहुत मानते, केवल पुकार नही सुनते, वे जल के ले जाने वाले कौन हैं? ३५

१७ प्रश्न का उत्तर— इनमें एक [अग्नि] पृथिवी को ढँकती-ओढ़ती। दूसरी वायु अन्तरिक्ष को घेरे है, तीसरा विधर्ता सूर्य द्यो को धारण करता है; कुछ(चन्द्रादि)सब दिशाओं की रक्षा करते हैं। ३६

१८ जो फैले सूत्र [प्रकृति] को जिसमें ये प्रजाएँ बुनी हैं और सूत्र के सूत्र परमात्मा को जाने वह बड़े ब्रह्म या ब्रह्म-वेत्ता को जाने । ३७

१९ मैं फैले सूत्र, जिसमें ये प्रजायें बुनी हैं और सूत्र के सूत्र तथा महा वेद-वेदज्ञ को जानता हूं ।३८

२० प्रश्न – प्रलय में जब द्यो-पृथ्वी-मध्य संसार-दाहक आग जलाती हुयी प्रकट होती हैं और एक पति (ब्रह्म-सूर्य) वाली दिशाएँ दूर रहती हैं तब आकाश की वायु कहाँ रहती है ? ३९

२१ उत्तर— प्रलय में वायु आपः [नित्य आकाश]में रहता है, देव सलिलों [परमाणुओं]में रहते हैं। महान् पवित्र परमात्मा लोकों को रचता रहता है और दिशाओं में व्यापक रहता है । ४०

२२ जो गायत्री [प्राण-रक्षक चिति]को पार कर मोक्ष में गति करते हैं वे सामगान से शान्त ईश्वर को पाते हैं तब परमात्मा कहाँ दिखायी देता है ? ४१

२३ वसुओं का स्थापक गतिदाता, सूर्यवत् सत्यधर्मा ईश्वर धनों के युद्ध में सेनापतिवत् स्थित है । ४२

२४ नौ द्वार वाला मस्तिष्क या शरीर ३ गुणों से ढँका है उसमें जो आत्मायुक्त पूज्य ईश्वर है उसे ब्रह्मज्ञानी ही जानते-पाते हैं । ४३

२५ निष्काम-धीर-अमर-स्वयंभू-रस से तृप्त ईश्वर कहीं से कम नहीं है,उस परमात्मा और धीर-अजर-युवा-आत्मा को जानकर ही विद्वान् मौत से नहीं डरता । ४४

—❀—

अथर्ववेद काण्ड१० अनुवाक ५ [सूक्त ९ से १०तक]

अनुवाक-विषय— सन्तानोत्पत्ति यज्ञादि पुत्रेष्ट्यादि वशा द्यौ वशा पृथिवी वशा
त्रिषण: प्रजापतिः इत्यादि पदार्थ विद्या (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

२७ मन्त्रों का सूक्त ९ (शतौदना-सैकड़ों अन्नों वाली पारमेश्वरी माता और पृथिवी रूपी गौ)

२९९६ अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥ १

२७.वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते।एषा त्वा रशनाग्रभीद्ग्रावा त्वैषोऽधिनृत्यतु॥२

२८.बालास्ते प्रोक्षणीःसन्तु जिह्वासंमार्ष्ट्वघ्न्ये।शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवंप्रेहि शतौदने ॥ ३

२९.यः शतौदना पचति कामप्रेण स कल्पते । प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४

३० स स्वर्गमारोहति यत्रादस् त्रिदिवं दिवः । अपपूनाभि कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५

३१स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः।हिरण्यज्योतिषं कृत्वा० [पूर्ववत्]॥६

३२.ये ते देवि शमितार;पक्तारो ये च ते जनाः।ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्योभैषीः शतौदने॥७

३३वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा।आदित्यापश्चाद्गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममतिद्रव॥८

३४देवाःपितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये । ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमतिद्रव ॥९

३५अन्तरिक्षंदिवंभूमिमादित्यान्मरुतो दिशःलोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम्१०

३६घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान्गमिष्यति। पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने॥११

३७ ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि ।
क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२
तेभ्यस् त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु॥१३

३८,यत्ते शिरो यत्ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनूः।आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु॥१३

३९ यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी । आमिक्षां० ,, ॥ १४

४० यत्ते क्लोमा यद् हृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका । आ० ,, ॥ १५

४१ यत्ते यकृत् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः । आ० ,, ॥ १६

४२ यस् ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते । आ० ,, ॥ १७

४३ यत्ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् । आ० ,, ॥ १८

४४ यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् । आ० ,, ॥ १९

४५ यास् ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः । आ० ,, ॥ २०

४६ यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् । आ० ,, ॥ २१

४७ यत्ते पुच्छं ये ते वाला यदूधो ये च ते स्तनाः । आ० ,, ॥ २२

४८ यास् ते जङ्घाः याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः । आ० ,, ॥२३॥
४९ यत्ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये । आ० ,, ॥२४॥
५० क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्ये नाभिघारितौ। तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥२५॥
५१ उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद् होता सुहुतं कृणोतु ॥२६॥
५२ अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं संपद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२७॥

सूक्त ९ । शतौदना भूमि-गौ

२९२६ पापियों के मुख बन्द कर, शत्रुओं पर शस्त्र चला, ईश्वर की दी हुई शतौदना (गौ-भूमि-वेदवाणी) शत्रुनाशक-याज्ञिक के लिए श्रेष्ठ मार्ग है । १

२७ यज्ञ-वेदि गौ-चर्म, कुशाएँ गौ-लोम, राज्य-व्यवस्था गौ-बन्धन-रस्सी, विद्वान् और सोम पीसने के सिल-बट्टे तुझ पर नाचें । २

२८ हे अहिंसनीय शतौदना भूमि-गौ ! यज्ञ-प्रोक्षणियाँ तेरे बाल हैं, जीभ (आग) संमार्जन करती है, शुद्ध यज्ञ-योग्य होकर तू आकाश में चलती है । ३

२९ जो इस शतौदना को पक्का करता है वह इच्छा-पूरक फल पाता है, इसके सभी ऋत्विज हृष्ट होकर यथायोग्य चलते हैं । ४

३० जो शतौदना को, केन्द्र में अक्षीण शक्ति को स्थापित करके, देता है वह उस स्वर्ग को प्राप्त करता है जहाँ विजय के तीन व्यवहार (आय-व्यय-वृद्धि) हैं । ५

३१ वह उन लोकों को प्राप्त होता है जो दिव्य और पृथिवी पर स्थित हैं, जो शतौदना को सुवर्ण से प्रकाशित करके देता है । ६

३२ हे देवी, जो तेरे शासक कल्याण करने वाले और तुझे परिपक्व करने वाले मनुष्य हैं वे सभी तेरी रक्षा करेंगे । हे शतौदना, तू इन से मत डर । ७

३३ हे पृथिवी, वसु (क्षत्रिय) तुझे दक्षिण की ओर से, मरुत् (वैश्य) उत्तर की ओर से और आदित्य (ज्ञानी ब्राह्मण) पीछे पश्चिम दिशा से तेरी रक्षा करें । वह तू अग्निष्टोम (राजा, सूर्य, यज्ञ और प्रतिष्ठा) को पार कर । ८

३४ हे पृथिवी, विद्वान् पितर, साधारण मनुष्य, गन्धर्व (पृथिवी के शासक) युवक और अप्सरा (कर्म करने वाली स्त्रियाँ) वे सब तेरी रक्षा करें । तू अतिरात्र (अतिरात्र नामक यज्ञ को जो रात भर होता है, भूत-भविष्य, अग्नि-सूर्य, प्राण-उदान और प्रतिष्ठा) को पार कर । ९

३५ जो शतौदना पृथिवी को (मनुष्यों के लिए निवास और खेती करने हेतु) देता है वह राजा अन्तरिक्ष, द्यौ, भूमि, आदित्यों (१२ मासों) मरुतों (वायुओं (दिशाओं और सब लोकों को प्राप्त होता है। १०

३६ हे पृथिवी, तू जल को सींचती हुई, अच्छे ऐश्वर्य वाली, पदार्थों को देने वाली होकर विद्वानों को प्राप्त होगी । हे हिंसा न करने योग्य, तू परिपक्व (समृद्ध) करने वाले (शासक) की हिंसा न कर । हे शतौदना, तू सूर्य के समान राजा को प्राप्त हो । ११

३७ जो विजयी विद्वान् राज्य-व्यवहार, नभ-स्थल-सेना में हैं उन्हें तू दूध-घी-अन्न-मधु दे। १२

३८-४९ (१२ मन्त्र) हे शतौदना-अहिंसनीया पृथिवी-गौ ! जो तेरे सिर-मुख-कान-जबड़े-हनु-ओठ-नाक-सींग-आँखें-फेफड़ा-हृदय-कण्ठ-सहित छोटी आंत-जिगर-गुर्दे-बड़ी आँत-गुदा-प्लीहा-(तिल्ली)-कांखें-चमड़ा-मज्जा-हड्डी-उसकी मींग-मांस-रक्त-बाहें-भुजदण्ड-कन्धे-कोहनी-गरदन-कन्धे की हड्डियाँ-पीठ के मोहरे-पसलियाँ-घुटने-उनके जोड़-नितम्ब(कूल्हे)-मूत्रमार्ग-पूँछ-बाल-अयन-थन-जांघें-कुष्ठिका-कलाइयाँ-खुर-चर्म-रोम हैं, इनसे स्वस्थ गौ जैसे अच्छा दूध देती है, वैसे ही पहाड़ से भूगर्भ तक पूरी पृथिवी तू दाता के लिए दूध-आमिक्षा (पनीर)-घी-दही-मक्खन-मधु (शहद-मिठाई-अन्न-जल) आदि पदार्थ सदा दुहती रहे (पैदा करे और सदा सबको देती रहे। रूपक अलङ्कार है। १३-२४

५० हे पृथिवी ! तेरे दोनों पार्श्व घी-लगे पुरोडाशों के समान हैं, उन्हें दो पक्ष मानकर परिपक्व शासक को सुख-ज्ञान-प्रकाश दे। २५

५१ ऊखल-मूसल से कूटकर जो चावल और उनके कण नीचे किसी चर्म या वस्त्र पर रखे जाते, सूप से फटके जाते हैं, वायु शुद्ध कर एक ओर गिराती है उन्हें आग पकाये, दाता प्रयुक्त करे। २६

५२ मैं दिव्य स्नेही अन्नों को अलग-अलग वेदज्ञों के हाथों में सौंपता हूं। जिस कामना से मैं विद्वानों का अभिषेक करता हूं वह सब पूर्ण हो, हम ऐश्वर्यों के रक्षक स्वामी हों। २७ ❀

सूक्त १० । वशा

२६५३ नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः। बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥१

५४ यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः। शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात्। २

५५ वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः। शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥ ३

५६ यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः। वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छा वदामसि। ४

५७ शतं कंसाः शतं दोग्धारो अधि पृष्ठे अस्याः।
ये देवास् तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ ५

५८ यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका। वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा। ६

५९ अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा। ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥७

६० अपस् त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपराः वशे। तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८

६१ यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि। इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद्वशे। ९

६२ यदनूचीरिन्द्रमैरात्व ऋषभोऽह्वयत्। तस्मात्ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद्वशे ॥१०

६३ यत्ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे। इद तदद्य नाकस् त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११

६४ त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा। अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १२

६५ सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता। वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥१३

६६ सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः। वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥१४

६७ सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा। वशा समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥१५

२९६८ अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि। अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद्वशे त्वा ॥१६
६९ तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा। अथर्वा० [शेष १२के समान] ॥१७
७० वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव।वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥१८
७१ ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि। ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥१९
७२ आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे।पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव॥२०
७३ ईर्माभ्यामयनंजातंसक्थिभ्यां च वशे तव। आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः॥२१
७४ यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे। ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत स हि नेत्रमवेत्तव ॥२२

७५ सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥ २३

७६ युध एकः संसृजति यो अस्या एक इद्वशी।तरांसि यज्ञा अभवन्तरसांचक्षु रभवद्वशा ॥२४
७७ वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद्वशा सूर्यमधारयत्। वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥२५

१९७८ वशामेवामृतमाहुर् वशां मृत्युमुपासते।
वशेदं सर्वमभवद् देवाः मनुष्या असुराः पितर ऋषयः ॥ २६

७९ य एवं विद्यात्स वशां प्रतिगृह्णीयात्। तथाहि यज्ञःसर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥ २७
८० तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि।तासां या मध्ये राजति सावशा दुष्प्रतिग्रहा ॥२८
८१ चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः। आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥२९
८२ वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुःप्रजापतिः।वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्चये॥३०
८३ वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये। ते वै ब्रध्नस्यविष्टपि पयो अस्याउपासते॥३१
८४ सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते। य एवं विदुषे वशां ददुस्तगतास्त्रिदिवं दिवः॥३२
८५ ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते।ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः॥३३
८६ वशां देवाउपजीवन्ति वशां मनुष्या उत। वशेदं सर्वमभवद्यावत् सूर्यो विपश्यति ॥३४

काण्ड १० पूर्ण हुआ।

२४ मन्त्रों का सूक्त १०। वशा (वशीकर्त्री-कमनीय-कान्तियुक्त ईश्वरी सृष्टि रूपी गौ)

२९५३ हे अहिंसनीय वशा! प्रकट होती और हुई तुझे नमः, तेरे बाल-खुर-रूप को नमः। १

५४ जो ७ प्रवतों, ७ परावतों और यज्ञ के सिर (लक्ष्य-शिरःप्राण-आत्मा-परमात्मा) को जाने वह वशा (पारमेश्वरी शक्ति-गौ) को स्वीकार करे। १

[७ प्रवत— पास के भूमि के ७ लोक— अतल-वितल-सुतल-रसातल-तलातल-महातल-पाताल, ७ ऊपर के प्राण, ७ ऊपर की इन्द्रियाँ २ आँखें-२ कान-२ नाक के छिद्र- १ मुख।
७ परावत— दूर के ७ लोक भूः-भुवः-स्वः-महः-जनः-तपः-सत्यम्, ७ नीचे के प्राण, ७ नीचे की इन्द्रियाँ— २ हाथ-२ पैर-१ पायु-१ उपस्थ-१ उदर।]

२९५५ मैं ७ पूवत-७ परावत- यज्ञ का सिर और इसमें विचक्षण सोम (रस-चन्द्र-परमात्मा)को जानूँ। ३

५६ जिसके द्वारा द्यौ-पृथिवी-जल सुरक्षित हैं, हजारों की धारक उस वशा का हम वेद से अच्छा वर्णन करें । ४

५७ इस वशा के पीछे सैकड़ों कंस (कामना-युक्त, काँसे के दूध के पात्र)-दुहनेवाले-रक्षक हैं, जो देव उसमें जीते हैं वे एक प्रकार से उसे जानते हैं । ५

५८ यज्ञ-रूपी चरण वाली, अन्न जल वाली, स्वधा (स्वयंधारक शक्ति, अन्न-प्राणयुक्त). प्रसिद्ध, मेघ की पत्नी (रक्षक) वशा ब्रह्म (वेद-ज्ञान-अन्न) से समृद्ध होकर देवों को मिलती है । ६

५९ हे वशा ! तुझ में अग्नि-सोम अनुकूल होकर प्रविष्ट हैं। मेघ तेरा दूध-भरा अयन और बिजलियाँ स्तन हैं । ७

६० तू पहले जल, फिर उपजाऊ भूमि, और तीसरे क्रम में राष्ट्र को अन्न-दूध देती है । ८

६१ हे सत्यशीला वशा ! जब तू आदित्यों से शक्ति पाकर विराजती है तब इन्द्र(बिजली-मेघ-सूर्य) तुझे हजारों पात्रों से सोम पिलाता है । ९

६२ हे वशा ! जब तू अनुकूल होकर इन्द्र (सूर्य) से मिलती तब बैल तुझे बुलाता है । मेघ-शक्र सूर्य क्रुद्ध होकर जल-दूध हर लेता है । १०

६३ हे वशा ! जो क्रुद्ध धनपति(सूर्य) तेरा दूध हर लेता है इसे मोक्षमें सदा ३ लोकोंमें रखता है ।११

६४ वशा देवी उस सोम को ३ पात्रों में लेती है जहाँ दीक्षित अटल अथर्ववेदी राजा-पुरोहित सोने के आसन पर बैठता है । १२

६५ सोम और सब पद वाले प्राणियों के द्वारा सङ्गत हुई वशा गायक-कलाकारों के साथ समुद्र की अधिष्ठात्री होती है १३

६६ वशा वायुसे संगत हो ऋचा-सामों को धारण कर सब पक्षियों के साथ आकाशमें नाचती है ।१४

६७ सूर्य और सब चक्षु के साथ संगत हुई कल्याणकारी वशा तेज धारण कर द्यौ में रहती है । १५

६८ हे ऋत वाली वशा ! जब तू सोने से घिरी स्थित होती है तो अश्वारोही समुद्र-समान होकर तुझ पर उछला करता है । १६

६९ जहाँ दीक्षित अथर्ववेदी सोने के आसन पर विराजता है वहाँ भद्र जन आते और वशा अन्न देने वाली होती है । १७

७० हे अन्न ! वशा क्षत्रिय की और तेरी माता है, यज्ञ वशाका शस्त्र है उससे चित्त एकाग्र होता है। १८

७१ ब्रह्मरन्ध्र के शिखर से वीर्य-बिन्दु उपर उठकर(सहस्रार चक्र तक) जाता है। हे वशा ! तब तू प्रकट होती है, तब होता (योगी) बनता है । १९

७२ हे वशा ! तेरे मुख (वेद-ब्राह्मण) से साम गान, गरदन की धमनियों से बल, अन्न-उदर से यज्ञ, और वेद-स्तनों से किरणें उत्पन्न होती हैं । २०

७३ हे वशा ! तेरी बाहों-टाँगों से २ अयन (उत्तरायण-दक्षिणायन), आँतों से भोज्य पदार्थ तथा खानेवाले बच्चे और पेट से वनस्पतियाँ पैदा होती हैं । २१

७४ हे वशा ! जो तू वरुण (मेघ) के पेट में वर्षा ऋत्वनुसार प्रविष्ट होती है, तब तुझे ब्रह्मा (४ वेदों का ज्ञाता) आदिसृष्टि में बुलाता है वही तेरा नेतृत्व जानता है । २२

२९७५ प्रसव न करनेवाली वशा के उत्पन्न होते हुए गर्भ (संसार या महापुरुष) से सब काँपते हैं । उससे कहते हैं कि वशा प्रसूता हो गयी । वेदों से समर्थ वह इसका बन्धु है । २३

२६७६ वह अकेला ही योधाओं से भिड़ता है जो इसका एक ही वशकर्ता है। यज्ञ तारने वाली नौकाएं हैं, वह उनकी चक्षु (संचालिका) है। २४

७७ वशा यज्ञ को स्वीकार करती, सूर्य को धारण करती, इसमें ब्रह्म के साथ जगत् प्रविष्ट है। २५

७८ वशा को ही अमृत कहते, वशा की मृत्यु नाम से उपासना करते हैं। वशा का ही यह सब रूप देव-मनुष्य-असुर-पितर-ऋषि हुए। २६

७९ जो ऐसा जाने वह वशा को स्वीकार करे। तभी सर्वाङ्ग यज्ञ दाता के लिए बिना रुकावट दुहाता [फल देता] है। २७

८० वरुण [वरणीय परमात्मा] की तीन जीभें [वाणियाँ स्तुति उपासना-प्रार्थना] मुख में अन्दर दीप्त होती हैं, उनमें जो मध्य में विराजती वह [उपासना] कठिनता से ग्राह्य वशा है। २८

८१ वशा का वीर्य ४ प्रकार से विभक्त है — चौथाई आपः [जगत्], चौथाई अमृत [मोक्ष], चौथाई चौथाई यज्ञ [देवपूजा-संगतिकरण-दान], चौथाई पशु [प्राणी]। २९

८२ वशा द्यौ-पृथिवी-विष्णु[सूर्य]-प्रजापति है, जो साध्य-वसु हैं वे वशा का दूध पीते हैं। ३०

८३ जो सिद्ध और वसु ब्रह्मचारी हैं वे वशा का दूध पीकर निश्चय ही नियन्ता परमात्मा के आश्रय में इसके दूध के पास रहा करते हैं। ३१

८४ इससे कोई सोम दुहते, कोई घी [तेज] के पास बैठते, ऐसे विद्वान् के लिए जो वशा को देते हैं वे द्यौ [मूर्धा] के त्रिदिव [तीन भागों में स्थित सहस्रार चक्र] को पहुंचे हुए होते हैं। ३२

८५ ब्राह्मणों के लिए वशा को देकर दानी योगी सब लोकों को पाता है क्योंकि इसमें ऋत-ब्रह्म-वेद और तप अर्पित हैं। ३३

२६८६ देव और मनुष्य वशा के आश्रित जीवित हैं। वशा यह सब संसार है, इस तक पहुंची हुई जहाँ तक सूर्य देखता, चमकता, प्रकाश देता है। ३४

※ आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती अनूदित अथर्ववेद में दशम काण्ड पूर्वार्ध, पूर्ण हुआ। ✤

व्याकरण शब्द-धातु-रूप

१ नये शब्द जोड़ कर सब ८७ हुए। संन्यासाश्रमिन्-गृहाश्रमिन् के रूप करिन्(हाथी)के समान है-

विभक्ति करिन्	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	अरि एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	अर्थ
१	करी	करिणौ	करिणः	अरिः	अरी	अरयः	शत्रु, ने
२	करिणम्	,,	,,	अरिम्	,,	अरीन्	को
३	करिणा	करिभ्याम्	करिभिः	अरिणा	अरिभ्याम्	अरिभिः	से, द्वारा
४	करिणे	,,	करिभ्यः	अरये	,,	अरिभ्यः	के लिए
५	करिणः	;;	,,	अरेः	;;	,,	से
६	,,	करिणोः	करीणाम्	,,	अर्योः	अरीणाम्	का के की
७	करिणि	,,	करिषु	अरौ	,,	अरिषु	में पर
सम्बोधन	हे करिन्	हे करिणौ	हे करिणः	हे अरे	हे अरी	हे अरयः	हे अरे ओ

अरि के समान इकारान्त पुल्लिङ्ग हरि-कवि-मुनि आदि के रूप चलेंगे। अभ्यास करो।
इस पाठ में तृतीया एकवचन में करिणा के समान ही 'आश्रमिणा' प्रयुक्त है।

कृ धातु-रूप वर्तमान काल में लट् लकार — भविष्यत्काल में लृट् लकार

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
मध्यम	करोषि	कुरुथः	कुरुथ	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उत्तम	करोमि	कुर्वः	कुर्मः	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

लृट् में करिष्यति के समान धातु-प्रत्यय के बीच में 'इष्य' लगाकर भविष्यति पठिष्यति आदि बनेंगे। आकारान्त या पा स्था आदि में केवल स्य लगकर य स्यति पास्यति स्थास्यति आदि बनेंगे।
सन्धि-विच्छेद- पुनः-ते। चिकीर्षा-अस्ति। भ्रमण-अशक्य। जित-इन्द्रिय। पर-उपकार।

समास २— बहुव्रीहि

इसमें प्रयुक्त पदों से अन्य पद प्रधान होता है जैसे पूर्णविद्य, विग्रह- पूर्ण है विद्या जिसकी वह
जितेन्द्रियः— जितानि इन्द्रियाणि येन सः।

४- अनुवाद- हिन्दी की संस्कृत बनाओ-
१ क्या तुम परोपकार को करोगे? २ हम परोपकार को करेंगे। ३ वह यज्ञ करेगा। ४ क्या तू सन्ध्या नहीं करेगा? ५ मैं प्रातः सायं सन्ध्या को अवश्य करूँगा। ६ क्या तुम दोनों वेद पढ़ोगे? ७ हम दोनों वेद पढ़ेंगे। ८ क्या आप अनुवाद करेंगे? ९ वे अनुवाद करेंगे। १० हम सदा सत्य बोलेंगे।

५ रचना- १ गृहाश्रमी के रूप लिखो। २ चल के लृट् में रूप लिखो। ३ सन्धि करो- वेद-उक्त, ब्रह्मचर्य-आश्रम, देव-इन्द्र, नमः-ते, महा-आशय। ४ विग्रह-सहित समास बताओ— महाशय, पूर्णायु, जित-क्रोधः, महा-यशः।

❀*❀

पृष्ठ २८, वर्ष १५ अङ्क ६ ज्येष्ठ (शुक्ल) २०४८ वेदज्योति जून ९१, न. ६९२१/६२ डाक लख २०९

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष -६-९१ को पूर्ण हो चुका है; कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

शतपथ, निरुक्त, अष्टाध्यायी, वेदार्थपारिजात-खण्डन
अथर्ववेद, सामवेद के ब्राह्मण

अनुवादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड १-२, २०), वेदार्थपारि[illegible] १०) साम वंशब्राह्मण १०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद [illegible]

—वीरेन्द्र सरस्वती, उपाध्यक्ष, ओजोमित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी ८१७ म[illegible]

वैदिक दैनन्दिनी आषाढ़ २०४८ विक्रम

तिथि कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पू
वार शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु
नक्षत्र पूषा उ श्र ध शत पूभा उ भ रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु श्लेम पू फ उफ ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ
तां जू २८ २९ ३० जु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६

१ जुलाई से मूल्य बढ़ेगा।

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६ उ० प्र०, भारत, पिन २२६००६

ऋग्वेद   ओ३म्   यजुर्वेद

वर्ष १५ अंक ७

अथर्ववेद खण्ड २० साम वेद

वेद-ज्योति

आषाढ़ २०४८ जुलाई १९९१

अथर्ववेद

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९२, दयानन्दाब्द १६७

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्.

सहायक— विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१,

दिल्लीकार्यालय- श्री मञ्जयकुमार, मन्त्री, बी९ हिल व्यू बसन्तविहार नयीदिल्ली५७, दूरभाष ६०१४५२

नव वर्ष मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०९२ शुभ हो !

सत्यार्थप्रकाश—मन्त्र-व्याख्या

क्रमाङ्क ६६। ऋषि- हिरण्यस्तूप, देवता- [illegible], छन्द- त्रिष्टुप्, स्वर- धैवत

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

ऋग्वेद १-३५-२, यजुर्वेद ३३-४३, ३४-३१ (३ बार)

जो सविता अर्थात् सूर्य वर्षादि का कर्ता, प्रकाशस्वरूप- तेजोमय-रमणीय-स्वरूप के साथ वर्तमान सब प्राणी-अप्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरण-द्वारा अमृत का प्रवेश करा; और सब मूर्ति-मान् द्रव्यों को दिखलाता हुआ, सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से सह वर्तमान; अपनी परिधि में घूमता रहता है; किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। वैसे ही एक-एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य प्रकाशक, और दूसरे लोक-लोकान्तर प्रकाश्य हैं। [सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ८]

ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका, प्रकाश्याप्रकाश्य विषय में सविता का अर्थ परमात्मा-वायु भी किया है- सविता जो परमात्मा वायु और सूर्य लोक हैं वे सब लोकों के साथ आकर्षण-धारण गुण से सहित वर्तते हैं, सो हिरण्य अर्थात् अनन्त बल-ज्ञान और तेजसे सहित रथेन ज्ञान और तेजसे युक्त हैं इत्यादि।

यजुर्वेद-भाष्य ३४-३१ में महर्षि ने सविता का अर्थ विद्युत् भी किया है।

ऋग्वेद-भाष्य १-३५-२ में महर्षि ने श्लेषालङ्कार बताकर, और श्री जयदेवशर्मा ने २ अर्थ किये हैं।

पतञ्जलि-कृतं योग दर्शन-शास्त्रम्

१४ स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कार-आसेवितः दृढभूमिः ।
१५ दृष्ट-आनुश्रविक-विषय-वितृष्णस्य वशीकार-संज्ञा वैराग्यम्
१६ तत्परम् पुरुषख्यातेः गुण-वैतृष्ण्यम् ।
१७ वितर्क-विचार आनन्द-अस्मिता-रूप-अनुगमात् सम्प्रज्ञातः ।
१८ विराम-प्रत्यय-अभ्यासपूर्वः संस्कारशेषः अन्यः ।
१९ भवप्रत्ययः विदेह-प्रकृतिलयानाम् ।
२० श्रद्धा-वीर्य-स्मृति-समाधि-प्रज्ञा पूर्वक इतरेषाम् ।
२१ तीव्र संवेगानाम् आसन्नः ।
२२ मृदु-मध्य-अधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः ।
२३ ईश्वर-प्रणिधानाद् वा ।
२४ क्लेश-कर्म-विपाक-आशयैः अपरामृष्टः पुरुष-विशेषः ईश्वरः ।

१४ वह अभ्यास तो लम्बे समय, लगातार, और सत्कार से किया गया दृढ़-भूमि वाला होता है।

१५ देखे-सुने विषयों की तृष्णा से रहित चित्त को वश में करने का नाम वैराग्य है।

१६ पुरुष(आत्मा)के ज्ञान से गुणों सत्व-रजस-तमस) में लालसा-रहित होना पर(बड़ा) वैराग्य है।

१७ विशेष तर्क-विचार-आनन्द-अस्मिता (आत्मा के अस्तित्व) की दशाओं के रूप का क्रमशः अनुगमन करने से सम्प्रज्ञात (वास्तु-ज्ञान-युक्त) समाधि होती है।

१८ अन्य (असम्प्रज्ञात समाधि) विषयों से विराम के विश्वास के बाद हुई जिसमें केवल संस्कार शेष रहें ऐसी होती है।

१९ विदेह और प्रकृति-लय योगियों को 'भव-प्रत्यय'(होने की प्रतीति)नामक समाधि होती है।

२० इनसे अन्यों को सिद्धि श्रद्धा-वीर्य-स्मृति-समाधि-प्रज्ञा के बाद मिलती है।

२१ तीव्र संवेग वालों को सिद्धि शीघ्र पास आती है।

२२ कोमल-मध्य-अधिमात्र होने से उससे भी शीघ्र आती है।

२३ उस समाधि का यह भी साधन है कि ईश्वर में मन का विशेष समाधान हो अर्थात् सब सामर्थ्य-गुण-प्राण-आत्मा आदि द्रव्यों को मन के प्रेम-भाव के साथ ईश्वर के लिए समर्पण करना।

२४ अब ईश्वर का लक्षण कहते हैं— जो अविद्यादि क्लेश और अच्छे-बुरे कर्मों की जो जो वासना है इन सब से जो सदा अलग और बन्धन-रहित है, उसी पूर्ण पुरुष को ईश्वर कहते हैं। फिर वह कैसा है? जिससे अधिक वा तुल्य कोई दूसरा पदार्थ नहीं, तथा जो सदा आनन्द-ज्ञान-स्वरूप, सर्वशक्तिमान् है उसी को ईश्वर कहते हैं। (भाष्य-भूमिका)

जो अविद्यादि क्लेश, कुशल-अकुशल, इष्ट-अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है, वह सब जीवों से विशेष ईश्वर है। (सत्यार्थप्रकाश)

सागर की लहर पर टिका निर्माता बड़े उत्साही कारीगर को रखता और प्रसन्न होता है।

प्रथम ऋग्वेदविद्या में ५. पर्जन्य (वृष्टि) विद्या

८६ शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्योऽभि वर्षतु॥'

यजुर्वेद ३६-१०

हमारे लिए वायु कल्याण-कारी बहे, सूर्य कल्याणार्थ तपे, मेघ गरजता हुआ कल्याणार्थ वर्षा करे। अश्वमेध यज्ञ में अध्वर्यु (गृह-रक्षा-मन्त्री) की राष्ट्रीय घोषणा 'आ ब्रह्मन्' (य० २२-२२ में)-

८७ निकामे निकामे नः पर्जन्यो ऽभि वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्।

बादल हमारी आवश्यकता-कामना पर बरसें, हमारे अन्न-ओषधियाँ फल वाली होकर पकें।

६. अश्वि [अग्नि-जल-वाष्प] विद्या

दो अश्वी आधिदैविक दृष्टि में ज्योति-रस (आग-पानी) की सम्मिलित शक्ति हैं। ये ऋण-धन, विद्युत्, आकर्षण-विकर्षण शक्तियाँ हैं। अश्व ऐंजिन यन्त्र का भी नाम है जिसका वेद में बड़ा ही चामत्कारिक वर्णन है। उन्हीं के बल के द्वारा रेल-जहाज-कारखाने चलते हैं—

८८ तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन् ममृवाँ अवाहाः।
समूहथुर् नौभिरात्मन्वतीभिः अन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः॥

८९ तिस्रः क्षपस् त्रिरहातिव्रजद्भिर नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः॥

९० अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्॥

९१ यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः॥

(१.११६.३-६)

मन्त्रों में परमात्मा ने अश्विवों की शक्ति वाष्प रूपी सफेद घोड़े से चलने वाले जल-स्थल-वायु के यानों का वर्णन किया है जिसको दीर्घतमाः-पुत्र औशिज कक्षीवान् वैज्ञानिक ने समझा था और जिस का प्रतिपादन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद-भाष्य-भूमिका में किया है।

अर्थ— जैसे कोई मरने वाला धन को छोड़ देता है वैसे ही सेनापति भुज्यु (पालक सुख-भोगी और भोजन) को समुद्र में शत्रु-जयार्थ भेज देता है; उसे अश्वी जल-अन्तरिक्षचारी, चालक-युक्त नावों (जहाजों) से ले जायँ।

ये सच्चे अश्वी (वाष्प के ऐंजिन) तीन दिन-रात लगातार तेज़ चलने वाले यन्त्रों के द्वारा भुज्यु (भोगी शासक-योद्धा-व्यापारी) को समुद्र और उसकी दलदल के पार तथा आकाश में सैकड़ों चक्रों और ६ शक्ति वाले यानों से ले जाते हैं। ४

हे अश्वी (सभा-सेना-पति)! तुम दोनों आरम्भ-स्थान-पकड़-रहित समुद्र में सैकड़ों बल्ली-खम्भों वाला जहाज चलाओ और उसके घर में स्थिर भुज्यु को एक देश से दूसरे देश पहुंचाओ। ५

हे अश्विद्रो ! तुम जो अघाश्व (शीघ्र जानेयोग्य वैश्य) के लिए सफेद अश्व (बिजली-भाप) देते हो यह निरन्तर कल्याण है, यह तुम्हारा दान बड़ा कीर्ति-योग्य है कि वह वेगवान् अग्नि वेग ही बढ़ाती है, ग्राह्य है, उसे वैश्य ले। ६

इनमें सायण-द्वारा भुज्यु-अघाश्व की कहानी बताना असत्य और अनुचित है।

अश्वि विद्या का वर्णन निम्नाङ्कित ५० सूक्तों में मिलता है—

मण्डल १— ३४, ४ , ११२, ११६, ११७, ११८, ११६, १२०, १५७, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४। मण्डल २— ३९। म० ३— ५८। म० ४— ४३, ४४, ४५। म० ५— ७३, ७४ ७५, ७६, ७७, ७८। ,, ६— ६२, ६३। म० ७— ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४। म० ८— ८, ९, १०, २२, २६, ३५; ७३, ८५, ८६, ८७। म० १०— ३६ ४०, ४१, १०६ और १४३।

दिन-रात, सूर्य-चन्द्र, माता-पिता, अध्यापक-उपदेशक, सभापति-सेनापति, प्राण-अपान, शल्यक-चिकित्सक, तारविद्या -आकाशवाणी-दूरदर्शन के रिसीवर-ट्रान्समीटर यन्त्र आदि भी अश्वी हैं। शल्यक (सर्जन) की विद्या के चमत्कार हैं- वृद्ध को युवा बनाना, टूटी हड्डी जोड़ना, शरीर में नये अङ्ग लगा देना आदि। तथा तार-विद्या के चमत्कार शब्द और रूप को सर्वत्र भेजना है।

यहाँ तारविद्या के केवल २ मन्त्र १-११९-१० और १०-३९-१० दिये जाते हैं—

६२ युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।
शर्यैरभि द्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥

६३ युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैः नवती च वाजिनम्।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत् सखं भगं न नृभ्यो हव्यम्मयोभुवम् ॥

अर्थात् दोनों अश्वी (पाजिटिव-निगेटिव पोटेन्शियल्स), ग्राहक-प्रक्षेपक यन्त्र (ट्रान्समिटर और रिसीवर) ९९ (अनेक) तार-बिजली-चुम्बक आदि साधन प्रयुक्त कर मनुष्यों और सेना आदि के हितार्थ तार-विद्या (टेलीग्राफ-टेलीफोन-बेतार के तार आदि) का सम्पादन किया करते हैं। यह पेदु (वैज्ञानिक पुरुषार्थी) के लिए ही बार-बार अभ्यास और प्रयोग से ही सम्भव है।

इन मन्त्रों में सायण का पेदु नामक व्यक्ति की कहानी बताना असत्य एवं नितान्त अनुचित है।

यह शुष्क-आर्द्र-विद्युत् की विद्या विश्वामित्र ने राम को सिखायी थी। (वाल्मीकि रामायण १-छप्पन-६) शुक्र नीति (१-३-२६७) में लिखा है- अयुत-क्रोशजा वार्ता हरेदेकदिनेन वै। राजा दस हजार कोस (२०००० मील, ३२००० किलोमीटर) दूर की बात एक उसी दिन जान ले। यह तभी सम्भव है जब वैदिक तार-विद्या उस काल में भी प्रचलित हो।

अश्वि-चालित यान [मोटर-रेल-जहाज

अथर्व वेद २०-७६-२ में रथ (रमणीय रेल-जहाज) का वर्णन पठनीय है जो सैकड़ों को ले जाये-

६४ प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्।
अनु त्रिशोकः शतमावहन् नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥

इस और अगली उषा के नृत्य में हम तुम नरों के नेता के होवें। जो ३ (बिजली-वाष्प-पेट्रोल) से दीप्त शक्तिशाली रथ [तेज गतिवाला रमणीय रेल-जहाज] हो वह ज्ञानी के साथ सैकड़ों नरों को ले जाये। सैकड़ों को ले जाने वाला एक रथ रेल-जहाज ही हो सकता है।

संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः

४. भोजन-प्रकरणम्

संस्कृत	हिन्दी
नित्यः स्वाध्यायो जातः भोजन-समयः आगतः, गन्तव्यम् ।	नित्य का पढ़ना-पढ़ाना हो गया, भोजन-समय आया, चलना चाहिए ।
तव पाकशालायां प्रत्यहं भोजनार्थं किं किं पच्यते ?	तुम्हारी पाकशाला में प्रतिदिन भोजन के लिए क्या क्या पकाया जाता है ?
शाक सूप औदश्वित्क ओदन अपूपादयः ।	शाक, दाल, कढ़ी, भात और पुआ आदि ।
किं वः पायसादिमधुरेषु रुचिर् नास्ति ?	क्या तुम्हारी खीर आदि मीठोंमें रुचि नहीं है?
अस्ति खलु परन्तु एतानि कदाचित् कदाचिद् भवन्ति ।	है सही, परन्तु ये भोजन कभी कभी होते हैं ।
कदाचित् शष्कुली श्रीखण्डादयोऽपि भवन्ति न वा ?	कभी पूरी कचौड़ी शिखरन आदि भी होते हैं वा नहीं ?
भवन्ति, परन्तु यथर्तुयोगम् ।	होते हैं, परन्तु जैसा ऋतु का योग हो
सत्यम्, अस्माकम् अपि भोजनादिकम् एवम् एव निष्पद्यते ।	ठीक है, हमारा भी भोजन आदि ऐसे ही बनता है ।
त्वं भोजनङ्करिष्यसि न वा ?	तू भोजन करेगा वा नहीं ?
अद्य न करोमि, अजीर्णता अस्ति ।	आज नहीं करता, अजीर्णता है ।
अधिक भोजनस्य इदमेव फलम् ।	अधिक भोजन का यही फल है ।
बुद्धिमता तु यावत् जीर्यते तावद् एव भुज्यते ।	बुद्धिमान् से तो जितना पचाया जाता है उतना ही खाया जाता है ।
अति स्वल्पे भुक्ते शरीर-बलं ह्रसति अधिके च ।	बहुत कम खाने में शरीर का बल घटता है और अधिक में भी ।
अतः सर्वदा मिताहारी भवेत् ।	इससे सदा मित आहार वाला होवे ।
योऽन्यथाहार-व्यवहारौ करोति स कथं न दुःखी जायेत ?	जो उलटा आहार-व्यवहार करता है वह क्यों न दुःखी होवे ?
येन शरीरात् श्रमो न क्रियते स शरीर-सुखं नैव आप्नोति ।	जिससे शरीर से श्रम नहीं किया जाता वह शरीर के सुख को नहीं प्राप्त होता ।

येनात्मना पुरुषार्थो न विधीयते	जिससे आत्मा से पुरुषार्थ नहीं किया जाता
तस्यात्मनो बलमपि न जायते ।	उसका आत्मा का बल भी नहीं होता ।
तस्मात् सर्वैर्मनुष्यैर्यथाशक्ति	इससे सब मनुष्यों को शक्ति के अनुसार
सत्क्रिया नित्यं साधनीया ।	उत्तम क्रिया नित्य सिद्ध करनी चाहिए ।
भो देवदत्त ! त्वामहं निमन्त्रये ।	हे देवदत्त ! मैं तुझको निमन्त्रित करता हूं।
मन्येऽहं कदा खलु आगच्छेयम् ?	मैं मानता हूं, कब आऊँ ?
श्वो द्वितीय प्रहरमध्ये आगन्तव्यम्।	कल दोपहर मध्य में आना चाहिए ।
आगच्छ भो ! आसनं अध्यास्व ।	आइए जी, आसन पर बैठिए ।
भवता ममोपरि महती कृपा कृता।	आपने मुझ पर बड़ी कृपा की ।

शब्द-संख्या

इस प्रकरण में नये आये ३४ शब्द पिछले ८७ में मिलाकर अबतक कुल संस्कृत शब्द १२१ हुए ।

नकारान्त पुल्लिङ्ग १०. आत्मन् शब्द के रूप

विभक्ति	एक वचन	द्विवचन	बहु वचन	अर्थ
१	आत्मा	आत्मानौ	आत्मान:	आत्मा ने
२	आत्मानम्	,,	आत्मन:	को
३	आत्मना	आत्मभ्याम	आत्मभि:	से
४	आत्मने	,,	आत्मभ्य:	के लिए
५	आत्मन:	,,	,,	से
६	,,	आत्मनो:	आत्मनाम्	का के की
७	आत्मनि	,,	आत्मसु	में पर
सम्बोधन	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मान:	हे अरे

धातु-रूप--आत्मनेपदी मन्य धातु के वर्तमाने लट् लकार:

धातुएँ ३ प्रकार की हैं- परस्मैपदी भू, पठ, आदि, आत्मनेपदी एध् मन्य आदि, उभयपदी कृ आदि।

पुरुष	प्रत्यय एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम	अते	एते	अन्ते	मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
मध्यम	असे	एथे	अध्वे	मन्यसे	मन्येथे	मन्यध्वे
उत्तम	ए	आवहे	आमहे	मन्ये	मन्यावहे	मन्यामहे

इसी प्रकार एध्-जीय-पच्य-निष्पद्य-विधीय-क्रिय-जाय-निमन्त्रय आदि के रूप बोलो-लिखो।

अभ्यास ३- संस्कृत बनाओ- सन्ध्याकाल आगया । मैं भोजन नहीं करूँगा । हम कल अनुवाद करेंगे । मैं तुझे निमन्त्रण देता हूं। तुम और हम वैदिकधर्म मानते हैं ।

३. समास पूर्वपद-प्रधान अव्ययीभाव

जिनमें पहला पद अव्यय और मुख्य है वे अव्ययीभाव हैं-यथा शक्ति [शक्ति के अनुसार], प्रत्यहं [प्रत्येक दिन], यथायोग्यम्, आजन्म [जन्म पर्यन्त, यथतुं योगम् आदि ।

शतपथ ब्राह्मण कां ६, अध्याय ३ (३८) ब्राह्मण १

सावित्र-होम

यही देवों ने कहा— चुनो और चिति को चाहो। उनके चुनने पर सविता ने इन [यजु ११.१-८] को देखा अतः सावित्र कहाये। इन ८ से १ आहुति दी, देकर पहले ही बनायी हुयी, ८ प्रकार की अषाढा को देखा। १

उन्होंने जो कहा कि चुनो-चिति चाहो; और चुनते हुए देखा अतः चिति, और आहुति यज्ञ है उसको करके [इष्टवा] देखा अतः इष्टका नाम पड़ा। [अर्थ१.ठक ५२]

उस ८ प्रकार की हुयी एक को ८ यजुओं से होमता है अतः यह १ भी ८ हो गयी। ३

उसे उपरि करके देता है अतः वह रूपों से बड़ी है। ४

उसे लगातार देता रहता है। देव डरे कि दुष्ट राक्षस विघ्न न करें, उन्हों ने इनके निवारणार्थ यह सन्तत हवन देखा, अतः सन्तत आहुति देता है। ५

या उस सविता(अग्नि) को इस आहुति से प्रसन्न कर यज्ञ कर इसे सँभालता है। सविता को प्रसन्न करता है अतः ये सावित्र हैं अतः यह आहुति देता है। ६

या सामने रेतः रूप बने सविता-अग्नि को सींचता है। योनि में जैसा रेतः सींचा जाता है वैसा पैदा होता है। क्योंकि इ से रेतःभूत सविता को सींचता है अतः सावित्र हैं। इसी लिए यह आहुति देता है। ७

यहाँ स्रुवः और स्रुक प्रयुक्त होते हैं क्योंकि ये प्राण-वाणी हैं जिनसे देवों ने पहले कर्म करने की इच्छा की। ८

जो स्रुव है वही प्राण-प्रजापति और जो स्रुक है वह वाणी-योषा है, और जो वाणी के लोक से आपः आयीं वे ये हैं जिन्हें यह आहुति देता है। ९

आहुति लगातार देता है क्योंकि वे आपः लगातार आयीं, और जो प्रजापति त्रयी विद्या के साथ इनमें घुसा वह यह है जो इन यजुओं से आहुति देता है। १०

जो तीन पहले यजु हैं वे लोक हैं और जो चौथा है वह त्रयी विद्या-जगती-सब छन्द है। और ४ अन्तिम मन्त्र हैं वे दिशाएँ हैं। ये-वे लोक-दिशाएँ और यह त्रयी विद्या प्रजापति है। ११

अब आहुति देता है—

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥(१)

प्रजापति ही योग करता हुआ है क्योंकि यह मन को इस कर्म के लिए युक्त करता है। १२

मन-सविता, प्राण-धी हैं, वह अग्नि की ज्योति देखकर पृथिवी के लिए इसे धारण करता है। १३

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या॥ (२)

मन ही इस कर्म के लिए युक्त करता है, अयुक्त मन से कुछ नहीं कर सकता, देव सविता के उत्पादित संसार में, स्वर्ग पाने की शक्ति से। १४

युक्त्वाय सविता देवान् स्वर्यतो धिया दिवम्। बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥(३)

मन सविता, प्राण देव हैं। दोनों स्वर्ग लोक (सुख) को पाते हैं, धी से इस कर्म के लिए इन्हें युक्त करता है। बड़ी ज्योति वाला यह आदित्य और अग्नि संस्कार करते, सविता उन्हें प्रेरणा देता है। १५

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परि ष्टुतिः ॥ (४)

विप्र देव विप्र बड़े विद्वान् प्रजापति के इस कर्म के लिए मन और प्राणों को युक्त करते हैं। अकेला ही कर्मों का ज्ञाता सविता होत्रों (यज्ञों) का विधान करता है। जब यह चयन किया जाता है तब यज्ञ किये जाते हैं। सविता देव की स्तुति महान् है। १६

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ (५)

प्राण पूर्व्य ब्रह्म है, अन्न नमः है, इससे ही उस आहुति के लिए उन अन्न से प्राणों को इस कर्म के लिए तुम दोनों (अध्यापक-शिष्य) को युक्त करता हूं। जैसे देव-मनुष्य दोनों में यजमान की कीर्ति हो अतः यह कहा। अमृत प्रजापति के सब पुत्र देव सुनें जो इन दिव्य धामों लोकों में हैं। १७

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुः देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशः रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ (६)

प्रजापति ने पहले जो कर्म किया देवों ने उस देव की महिमा वीर्य रूप यज्ञ का ओज से अनुकरण किया। इनमें जो पार्थिव अंश वाले लोक हैं उन्हें देव सविता किरणों द्वारा महिमा से विशेष रूप से मापता अलग करता है। १८

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ (७)

यह आदित्य देव सविता यज्ञ-ऐश्वर्य के लिए यज्ञ-प्रजापति को प्रेरणा दे। केत अन्न का पवित्र करने वाला दिव्य गन्धर्व (पृथिवी-प्राण-धारक) वह हमारे अन्न को पवित्र करे; वाणी का पति प्राण हमारी इस वाणी-कर्म को मधुर बनाये। १९

इमं नो देव सवितर्यज्ञं देवाव्यं सखिविदं सत्राजितं धनजितं स्वर्विदम् ।
ऋचा स्तोमं समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद् गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ॥ (८)

यह आदित्य देव सविता जिस यज्ञिय कर्म को आगे बढ़ाता है यह सुखी कल्याणी ऋचा को पाता है जो देव-रक्षक; सखा-दायक, सत्य से विजयी, धन-जयी, स्वर्ग-जयी होता है। ऋचाओं के स्तोम को गायत्र से रथन्तर साम, गायत्र के मार्ग में बृहत् साम को समृद्ध कर, यह सुवाचन-आहुति है। ये ८ यजु त्रयी विद्या जैसी पहले पैदा होती है वैसी अब, और जो अग्नि बनायी गयी वही यह है जो इसके बाद चुनी जायेगी। २०

वे ये ८ सावित्री हैं। ८ अक्षरों की गायत्री, गायत्र अग्नि है, जितनी यह और इसकी मात्रा है उसी से रेतः हुई को सींचता है, अतः वे ९ हुईं, स्वाहाकार नवम है। ९ दिशा-प्राण अग्नि हैं; जितनी आग, उतनी से सींचता है, वे १० हुईं; आहुति दशमी है। १० अक्षरों का विराट्-आग, १० दिशा-प्राण आग है। उतनी उसकी मात्रा पूरी हो जाती है। २१

इस आहुति के होने पर आग देवों से भाग गयी। वे बोले— यह पशु है, इस को पशुओं के साथ ढूँढ़ें, यह अपने रूप के द्वारा प्रकट होगी। ऐसा ही हुआ। अतः पशु अपने रूप के द्वारा प्रकट होता है— गौ गौ के द्वारा, अश्व अश्व के द्वारा; पुरुष पुरुष के द्वारा। २२

वे बोले– यदि सब से खोजेंगे तो श्रम व्यर्थ होगा अतः कुछ से जान लें। उन्होंने इस एक पशु रासभ (गधा) को गौ-अवि का एक रूप देखा अतः यह एक होकर द्वि-रेता है। २३
यह शूद्र नकली पुरुष है जो देव-पितर-मनुष्यों की रक्षा नहीं करता, पशुओं के साथ व्यर्थ है। २४
त्रिवृत् अग्नि तीनों से अनुकूल चाहता है। जितनी वह और उसकी मात्रा है उसीसे अनुकूलता चाहता है, वे ५ सम्पदा होती हैं, अग्नि ५ चितियों का, ५ ऋतुओं का संवत्सर-अग्नि, जितनी वह यह, उसकी मात्रा उतनी वह होती है। २५
वे मूँज की मेखलाओं से बँधे होते हैं। अग्नि देवों से भाग कर मूँज में घुस गयी अतः वह छिद्र वाली है जिसके अन्दर लाल धुआँ सा होता है; यह अग्नि की योनि है, ये पशु अग्नि हैं। योनि गर्भ को नहीं मारती, अहिंसा के लिए योनि से पैदा होता हुआ उत्पन्न होता है। २६
वे त्रिवृत् होते हैं। अश्वाभिधानी बनी अग्नि त्रिवृत् अश्व के मुख को बाँधती है यह योनि-रूप है जो गर्भ के चारों ओर रहती है। २७
वे अश्व-रासभ-बकरा क्रम से पूर्वाभिमुख खड़े होते हैं। जो अश्रु क्षरित हुआ वह अश्व, जो रसा था वह रासभ, जो रस कपाल में लिपटा वह बकरा, जो कपाल था वह यह मिट्टी है जिसे ये लाते हैं। इन रूपों से इसने पहले रचना की थी उन्हीं से यह अब बनाता है। २८
[ये तारे हैं अश्व सूर्य, रासभ कर्क राशि के दो तारे (डि टि.वन आसेल्ज़); बकरे मकर राशि के तारे (कैप्रिकोर्नस-कैप्रीकोर्न, वन जोडाइक लाइक ए हार्नेड गोट) [देखो कालिनाथ मुखर्जी त 'पापुलर हिन्दू ऐस्ट्रोनामी']
वे दक्षिण की ओर खड़े होते हैं। देव डरे कि दुष्ट राक्षस हमारा यज्ञ दक्षिण से नष्ट न कर दें अतः इसी वज्र सूर्य-अश्व से राक्षस मार कर अभय स्थान पर यज्ञका विस्तार किया था वैसेही यह यजमान इस वज्र द्वारा दक्षिण के राक्षस मारकर यज्ञ करता है। २९
दक्षिण में आहवनीय-वृषा अरत्नि भर दूरी पर उत्तर में स्थित दभ्रि (कुदाली) -योषा के पास होता है। पत्नी पति के उत्तर में ऐसी ही दूरी पर लाती है। ३०
वह अभ्रि बाँस की होती है। अग्नि देवों से डरकर बाँस में घुसी अतः सच्छिद्र पर्व-कवचों की पहचान के लिए जहाँ-तहाँ जलाया जिससे वे चितकबरे हुए। ३१
वह चितकबरी हो, यदि वैसी न मिले सच्छिद्र तो हो ही, यह बाँस-मिट्टी अग्नि की योनि है। योनि रक्षा के लिए है, वह गर्भ की हिंसा नहीं करती, उससे उत्पन्न होता हुआ ही उत्पन्न होता है।३२
वह अभ्रि प्रादेश या अरत्नि-बाहु मात्र हो, इतनी ही वाणी बोलती है, बाहु से ही बल होता है। ३३
वह एक ओर धार वाली हो, ऐसी ही बाणी की धार है जो दोनों ओर काटती है कि इससे देव-मानुष, सत्य-असत्य बोलता है जिस से वह दुधारी हो जाती है। ३४
अथवा दुधारी हो क्योंकि यही अभ्रि का बल है कि इसकी धार इसमें दोनों ओर बल देती है।३५
अथवा दुधारी हो क्योंकि जैसे देवों ने इसे पाकर इन लोकों के लिए खोदा वैसे ही यह यजमान इसे पाकर उन लोकों के लिए खोदता है। ३६
वह जो नीचे से खोदता है यह इस लोक से, जो ऊपर से वह उस लोक से, और जो बीचमें चलता है वह अन्तरिक्ष लोक से, इन सभी लोकों से खोदता है। ३७
इसे लेता है– देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत् पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत्॥ (९)

सविता से प्रेरित होकर ही इसे इन अश्वी-पूषा के बाहु-हाथों से अग्नि लेता और इसमें गायत्री छन्द रखता है। पशु पुरीष हैं, तत्सम्बन्धी अग्नि पृथिवी से ले। और उसे त्रैष्टुभ छन्द से लेता तथा उसे अग्नि में रखता है। ३८

अग्निरसि नार्यसि त्वया वयमग्निं शकेम खनितुं सधस्थ आ। जागतेन छन्दसांगिरस्वत्॥ (१०)

यह अग्नि है जिसे नत्य से लेता है। यह वज्र होकर भी योषा नारी है जो किसी की हिंसा नहीं करती; शान्ति ही करती है। यहाँ सधस्थ में हम तेरे द्वारा अग्नि खोद सकें। उसे जागत छन्द से लेता है और उस में जागत छन्द रखता है। ३९

तीन छन्दों से लेता है। अग्नि त्रिवृत् है, यह और जितनी उसकी मात्रा है उतनी से ही उसको लेता है। तीन से लेकर चौथे (छन्द) से अभिमन्त्रित करता है जैसा देवों ने किया था। ४०—

हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिं हिरण्ययीम्।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसांगिरस्वत्॥ (११)

शिल्पी सविता सुनहरी चमचमाती छन्दोमयी अभ्रि को हाथ में लेकर पकड़ता है और अग्नि की ज्योति देखकर उसे पृथिवी के लिए ले लेता है। वह उसको आनुष्टुभ छन्द के द्वारा लेता और उसमें आनुष्टुभ को रख देता है। वे यही छन्द हैं जिन्हें वेणु की बनी यह आरम्भ से ही धारण करती है। [शिल्पी कारीगर मन्त्रों में बतायी विधि से फावड़ा-कुदार चलाता और खोदता है।] ४१

कुछ उसको सोने की बनाते हैं किन्तु ऐसा न करे। यह छन्दों के कारण हिरण्ययी होती है क्योंकि वे अमृत हैं जो हिरण्य है। ४२

उसको चार से लेता है। सब वाणी ४ अक्षरों (स्वरों) की है — वाक में १ अक्षर है, अक्षर में ३। एक यह अनुष्टुप् और तीन उसके पहले के यजु। ऐसे सब ४ अक्षरों की वाणी के द्वारा खोदता और सँभालता है अतः ४ से लेता है। ४३

अथवा ४ दिशाएँ हैं, उनमें वाणी को धारण करता है अतः ४ दिशाओं में वाणी बोलती है। छन्दों-यजुओं से अभ्रि को लेता है वे ८ हुए। ४ दिशाएँ, ४ अवान्तर दिशाएं, सब दिशाओं में वाणी को धारण करता है अतः सब दिशाओं में वाणी बोलती है। ४४

यह अध्याय ३ में ब्राह्मण १ पूर्ण हुआ।

—※—

अथर्ववेद कांड ११, सूची

प्रपा.	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	ऋषि	देवता	विषय	छन्द	महर्षि दयानन्द-कथित विषय
२४	१	१	३७	ब्रह्मा	ब्रह्मौदन		त्रि गा ज उ	पुत्रेष्टिविधानादि अग्नीश्वरप्रार्थना ज्योति-
		२	३१	अथर्वा	रुद्र		,,	स्मृतं हिरण्यामित्यादि विमानादि शिल्पविद्या
								रुद्रेश्वरस्तुतिप्रार्थनादि पदार्थविद्या
	२	३	५६	,,	बार्हस्पत्यौदन		,,	मासाज्याद्यलङ्कार ब्रह्माण्डालंकारौदनेश्वरादि
		४	२६	वैदर्भि	प्राण		,,	ब्रह्मौदन प्राशन प्राणेश्वराद्यनेकनामा प्राणेश्वरे
								सर्वं प्रतिष्ठितम् इति पदार्थ विद्या
२५	३	५	२६	ब्रह्मा	ब्रह्मचारी		,,	ब्रह्मचर्याचार्य ईश्वरादि ब्रह्मचर्याश्रमादि
		६	२३	शन्ताति	मन्त्रोक्त		,,	ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिमित्यादि
								ब्राह्मण ब्रह्म ज्येष्ठामित्याद्यग्नीश्वर प्रार्थनादि स्तुतिः प०
	४	७	२७	अथर्वा	उच्छिष्ट		अनुष्टुप्	उच्छिष्टे नामरूपं च उच्छिष्टे लोक आहितः इत्यादि
		८	३४	कौरुपथि	मन्यु		,,	उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः इत्यादि
								मन्युर्जायां ब्रह्म ज्येष्ठादि, प्रश्नोत्तरादि, सत्य श्रद्धादि प०
	५	९	२६	कांकायन	अर्बुदि		,,	बाहु इषु उत्तिष्ठ युद्धादि अदिते अर्बुदे तवेश्वरादि
		१०	२७	भृग्वङ्गिरा	त्रिसन्धि		,,	आदित्यो ब्रह्मणस्पतिरित्यादि विजयार्थेश्वर प्रार्थनाहुति
								त्रिसन्धेत्यादि युद्धादि पदार्थ विद्या

योग २ ५ १० ३१३ पूर्वागत २९८६ जोड़कर अब तक सब ३२९९ हुए ।

छन्द

सूक्त १ त्रिष्टुप् गायत्री जगती उष्णिक् ।

२ ,, अनुष्टुप् महाबृहती शक्वरी अतिशक्वरी ।

३ आसुरी गा-पं-बृ-अ-उ-ज । साम्नी अ-उ-बृ-त्रि । प्राजापत्या अ-बृ-गा । याजुषी ज-त्रि-पं-गा । दैवी ज-पं । आर्ची अ-उ ।

४ शंकुमती अनुष्टुप् पंक्ति त्रिष्टुप् जगती ।

५ त्रिष्टुप् ,, ,, अतिजगती जगती आर्ची उष्णिक् ।

६-७-८ अनुष्टुप् पथ्या ,, ।

९ ,, गायत्री ,, ,, ,, ब्राह्मी ,, त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी

१० ,, त्रि ,, ,, ,, ,, ,, ,,

ओ३म्

अथर्ववेद काण्ड ११

प्रपाठक २४ अनुवाक एक

३७ मन्त्रों का सूक्त १। बृह्मौदन

२८८७ अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा।
सप्त ऋषयो भूतकृतस् ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १

८८ कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २

८९ अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः।
सप्तऋषयो भूतकृतस् ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ३

९० समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४

९१ त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम्।
अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥ ५

९२ अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान्।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥ ६

९३ साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥ ७

अथर्व वेदकाण्ड ११ प्रपाठक २४ अनुवाक एक [सूक्त १ से दस तक]

अनुवाक-विषय – पुत्रेष्टि विधानादि०, अग्नीश्वर-प्रार्थना, ज्योतिरमृतं हिरण्यमित्यादि०, विमानादि-शिल्प विद्या, रुद्रेश्वर-स्तुति-प्रार्थनादि-पदार्थ विद्या –महर्षि दयानन्द सरस्वती

३७ मन्त्रों का सूक्त १। ब्रह्मौदन (वेद-ज्ञान-अन्न)

२६८७ हे अग्रणी ! तू प्रसिद्ध हो, वह सनाथ प्रकृति-पृथिवी पुत्रों (जीवों) की सुख-कामना वाली होकर वेद-ओदन पकाती है। वे प्राणी-उत्पादक ७ ऋषि (५ ज्ञानेन्द्रिय-मन-बुद्धि और पृथिवी-जल-आग-वायु-आकाश-विद्युत्-नक्षत्र) यहाँ प्रजा के साथ तुझे मथें (प्रेरणा करें)। १

८८ हे सुख-वर्षक सखाओ ! तुम हमचल करो, अद्रोही-रक्षक बनकर वाणी प्रयुक्त करो। यह संग्राम-जयी अग्रणी वीर है जिससे देव दस्युओं को जीतते हैं। २

८९ हे ज्ञानी अग्रणी ! तू बड़े पराक्रम और वेदज्ञान के पकाने के लिए बढ़। भूतों के बनाने वाले ऋषि तुझे बढ़ाते हैं। इस प्रजा को सब वीरता-युक्त ऐश्वर्य दे। ३

९० हे तेजस्वी ! तू तेज से प्रदीप्त हो, पूजनीय देवों को जानकर यहाँ ला। हे धनी ! उन्हें धन दे और इस को उत्तम स्वर्ग मोक्ष तक चढ़ा। ४

९१ देव-पितर-मनुष्यों का २ प्रकार का भाग जो पहले ही बनाया है, तुम वे अंश जानो, मैं इन्हें तुमको बाँटता हूं, जो देवों का भाग (ज्ञान) है वह इस प्रजा को पार करता है। ५

९२ हे नेता ! बली तू शत्रु को हराने वाला है, नीच शत्रुओं को नीचे कर, यह मापी जाती और मापी गयी सत्ता-मात्रा तेरे सजातीयों का शत्रु से कर लेने वाला बनाये। ६

९३ तू सजातीयों के साथ दूध-अन्न से बढ़, इस को बड़े पराक्रमार्थ आगे बढ़ा। तू बड़ा होकर सुख के लोक में चढ़ जिसे स्वर्ग कहते हैं। ७

९४ इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ।। ८
९५ एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद् भरन्त्युदूह ।। ९
९६ गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमागुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ।। १०
९७ इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रङ्गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ।। ११
९८ उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस् तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस् पादयामि ।। १२
२९९९ परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय ।
तासाङ्गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ।। १३
३००० एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भङ्गृभाय ।। १४
३००१ ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषि-प्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन् नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ।। १५
२ अग्ने चरुर्यज्ञियस् त्वाध्यरुक्षच्छुचिस् तपिष्ठस् तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसङ्गत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस् तपन्तु ।। १६
३ शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ।। १७
४ ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस् तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्रविशत प्रतिगृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ।। १८
५ उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजा अहं पक्ता पञ्चदशस् ते अस्मि ।। १९
६ सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आदधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान् मह्यमेव ।। २०
७ उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्याम अधस्पदं द्विषतस् पादयामि ।। २१

२९९४ यह सुखदा देवी पृथ्वी प्रसन्न होकर अच्छा आचरण-ज्ञान स्वीकार करे और हम पुण्यके लोक में जायें। ८

९५ हे सेना ! इन सिल-बट्टों के समान वैश्य-क्षत्रियों को मिला, यज्ञ(सङ्गठन)-कर्ता (राष्ट्रपति) के लिए अन्नादि कूट-पीस। प्रहार करती हुई तू अक्रामकों का संहार कर, प्रजा को उन्नत करने का उच्च विचार कर। ९

९६ हे वीर! तू इन पत्थरों के समान दृढ़ क्षत्रिय-वैश्यों को हाथ(अधिकार) में ले, याज्ञिक देव तेरे यज्ञ सङ्गठन में आयें, जिन्हें तू वरण करता है उनमें ३ (मन्त्री-सेनापति-पुरोहित) श्रेष्ठ हैं, मैं उन तेरी समृद्धियों को यहाँ सिद्ध करता हूं। १०

९७ यह(सेना-प्रजा) तेरी धारक शक्ति है और यह जन्म उत्पादक है, शूर पुत्रों वाली यह अदिति अखण्डित पञ्चजना प्रजा) तुझे वरण करे, इसे शत्रुओं से दूर रख, इस के लिए सब वीरों से युक्त ऐश्वर्य दे। ११

९८ हे पूज्यो! तुम उत्तम जीवन के उद्योग के लिए बैठो, तुच्छों से छूटो, हम लक्ष्मी द्वारा समानों से बढ़कर हों, मैं द्वेषियों को नीचे गिराता हूं। १२

९९ हे नारी (नरों की सभा)! तू पराक्रम से चल और फिर लक्ष्य पर शीघ्र आ, तुझे आप्तों का समूह पुष्टि के लिए ऊपर चढ़ाता है, जितनी स्त्रियाँ पूज्य हों, उन्हें ले, धीरी होकर अन्यों को छोड़ दे। १३

३००० ये शोभित योग्य प्रजा आयी हैं, हे नारी (सभा)! उठ, बली को पति बना, उसके साथ सुपत्नी और प्रजा से प्रजावती तुझे यह सङ्गठन मिला है, तू कुम्भ (भूमि-धारक राष्ट्र) ले। १४

३००१ हे आप्त प्रजा! जो अन्न-बल का भाग पहले से ऋषियों से बताया नियत हो उससे इन्हें पुष्ट कर। यह उग्र सङ्गठन तुमको मार्ग-दर्शक, ऐश्वर्य-प्रजा-पशु-वीरों को लाने वाला हो। १५

२ हे तेजस्वी! यह पूजनीय आचरण तुझे उच्च उठाता है, पवित्र-तपस्वी होकर इसे तप द्वारा और तपा। मन्त्रद्रष्टाओं में प्रसिद्ध विद्वान्-गुणी-तपस्वी सब एकत्र होकर इस सेवनीय आचरण को सदस्यों के द्वारा तपायें। १६

३ ये शुद्ध-पवित्र-पूज्य-याज्ञिक-योग्य-आप्त-स्त्रियाँ ज्ञान-आचरण तक पहुंचे। ये हमें प्रजा, बहुत पशु दें और ब्रह्मौदन (ज्ञान) को पक्का करने वाला सुकर्मियों के लोक को जाये। १७

४ वेद-ज्ञान से शुद्ध और तेज से पवित्र ये दुष्टों को ताड़ना देने वाले सैनिक शान्ति के बांटने वाले, और संगठन के अंग पूजनीय हैं। हे सैनिको! तुम आप्तों में प्रवेश करो, ज्ञान-आचरण तुम को स्वीकार करे, इसे पक्का कर सुकर्मियों के समाज को जाओ। १८

५ हे राजन्! तू बड़ी महत्तासे महान्, हजारों पीठों की शक्ति से और हजारों अनुयायी-युक्त हो कर बहुत बढ़। पितामह-पिता-पुत्र-पौत्र के साथ मैं पक्का भक्त १५ (प्राणेन्द्रिय-भूत) वाला, राष्ट्र के चौदह विभागों का अधिष्ठाता १५ वाँ हूं। १९

६ हजारों का पोषक, सहस्रों स्तोत्र वाला, शतवीर्य, अक्षय ब्रह्म रूपी ओदन (भात) सुखप्रद और देवों का यान है। इन शत्रुओं को तुझे सौंपता हूं, सन्तान-रहित नाश कर, मुझ करदाताको सुख दे। २०

७ तू पृथिवी पर बढ़, इसे प्रजा से बढ़ा, राक्षसों को हटा, इसे अधिक पुष्ट कर, श्री के द्वारा मैं सब समानों से आगे बढ़ूं और द्वेषियों को पैरों के नीचे गिरा दूँ। २१

३००८ अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङ्ङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ।। २२

९ ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ।। २३

१० अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ।। २४

११ शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास् ते मा रिषन् प्राशितारः ।। २५

१२ सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीनामार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ।। २६

१३ शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ।। २७

१४ इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं निदधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ।। २८

१५ अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ।। २९

१६ श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।
येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ।। ३०

१७ बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान् ।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ।। ३१

१८ बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास् ते मा रिषन् प्राशितारः ।। ३२

१९ आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ।। ३३

२० यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ।। ३४

२१ वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ । सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ।। ३५

३०२२ समाचिनुष्वानु शं प्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।

६००८ (हे राजन्,) इस प्राणी-सहित पृथिवी-प्रजा का पालन कर, देवों के साथ सामने बढ़, निन्दा-आक्रमण तुझ तक न पहुंचें, अपने क्षेत्र में नीरोग विराज। २२

९ हे नेताओं की सभा! सत्य से बनायी, मन से स्थापित, यह ब्रह्म-ज्ञान की वेदि आगे है, तू कानों वाली कढ़ाई (बुद्धि) चढ़ा, वहाँ विद्वानों का अन्न पहुँचा। २३

१०. भूतों के कर्ता ७ ऋषि (५ ज्ञानेन्द्रिय-मन-बुद्धि) जिसे बनाते हैं, अदिति (प्रजा) की रक्षक इस दूसरी स्रुचा के समान, ओदन के अङ्ग जानने वाली दर्वि (सेना) इसे वेदि पर रक्खे। २४

११ परिपक्व स्वीकार्य तेरे पास विद्वान् बैठें; इन्हें मन्त्री से परामर्श करके प्रसन्न कर; सोम से पवित्र होकर वेदज्ञों के जठर (रक्षण) में बैठ, वे प्रकृष्ट भोगी दुःखी न हों। २५

१२ हे सौम्य राजन्! तू उन अच्छे ब्राह्मणों से सत्य ज्ञान पाया कर जो तेरे पास बैठते हों; मैं ऋषि-आर्षेयों को ब्रह्मोदन में सुन्दर बुलावा देकर बुलाया करूँ। २६

१३ ये याज्ञिक-शुद्ध-पवित्र प्रजाएँ हैं; इन्हें वेद-विद्वानों के हाथों में अलग-अलग सौंपता हूं जिस कामना से मैं उनका अभिषेक करूँ उसे परमेश्वर और सैनिकों वाला राजा पूरी करे। २७

१४ यह मेरी ज्योति अमृत सुवर्ण, खेत से मिला पका अन्न और यह मेरी कामधेनु गौ है यह धन मैं ब्राह्मणों में रखता हूं और पितरों में अपना मार्ग बनाता हूं जो स्वर्ग (सुखद) है। २८

१५ तू भूसी को आग में बो (डाल); छिलके दूर (पशुओं के लिए) फेंक, इसे हम घर के राजा (अग्नि-पशु) का भाग सुनते हैं और (शेष) पृथिवी का भाग (खाद) जानें। २९

१६. श्रमी, परिपक्व, तत्त्व निचोड़ने वाले (वैद्य-वैज्ञानिक) को जान और इस जीव को स्वर्ग (सुख) के मार्ग पर चढ़ा, जिससे बड़ी आयु पा यह उत्तम सुख परम रक्षा-स्थान (मोक्ष-ईश्वर) तक पहुंचे। ३०

१७ हे अध्वर्यु (गृह-रक्षा-मन्त्री)! तू पोषक राष्ट्रपति के मुख्य अंग को सँभाल, विद्वान् होकर घी आदि के लिए भण्डार बना, सब अंगों को प्रेम-दीप्ति से शोध, मैं वह पथ बनाता हूं जो पितरों में स्वर्ग (सुखप्रद) है। ३१

१८ हे पोषक! तू उन्हें भी राक्षस-मतवालों से बचा जो ब्राह्मणों के अतिरिक्त जन तेरे पास बैठें, पुरवासी आगे बढ़ते हुए आर्षेय और तेरे आजीवी कर्मचारी दुःखी न हों। ३२

१९ हे ओदन! तुझे आर्षेयों में रखता हूं, यहाँ ऋषि-विरोधियों का कोई भाग नहीं है। अग्नि, सब सैनिक और विद्वान् मेरे रक्षक हैं वे इस पके अन्न-ज्ञान की रक्षा करें। ३३

२० सदा ही यज्ञ के पूरक, समृद्ध, ऐश्वर्यों के घर, रक्षक बैल-गौ, सन्तान की अमरता और बड़ी आयु को पाकर हम ऐश्वर्यों के पोषणों से तेरे पास पहुंचें। ३४

२१ हे शासक! तू सुख-वर्षक सुखद है; तू ऋषियों, उनकी सन्तानों और शिष्यों के पास जा, सुकर्मियों के समाज में बैठ, वहाँ हम दोनों (राजा-प्रजा) सुसंस्कृत हों। ३५

२२ हे विद्वान् और अग्रणी शासक! तू अच्छे प्रकार चुन, सब को संगठित कर और आगे बढ़, देवों के यानों (मोटर-जहाजों) के मार्गों को बना। इन अच्छे कार्यों से हम यज्ञ (संगठन) को और ७ रश्मियों वाले सूर्य और मोक्ष के अधिष्ठाता परमात्मा को प्राप्त करें। ३६

एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६

३०२३ येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥ ३७

सूक्त २

३०२४ भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ १

२५ शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास् ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥ २

२६ क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः । नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३

२७ पुरस्तात्ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत । अभीवर्गाद्दिवस् पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४

२८ मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव । त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५

२९ अङ्गेभ्यस् त उदराय जिह्वाया आस्याय ते । दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६

३० अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना । रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७

३१ स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८

३२ चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥ ९

३३ तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १०

३४ उरुकोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११

३५ धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १२

३६ योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति । पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३

३७ भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय । ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १४

३८ नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ १५

३९ नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा । भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६

३०२३ जिस प्रकाश से विद्वान् ब्रह्मौदन को पकाकर पुण्य के लोक द्यौ को पहुंचते हैं उसी से हम उत्तम दुःख-रहित स्वः (मोक्ष) तक चढ़ते हुए पुण्य के समाज को खोजूँ। ३७

सूक्त २ । रुद्र (राजा) और भव-शर्व (गृह-रक्षा-मन्त्री)

२४ हे भव-शर्व ! तुम दोनों हमें सुखी करो, विरुद्ध मत चलो, हे भूत-पशु-पति ! तुम दोनों को नमः । धनुष पर रक्खे ताने बाण को न छोड़ो, हमारे दुपायां-चौपायों को मत मारो। १

२५ हे पशु-पति! हमारे शरीरों को कुत्ता-गीदड़-भयानक गिद्ध और जो काले हिंसक (कौए आदि) हैं उन के लिए न करो । तेरी मक्खियाँ-पक्षी भोजन पर न आयें। २

२६ हे अमर भव-रुद्र ! तेरे रोदन-प्राण और जो तेरी शक्तियां हैं उनके लिए और हजारों (चर रूपी) आँखों वाले तेरे लिए नमः हो। ३

२७ सामने-ऊपर-नीचे से तेरे लिए नमः करते हैं, ... और फैले द्यौ से अन्तरिक्ष तक (शक्ति वाले) के लिए नमः हो। ४

२८ हे पशुपति ! तेरे मुख्य अधिकारी के लिए, हे भव ! जो तेरे चक्षु (चर) हैं उनके लिए, और तेरी त्वचा-रूप-दृष्टि-प्रत्यक्ष दर्शन के लिए नमः हो। ५

२९ तेरे अंगों-उदर-जीभ-मुख-दाँतों-सुगन्ध के लिए नमः (सन्मान) हो। ६

३० अस्त्र फेंकनेवाले; नीले मुकुट वाले, हजारों आँखों (चरों) वाले, हिंसक-घाती इस रुद्र से न लड़ें।७

३१ वह भव हमें सब तरफ से जल-अग्निवत् बचाये, हमें न सताये, इसके लिए नमः हो। ८

३२ भव को ४ बार (४ आश्रमों के लिए), ८ बार (८ योगांगों के लिए) नमः, हे पशुपति ! तुझे दस बार (दस इन्द्रियों के लिए) नमः हो । तेरे ये ५ प्राणी बँटे हैं— गौ-अश्व-पुरुष-अज-भेड़ । ६

३३ हे उग्र ! तेरी ४ दिशाएँ-द्यौ-पृथिवी-बड़ा अन्तरिक्ष, यह चेतन जगत् हैं जो पृथ्वी पर प्राणवाला है। १०

३४ बड़ा कोश धन का भण्डार है जिसके अन्दर ये सब भुवन हैं। हे पशुपति ! वह तू हमें सुखी कर, तेरे लिए नमः, हिंसक गीदड़-कुत्ते दूर हों, पाप से रोती, केश बिखेरे स्त्रियाँ दूर हों। ११

३५ हे उद्योगी ! तू डराणशील-सुनहरी धनुष, हजारों को मारनेवाली (तोप), सैकड़ों की वध-कर्त्री (बन्दूक) धारण करता है। रुद्र का दिव्य शस्त्र देव्यास्त्र चला करता है, वह यहाँ से जहाँ चले उस दिशा के लिए नमः हो। १२

३६ हे रुद्र! जो हारा हुआ छिप जाता, तुझे हराना चाहता है उसके पीछे खोजकर तू दण्ड देता है जैसे व्याधा घायल पशु के पैर के निशानों से खोजता है। १३

३७ भव-रुद्र दोनों उग्र साथ मिलकर पराक्रम के लिए चलते हैं, वे यहाँ से जिस दिशा में हों उन के लिए नमः हो। १४

३८ हे रुद्र ! आते-जाते-खड़े और बैठे हुए तेरे लिए नमः हो। १५

[११-४-७ में 'रुद्र' के स्थान में 'प्राण' है।]

३०३९ मैं भव [गृह-मन्त्री] और शर्व [रक्षा-मन्त्री] दोनों के लिए सायं-प्रातः-रात-दिन सदा नमः [आदर-सन्मान] किया करूँ। १६

३०४० सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥ १७

४१ श्यावाश्वङ्कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथङ्केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८

४२ मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद्दिव्या शाखां वि धूनु ॥ १९

४३. मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्धि मा क्रुधः । मा त्वया समरामहि ॥ २०

४४ मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु। अन्यत्रोग्र विवर्तय पियारूणां प्रजां जहि॥२१

४५ यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥ २२

४६ योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ २३

४७ तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्ष पशुपते अप्स्वन्तस् तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥ २४

४८ शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान्परिपश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन्समुद्रे॥२५

४९ मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद्विद्युतं पातयैताम् ॥ २६

५० भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ २७

५१ भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदे अस्य मृड ॥ २८

५२ मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरञ्च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥ २९

५३ रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः । इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३०

३०५४ नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः । नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥ ३१

सूक्त २, अनुवाक १ पूर्ण हुआ ।

३०४० हजारों आँखों [चरों] वाले, सामने अतिद्रष्टा, बहुधा शस्त्र-प्रहर्ता, बुद्धिमान्, जयशक्ति के साथ चलते हुए रुद्र का हम विरोध न करें। १७

४१ काले-सफेद अश्वों वाले, आक्रन्द; अन्तर-रहित, फलेराकारी का रथ गिरानेवाले सेनापति से हम पहले मिलें, इसके लिए नमः हो। १८

४२ हे पशुपति ! तुझे नमः, हमपर सम्भक दिव्यास्त्र न चला, क्रुद्ध न हो, दिव्य शस्त्र हमसे अन्यत्र चला

४३ हमें मत मार। उपदेश कर। रक्षा कर। क्रुद्ध न हो। हम तुझसे लड़ाई न करें। २०

४४ हमारे गौ-पुरुष-बकरी-भेड़ों की इच्छा न कर, अन्यत्र जा, हिंसकों की प्रजा को मार। २१

४५ जिसका वज्र ज्वर-खाँसी वाली अश्व की हिनहिनाहट के समान, जिसी पर आक्रमण करते हैं यथाक्रम यथायोग्य निर्णायक इस के लिए नमः हो। २२

४६ जो अन्तरिक्ष में दृढ़ होकर अयाज्ञिक, देव-हिंसकों को मारता हुआ स्थित रहता है उसके लिए दसों उँगलियों से [हाथ जोड़ कर] दस दिशाओं में नमः। २३

४७ हे पशुपति ! तेरे (शासन) के लिए वन में जंगली जानवर-हिरन-हंस-गरुड़-गिद्ध आदि पक्षी रक्खे हैं, तेरा पूज्य रूप जल [सेना] के अन्दर है, तेरे लिए दिव्य जल वृद्ध्यर्थ बरसते हैं। २४

४८ हे भव ! जल में रहने वाले घड़ियाल-नाके-मगर-कछुए-अजगर-मछलियों का तू शासक है। तुझसे कोई दूर परे नहीं सबको तत्काल देखता है, पृथिवी पर पूर्व से उत्तर समुद्र तक जाता है। २५

४९ हे रुद्र ! हमें बुखार-विष-दिव्य अग्नि से संयुक्त न कर, यह बिजली अन्यत्र गिरा। २६

५० हे भव ! तू द्यौ-पृथिवी-बड़े अन्तरिक्ष का ईश है, उस तेरे लिए नमः यहाँ से जिसी दिशामें हो। २७

५१ हे भव राजन् ! याज्ञिक को सुख दे, क्योंकि तू प्राणियों का पति है। जो श्रद्धा करता है कि देव हैं इसके चौपाये-दुपाये को सुख दे। २८

५२ हे रुद्र! तू हमारे बड़े-छोटे-युवा-बच्चे-पिता-माता की हिंसा न कर, हमारा शरीर नष्ट न कर। २९

५३ मैं रुद्र के प्रेरणा-प्राप्त, अमंगल विकृत शब्द बोलने वाले, बड़े मुख वाले कुत्तों के लिए यह नमः (अन्न) दूँ। ३०

३०५४ हे देव ! घोष-घोषणा करने वाली, केश वाली, अन्न-युक्त, मिलकर सम्पत्ति का भोग करने वाली तेरी सेनाओं के लिए नमः हो। हमारा कल्याण और अभय हो। ३१

सूक्त २ और पहला अनुवाक पूर्ण हुआ।

अथर्ववेद काण्ड ११ अनुवाक २ सूक्त तीन

३०५५ तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् । १

५६ द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्त ऋषयः प्राणापानाः ॥ २

५७. चक्षुर्मुसलङ्काम उलूखलम् ॥३

५८ दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥ ४

५९ अश्वाः कणा गावस् तण्डुला मशकास् तुषाः ॥ ५

६० कब्रु फलीकरणाः शरो ऽभ्रम् ॥ ६

६१ श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥७

६२. त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८

६३-६४. खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥९॥ आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १०

६५. इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥ ११

६६-६७. सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥ ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥१३

६८-६९ ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥१४॥ ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥१५

७०-७१ बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥१६॥ ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धत ॥ १७

७२. चरुं पञ्चबिलमुखम्घर्मो३भीन्धे ॥ १८

७३. ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९

७४. यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस् त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २०

७५. यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१

७६. तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२

७७. स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ २३

७८ नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति । ४२

७९. यावद्दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत ॥ २५

८०. ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३ः प्रत्यञ्चा३मिति ॥ २६

८१. त्वमोदनम्प्राशीस् त्वामोदना इति ॥ २७

८२ पराञ्चं चैनम्प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २८

८३. प्रत्यञ्चं चैनम्प्राशीरपानास् त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९

३०८४-८५. नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥३०॥ ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१

पर्याय १ पूर्ण हुआ ।

अनुवाक दो

विषय – मासान्नाग्यलंकार ब्रह्माण्डालंकार ओदनेश्वरादि ब्रह्मौदन-प्राशन प्राणेश्वराद्यनेक-नामा प्राणेश्वरे सर्वं प्रतिष्ठितम् इति पदार्थ विद्या – महर्षि दयानन्द सरस्वती।

५६ मन्त्रों के सूक्त तीन का इकतीस मन्त्रों का पर्याय १। ओदन अन्नरूप ईश्वर।

३०५५ उस ओदन का बृहस्पति वायु-तेज सिर और ब्रह्म (अन्न) मुख है। १

५६ द्यौ-पृथिवी कान; सूर्य-चन्द्रमा आँखें, ७ ऋषि तारे प्राण-अपान हैं। २

५७ चक्षु मूसल और काम ऊखल है। ३

५८ दिति (खण्डन-शक्ति) सूप, अदिति (अखण्डित शक्ति) सूप-ग्राही, वायु भूसा-पृथक्कर्ता है। ४

५९ घोड़े कण, गौएँ चावल, मच्छर भूसी हैं। ५

६० विविध रङ्ग का संसार फटकन, बादल सरकण्डा-घास-फूस है। ६

६१ काला लोहा इसके मांस, लाल (ताँबा) इसका खून है। ७

६२ सीसा-राँगा भस्म; सोना रङ्ग. कमल इसकी सुगन्ध है। ८

६३ खलियान बरतन, दो स्फ्य (फानें-कुदाली) कन्धे. दो ईषा(हल में हरस-मूठ) स्कन्धारिथ है। ९

६४ जोतें (बैलों के गले की रस्सियाँ) आँतें और वरत (बड़े रस्से चर्म-पट्टियाँ)गुदायें हैं। १०

६५ यही पृथिवी राँधे जाते ओदन की बटलोई और द्यौ ढक्कन है। ११

६६ सीताएँ (हल जोतने की रेखाएँ) पसलियाँ और बालू कुपच अन्न है। १२

६७ सब जल हाथ धोने का पानी और छोटी नदी छिड़काव है। १३

६८ ऋग्वेद से बटलोयी चढ़ायी और ऋत्विजों के कर्म (यजुर्वेद) से सँभाली गयी। १४

६९ अथर्व वेद से पकड़ा गया और साम वेद से सर्वत्र ले जायी गयी। १५

७० बृहत् साम चमचा और रथन्तर साम दर्वि (करछी) है। १६

७१ ऋतुएँ पाचक और मास-दिन आग ठीक जलाते हैं। १७

७२ चरु ५ छिद्रवाला है उसकी उखा हाँडी को घाम दीप्त करती है। १८

७३ ओदन-द्वारा यज्ञ से बताये सब लोक सम्यक् प्राप्य हैं। १९

७४ जिसमें समुद्र (अन्तरिक्ष)—द्यौ-भूमि तीनों परस्पर नीचे-ऊपर ठहरे हैं। २०

७५ जिसके उच्छिष्ट (प्रलय में शेष बचे सर्वश्रेष्ठ साम र्थ्य) में देव और ६ दिशाएँ बनी हैं। २१

७६ मैं तुझसे ओदन की महिमा पूछता हूं जो इसकी महान् है। २२ [१९-२२ मिलकर २ अनु० ३]

७७-७८ वह जो ओदन की महिमा जाने बताये कि यह कम और उपसेचन-रहित नहीं, और न यह कुछ है। २३-२४

७९ जितना ज्ञान-दाता मन से विचारे उससे अधिक बढ़ाकर न बोले। २५

८० ब्रह्मवादी कहते हैं— क्या तू दूरवर्ती ओदनको खाता है या प्रत्यक्षवर्ती को? २६

८१ तू ओदन को खाता है या तुझे ओदन? २७

८२ इससे कह कि यदि दूरवर्ती ओदन को खाता है तो प्राण तुझे छोड़ देंगे। २८

८३ इससे कह कि यदि प्रत्यक्ष ओदन को खाता है तो अपान तुझे छोड़ देंगे। २९

८४-८५ न मैं ओदन को न ओदन मुझे खाता है। ओदन ही ओदन को खाता है। ३०-३१

[परमात्मा जगत को प्रलय में अपने में लीन कर लेता है।]

सूक्त ३ का पर्याय २

३०८६ ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्वऋषयः प्राश्नन्। ज्येष्ठतस् ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। बृहस्पतिना शीर्ष्णा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः संभवति य एवं वेद ॥ ३२

८७. ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्वऋषयः प्राश्नन्। बधिरो भविष्यसीत्येनमाह। तं०। द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्०॥ ३३

८८. ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां०। अन्धो भविष्यसीत्येनमाह। तं०। सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम्। ताभ्यामेनं ०॥ ३४

८९ ततश्चैनमन्येन मुखेन०। मुखतस् ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं ब्रह्मणा मुखेन। तेनैनं० ॥ ३५

९० ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया ०। जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह। तं० अग्नेर्जिह्वया। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष० ॥ ३६

९१ ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं०। दन्तास् ते शत्स्यन्तीत्येनमाह। तं०। ऋतुभिर्दन्तैः। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम्। एष० ॥ ३७

९२ ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं०। प्राणापानास् त्वा हास्यन्तीत्येनमाह। तं०। सप्तर्षिभिः प्राणापानैः। तैरेनं०। एष० ॥ ३८

९३ ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं ०। राजयक्ष्मस् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह तं०। अन्तरिक्षेण व्यचसा। । तेनैनं ०। एष० ॥ ३९

९४ ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं ०। विद्युत्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं ०। दिवा पृष्ठेन। तेनैनं ०। एष० ॥ ४०

९५ ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं ०। कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह। तं ०। पृथिव्योरसा। तेनैनं ०। एष० ॥ ४१

९६ ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं ०। उदरदारस् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह तं ०। । सत्येनोदरेण। तेनैनं०। एष० ॥ ४२

३०९७. ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्वऋषयः प्राश्नन्। अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह तं वाहं न पराचं न प्रत्यंचं। समुद्रेण वस्तिना। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४३

९८ मन्त्रों का पर्याय २

३०८६ इस योगी से परमात्मा कहता है – और तब तू इस ओदन को अन्य सिर से जान जिससे इसे श्रेष्ठ ऋषि खाते हैं। तब तेरी प्रजा बड़े के क्रम से मरेगी।[योगी का संकल्प–] मैं उसे पीछे-दूर-सामने ही समझ कर नहीं जानता, उसे बृहस्पति (आचार्य) के सिर से जानता और उससे इसे पाता हूं। यह ओदन निश्चय ही सर्वाङ्ग (सब अङ्गों में व्यापक, सब साधन वाला), सर्व-परु (सब का पालक) और सर्वतनू (सब के शरीरों में व्यापक, सब उपकारों वाला) है, जो ऐसा जानता है वह सर्वांग सर्वपरु और सर्वतनू ही हो जाता है। ३२

[अन्तिम वाक्य 'वह ...है' आगे के १७ मन्त्रों में (मन्त्र ४९ तक) समान है।]

८७ परमात्मा आचार्य इस योगी शिष्य भक्त से कहता है– २. और तब इसे अन्य कानों से जान, जिनसे श्रेष्ठ ऋषि जानते हैं। बहरा हो जायेगा।

[योगी] मैं... इसको न पीछे, न दूर, न सामने, द्याव-पृथिवी रूपी कानों से जानूँ-पाऊँ। यह...है।३३

८८ ईश्वर इससे कहता है– ३. और तब इसे अन्य आंखों से जान ... । अन्धा हो जायेगा ।
मैं ... सूर्य-चन्द्रमा रूपी आँखों से इसे जानूँ-पाऊँ । यह ... है। चौंतीस

८९ ईश इससे कहता है – ४. और तब इसे अन्य मुख से खा .. । मुख के द्वारा तेरी प्रजा मरेगी।
मैं ... वेद- मुख से इसे खाऊँ-पाऊँ । यह ... है। पैंतीस

९० परमात्मा इससे कहता है– ५. और तब इसे अन्य जीभ से खा ... । जीभ तेरी मर जायेगी।
मैं ... अग्नि-जीभ से इसे खाया करूँ । यह...है। छत्तीस

९१ आचार्य इससे कहता है– ६. और तब अन्य दाँतों से खा। तेरे दाँत निकल जायेंगे। ...।
मैं ऋतु रूपी दाँतों से इसे खाऊँ-पाऊँ। यह ... है। सैंतीस

९२ आचार्य इससे कहता है– ७. और तब इसे अन्य प्राण-अपान से पा, वे तुझको छोड़ेंगे।
मैं ... सप्तर्षि रूपी प्राण-अपानों से इसको जानूँ-प्राप्त करूँ। यह .. है। अड़तीस

९३ आचार्य इससे कहता है– ८. और तब इसको अन्य वक्षस्थल से पा। राजयक्ष्मा तुझे मारेगा।
मैं ... इसको अन्तरिक्ष रूपी वक्षस्थल से प्राप्त करूँ-जानूँ । यह... है। उनचालीस

९४ आचार्य इससे कहता है– ९. और तब इसको अन्य पीठ से पा ... । बिजली तुझे मारेगी।
मैं ... द्यौ-पीठ से उठाऊँ-प्राप्त करूं । यह ... है। ४०

९५ आचार्य इससे कहे– १०. और तब इसको अन्य उरःस्थल से ले । खेती से न बढ़ेगा ।
मैं ... पृथिवी रूपी उरःस्थल से इसे लूँ-प्राप्त करूँ। यह .... है। ४१

९६ आचार्य इससे कहता है– ११. और तब इसे अन्य उदर से खा। तुझ को उदर-रोग मारेगा । मैं ... इसे सत्य रूपी उदर से खाऊँ–प्राप्त करूं। यह ... है। ४२

९७ आचार्य इससे कहे– १२. और तब तू ओदन को अन्य वस्ति (नाभि के नीचे पेड़ू) से ले ...। तू पानी में मरेगा। मैं ... समुद्र रूपी वस्ति से उसे लूँ और जानूँ। यह ... है।

तितालीस

३०९८ ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्वऋषयः प्राश्नन। ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४४

९९ ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां०। स्रामो भविष्यतीत्येनमाह। तं०। त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् । ताभ्यामेनं० एष० ॥ ४५

३१०० ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां०। बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह। तं०। अश्विनोः पादाभ्याम् । ताभ्यामेनं०। एष० ॥ ४६

१ ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां० । सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं ०। सवितुः प्रपदाभ्याम् । ताभ्यामेनम्०। एष०॥ ४७

२ ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां०। ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह। तं० ऋतस्य हस्ताभ्याम् । ताभ्यामेनं० । एष०॥ ४८

३ ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया०। अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह तं ०। सत्ये प्रतिष्ठाय । तयेनं ०। एष० ॥ ४९

सूक्त ३ का ७ मन्त्रों का पर्याय ३

३१०४ एतद्वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥ ५०

५ ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥ ५१

६ एतस्माद्वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥ ५२

७ तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३

८ स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥ ५४

९ न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५

१० न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६

२६ मन्त्रों का सूक्त ४। प्राण

११ प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१

१२ नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ २

१३ यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः । प्रवीयन्ते गर्भान्दधतेऽथो बह्वीर्विजायन्ते ॥ ३

१४ यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः । सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥४

१५ यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्। पशवस्तत्प्रमोदन्ते महो वै नो भविष्यति॥५

वेद का अनर्थ (२६)

वेद में पुरूरवा की कोई कहानी नहीं।

वेदप्रदीप मई ९१ के अंक में स्वामी गङ्गेश्वरानन्द की वेदोपदेशचन्द्रिका के श्लोक ६३ के आधार पर वेद में राजा पुरूरवा की कथा बतायी है जो सत्य नहीं क्योंकि सर्गारम्भ में परमात्मा द्वारा दिये गये ज्ञान में परवर्ती मनुष्यों की कहानी हो ही नहीं सकती। यास्क ने निरुक्त में बताया है कि पुरूरवा गरजने वाला बादल और उर्वशी बिजली है जिसका वर्णन रूपक अलंकार से हुआ है।

आधिभौतिक दृष्टि से ये सूक्त १०.९५ के ऋषि-देवता हैं। इस १८ मन्त्रों के संवाद में जब ६ का द्रष्टा पुरूरवा है तो शेष ९ की देवता (वर्ण्य विषय) उर्वशी है, जब वह ९ की द्रष्ट्री है तो शेष ६ का देवता पुरूरवा है। इस नाम के शब्द वेद से ही लेकर राजा-रानी ने रक्खे जिन पर कालिदास ने विक्रमोर्वशी नाटक बनाया उनकी कहानी वेद में बताना उसका अनर्थ है।

आधिदैविक मेघ-विद्युत् के अतिरिक्त ये आध्यात्मिक अर्थ में जीवात्मा-प्रकृति हैं, जीवात्मा बहुत शब्द करने से पुरू-रवा और प्रकृति बड़ी सुन्दर कमनीय होने से उर्वशी है। (क्रमशः)

[इस विषय 'वेद में उर्वशी' पर सङ्गोष्ठी ज्येष्ठ-पूर्णिमा २७-६-९१ को प्रातः ७ से वेद-सदन लखनऊ में हुई। सब सादर आमन्त्रित हुए। — वीरेन्द्र सरस्वती

समाचार

डा० कपिलदेव द्विवेदी ज्ञानपुर (वाराणसी) को इस वर्ष का गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार मिला।

वृद्ध श्री रामचन्द्र महाजन युवा श्री गिरीशचन्द्र खोसला के साथ मिल कर अमरीका में प्रचार [करते] हैं। अभी उन्होंने साउथ बेंड में आर्य समाज की स्थापना की है जिसमें मन्त्री उनकी पुत्री है।

२१ मई को श्री पेरुम्बुदूर मद्रास में श्री राजीव गान्धी की बम से हत्या कर दी गयी, २६ अन्यों के साथ बम को लानेवाली हत्यारिन भी मारी गयी। शव दिल्ली लाया गया। अन्त्येष्टि वैदिक रीति से की गयी। अमेरिका से आये १७ वर्षीय पुत्र श्री राहुल ने यज्ञोपवीत पहनकर चिता में आग दी। [...] दिन का राष्ट्रीय शोक मनाया गया। अस्थि-कलश विशेष रेलगाड़ी से प्रयाग ले जाकर सङ्गम में विसर्जित किये गये। विदेशों से प्रतिनिधि, पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री आदि सम्मिलित हुए। [...] में शोक मनाया गया। बाजार बन्द रहे। आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई, गणेशगंज आदि में शोक प्रस्ताव पारित किया गया। चुनाव जून मास के लिए स्थगित किये गये १५-६ तक पूर्ण हुए।

आस्ट्रिया के वायुयान के बैंकाक से उड़ते ही आग से जलने पर २२३ सवार भस्म हो गये।

श्री ओम्प्रकाश शास्त्री एवं अरुणकुमार विदर्भीय (उपदेशक महावि० टङ्कारा) ने २, १६-५-६१ को राजकोट दूरदर्शन से कौमी एकता पर वैदिक विचार प्रसारित किये।

यतिमण्डलने दयानन्दमठ रोहतक में सितम्बर ६१में गुरुदत्तविद्यार्थी शताब्दी मनानी निश्चित की।

प्रयाग में वेद-सङ्गोष्ठियाँ १०-११ मई को वेदमें युद्ध-शान्ति विषयों पर स्वामी सत्यप्रकाशने कीं।

लखनऊ में ११-५-९१ को विश्व वेदपरिषद् की बैठक और गोष्ठी हुई।

[...]-६ को आर्यसमाज महावीरगंज के वेद-सम्मेलन में अध्यक्षता आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती ने की।

युवक-योग-साधना-शिविर कण्वाश्रम कोटद्वार में ८ से १६ जून तक लगा।

शोक है कि सर्व श्री केशव देव शास्त्री; साउी, स्वामी सत्यवेश कन्या गुरुकुल शादीपुर जुलाना का एक-४ को, [...]-४ को, अजयकुमार सैंडा राउ का २५-३ को, वीरमल राम कड़ासरा सूरतगढ़ का ५-५-६१ को, स्वामी प्रज्ञानन्द बभेड़ा (८४ वर्ष) का, प० शिवदयालु मेरठ [९० वर्ष] का ५-५-६१ को, [...]नीरा आर्य भिलाई का चौदह-४ को, ब्रजलाल आर्य गुरुकुल आमसेना का १५-३ को देहान्त होगया।

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष २-७-९१ को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

शतपथ, निरुक्त, अष्टाध्यायी, वेदार्थपारिजात-खण्डन
अथर्ववेद, सामवेद के ब्राह्मण

अनुवादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड१-२, २०), वेदार्थपारिजातखण्डन २०) साम वंशब्राह्मण१०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०)अथर्ववेद १००) मगाइये

—वीरेन्द्र सरस्वती, उपाध्यक्ष, ओजोमित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी८१७ महानगर लखनऊ

वैदिक दैनन्दिनी श्रावण २०४८ विक्रम

ति कृ१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३०शु १ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ ११ १२ १३ १४ १५ पू
वार श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र
नक्षत्रश्र ध शत श पूभा उभा रे अ भ कृ मृ आ पुन पु श्ले म पूफ उफ ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू उ श्र ध
ता.जु२७ २८ २९ ३० ३१अ१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५

१ जुलाई से मूल्य बढ़ेगा।

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६ उ० प्र०, भारत, पिन २२६००६

सेवा में क्रमांक

श्री

स्थान

पत्रालय

पिन

जनपद

प्रदेश

ऋग्वेद　　　　ओ३म्　　　　यजुर्वेद

साम वेद　　　　अथर्व वेद

अथर्व वेद खण्ड २१

वर्ष १५ अंक ८ श्रावण २०४८ अगस्त १९९१

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९२, दयानन्दाब्द १६७

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक – वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद्

सहायक— विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१

दिल्ली कार्यालय श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, ३०६ हिल व्यू बसन्तविहार नयी दिल्ली ५७, दूरभाष ६०१४५२

सत्यार्थप्रकाश–मन्त्र–व्याख्या

क्रमांक ७० । ऋषिका सूर्या सावित्री, देवता सोम, छन्द अनुष्टुप्, स्वर गान्धार

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः। ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः॥

ऋग्वेद १०-८५-१, अथर्व वेद १४-१-१

जैसे यह चन्द्रलोक सूर्य से प्रकाशित होता है वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश ही से
समुल्लास ८
प्रकाशित होते हैं।

सत्य ब्रह्म, वायु, सूर्य ने भूमि ऊपर आकाश मध्य में धारण की है। द्यौ प्रकाश को सूर्य ने धारण
किया है। ऋत काल से १२ मास, सूर्य से किरण, वायु से त्रसरेणु बलवान् हैं और ठहरे हुए हैं।
इसी प्रकार दिवि द्योतनात्मक सूर्य-प्रकाश में चन्द्रमा आश्रित होकर प्रकाशित होता है। उसमें जितना
प्रकाश है सो सूर्य का ही है। चन्द्र आदि लोकों में अपना प्रकाश नहीं है, सब चन्द्रादि लोक सूर्य-
प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। —ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका प्रकाश्य-प्रकाशक-विषय

महर्षि ने सत्य-ऋत के ३-३ अर्थ किये हैं- ईश्वर-सत्य-वायु। इस का भाष्य सर्वश्री सातवलेकर-
जयदेव शर्मा-वैद्यनाथ शास्त्री-विहारीलाल शास्त्री-हरिशरन-क्षेमकरण दास त्रिवेदी-विश्वनाथ जी ने
किया है। श्री विश्वनाथ ने द्यौ का अर्थ मूर्धा और सोम का वीर्य किया है। —वीरेन्द्र सरस्वती

(गताङ्क से आगे)

पतञ्जलि-कृतं योग दर्शन-शास्त्रम्

२५ तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।

जिसमें नित्य सर्वज्ञ ज्ञान है वही ईश्वर है जिसके ज्ञानादि गुण अनन्त हैं, जो ज्ञानादि गुणों की परा काष्ठा है, जिसके सामर्थ्य की अवधि नहीं। और जीव के सामर्थ्य की अवधि प्रत्यक्ष देखने में आती है इसलिए सब जीवों को उचित है कि अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए सदैव परमेश्वर की उपासना करते रहें। (भू०)

२६ स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

जो प्राचीन अग्नि-वायु-आदित्य-अङ्गिरा और ब्रह्मा आदि पुरुष सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए थे उनसे लेकर हम लोग पर्यन्त, और हम से आगे जो होने वाले हैं, उन सबका गुरु परमेश्वर ही है। क्योंकि वेद द्वारा सत्य अर्थों का उपदेश करने से परमेश्वर का नाम गुरु है। सो ईश्वर नित्य ही है क्योंकि ईश्वर में क्षणादि काल की गति का प्रचार ही नहीं है। (भाष्य-भूमिका)

जैसे वर्तमान में हम लोग अध्यापकों से पढ़कर ही विद्वान् होते हैं वैसे परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए अग्नि आदि ऋषियों का गुरु अर्थात् पढ़ाने वाला है। क्योंकि जैसे जीव सुषुप्ति और प्रलय में ज्ञान-रहित हो जाते हैं वैसा परमेश्वर नहीं होता, उसका ज्ञान नित्य है। इसलिए यह निश्चित जानना चाहिए कि बिना निमित्त के नैमित्तिक अर्थ की सिद्धि नहीं होती है। (स० प्र०)

२७-२८ तस्य वाचकः प्रणवः । तज्जपः तदर्थ-भावनम् ।

जो ईश्वर का ओंकार नाम है वह पिता-पुत्र के सम्बन्ध के समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़ कर दूसरे अर्थ का [अग्नि आदि की भाँति] वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं उनमें से ओंकार सबसे उत्तम नाम है। (भाष्य-भूमिका)

यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ३म्) समुदाय बना है, इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं। जैसे अकार से विराट अग्नि और विश्व आदि। उकार से हिरण्य-गर्भ, वायु और तैजस आदि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ आदि नामों का वाचक और ग्राहक है। सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम ओ३म् को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं। (स० प्र०)

इसी नाम का जप अर्थात् स्मरण; और अर्थ-विचार सदा करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो, जिससे उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश और परमेश्वर की प्रेम-भक्ति सदा बढ़ती जाय। (भू०)

२९ ततः प्रत्यक चेतनाधिगमः अपि अन्तरायाभावश्च ।

फिर उससे उपासकों को यह भी फल होता है कि उस अन्तर्यामी परमात्मा की प्राप्ति, और अन्तरायों (उनके अविद्यादि क्लेशों तथा रोग आदि रूप विघ्नों) का नाश हो जाता है। (भू०)

३० व्याधि-स्त्यान-संशय-प्रमाद-आलस्य-अविरति-भ्रान्तिदर्शन-अलब्धभूमिकत्व-अनवस्थितत्वानि चित्त-विक्षेपाः ते ऽन्तरायाः ।

(क्रमशः)

वेद में सब सत्य विद्याएं (विज्ञान)

९५ ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात् तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ [६.६२.६]

इस मन्त्र में वि-पतत्रि-समुद्र आदि शब्द जलयानों-विमानों को बता रहे हैं जो अश्वियों से चलते हैं। निम्नांकित मन्त्र में ३ दिन-रात में पूरे संसार की परिक्रमा करनी बतायी है—

९६ त्रयः पवयः मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥[१.३४.२]

मधु [पेट्रोल-डीजल] के यान में तीन वज्रतुल्य यन्त्र और तीन खम्भे हों, सभी सुख की कामना पायें। आरम्भ में प्रयोग (रात-दिन-रात) हो, तीन रात-दिन में सर्वत्र पहुंचें।

९७ आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ [१.४६.७]

९८ द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥ [१.१६४.४८]

हम नाव जहाज] से पार जाने के लिए अश्वियों को युक्त करें। ऐसा यान हो जिसमें बारह यन्त्र, एक चक्र, तीन केन्द्र, तीनसौ साठ विविध चल-अचल कीलों के जोड़ लगाये गए हों। अश्वियों की शक्ति से ऐसा विमान बने जो स्थल-जल-वायु तीनों पर चल सके—

९९ त्रिर्नो अश्विना यजता दिवे दिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥ [१.३४.७]

अर्थात् अश्वी-शक्ति से तीन धातुओं [लोहा-ताँबा-चाँदी] का बना विमान ऐसे वेग से चले जैसा कि आत्मा के आश्रित मन का वेग है।

विमान का स्पष्ट नाम और वर्णन २-४०-३ में पठनीय है—

१०० सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥

बली सोम-पूषा [जलीय और वायु-सूर्य-अग्नि के तत्त्व] लोक का वह विमान यान चलायें जो संसार-नाशक न हो, व्यापक-गमन-युक्त, ७ चक्र और ५ किरणों से मन-माना चला करे।

विमान का वर्णन यजुर्वेद १०.५९ में भी है जिसमें कहा है कि वह अन्तरिक्ष में आकाश-पृथिवी के बीच द्यु के मध्य रहे। वह संसार में फैली घृत [क्षरण-दीप्ति वाले पेट्रोल] से मिली शक्तियों से एक स्थान से दूसरे तक और मध्य में देखना है—

१०१ विमान एष दिवो मध्य आस्ते आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥

इस प्रकार अश्वी-विद्या महती चमत्कारिणी है।

प्रथम ऋग्वेद-विद्यान्तर्गत ७. मधु-विद्या

अश्वी-विद्या से जुड़ी हुई मधु-विद्या है। वेद में वैज्ञानिक प्रकरण में मधु का अर्थ पेट्रोल आदि है, शहद नहीं, क्योंकि उससे कोई रथ नहीं चल सकता। अतः 'मधुवाहने रथे, ० (मन्त्र सं० ९६) में पेट्रोल-गैसोलीन-डीजल के ऐंजिन से चलने वाले मोटर कार-रेल-वायुयान का ही वर्णन है। यह विमान सोम की वेना (चन्द्रमा तक को यात्रा) करने में समर्थ होता है।

८ भूत-विद्या [भौतिकी फिजिक्स]

इस का कुछ वर्णन अश्वी-इन्द्र-प्रकरणों में आ चुका, कुछ आगे सृष्टि-ज्योतिष-प्रकरणों में आयेगा. यहाँ सूर्य से पृथिवी की उत्पत्ति और उस से दिशा-ज्ञान वर्णित है-

१०२ भूर्जज्ञ उत्तानपदः भुव आशा अजायन्त । अदितेर्दक्षोऽजायत दक्षाद्वदितिस्परि ॥

१०-७२-५

भूमि उत्तानपद (ऊपर किरण ताने सूर्य) से पैदा हुई, उससे दिशाएँ हुईं, अदिति (मैटर) से दक्ष (इनर्जी) और उसी से फिर अदिति (अखण्ड प्राकृतिक पदार्थ, मैटर) पैदा होती है।

यही सिद्धान्त आइन्स्टीन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ब्रह्माण्ड किरण (कास्मिक रेज़)

वेद-वर्णित अनेक ऐसी किरणों में से एक वायव्य हैं। दूसरी वयासि (हीट वेव्ज़) का वर्णन-

१०३ दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत् सुरेताः ॥ [१०-४५-८]

दिखायी देता दीप्त अग्नि (सूर्य) विशेष द्योतित है; वह आयु-श्री के लिए प्रचण्ड रोचमान अपनी (वयोभिः) उष्ण लहरों से अमर होता है, क्योंकि उत्तम अग्नि-कण-युक्त द्यौ इसे पैदा करता है।

३- मरीचि-गण (आरोरा)-जैमिनि ब्राह्मण (१-८४) में कहा है— मरीचयो विस्फुलिङ्गाः।

गीता में इसे सर्व श्रेष्ठ बताया है— मरीचिः मरुतामस्मि (अ० १०-२१)

१०३. विधृति ... यूष्णा मरीचीः ...(यजु २५-९) आया है। यूषा (क्वाथ) से मरीचियां को पाये।

४- वार्चत्विष रश्मयः [इलेक्ट्रिक चार्ज रेज़]—

१०४-१०५ वातत्विषो मरुतः...[५-५७-४], साकं ..विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः। ५-५५-३

५- पशु नामक किरण— ये धूल और आँधी-तूफान के समान हैं—

१०६ इदं ... समूढमस्य पांसुरे ॥ [१-२२-१७] (जगत् का एक अंश धूलिमय किरण में है।)

१०७-१०८ तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥

पुरुष सूक्त ऋ० १०-९०-८, य० ३१-६, अ० १९-६-९

परमात्मा ने वायु में पशु नामक किरणें भी बनायीं।

६- मरुत् किरणें विद्युच्चुम्बकीय (इलेक्ट्रो-मेग्नेटिक) क्षेत्र बनाते हैं। इनका संकेत १.८७.४ में है-

११० स हि ... ईशानस्तविषीभिरावृतः ॥ [ईशान दिशा से आने से ईशान नाम है।]

संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः

१– देश-देशान्तर प्रकरणम्

भवानेतान् जानातीमे महाविद्वांसः सन्ति ।	आप इनको जानते हैं. ये बड़े विद्वान् हैं ।
किन्नामानः एते, कुत्रत्याः खलु ?	क्या नाम वाले हैं ये, कहा के हैं ?
अयं यज्ञदत्तः काशी-निवासी ।	यह यज्ञदत्त काशी का निवासी है ।
विष्णुमित्रोऽयं कुरुक्षत्र-वास्तव्यः ।	यह विष्णुमित्र कुरुक्षत्र में वसता है ।
सोमदत्तोऽयं माथुरः ।	यह सोमदत्त मथुरा में रहता है ।
अयं सुशर्मा पर्वतीयः ।	यह सुशर्मा पर्वत पर रहता है ।
अयमाश्वलायनो दाक्षिणात्योऽस्ति ।	यह आश्वलायन दक्षिणी है ।
अयं जयदेवः पाश्चात्यो वर्तते ।	यह जयदेव पश्चिम देश वासी है ।
अयङ्कुमारभट्टो वाङ्गो विद्यते ।	यह कुमारभट्ट बङ्गाली है ।
अयङ्कापिलेयः पाताले निवसति ।	यह कापिलेय अमेरिका में रहता है ।
अयं चित्रभानुर्हरिवर्षस्थः ।	यह चित्रभानु हरिवर्ष यूरोप में रहता है ।
इमौ सुकाम-सुभद्रौ चीननिकायौ ।	ये सुकाम और सुभद्र चीन के वासी हैं ।
अयं सुमित्रो गन्धार-स्थायी ।	यह सुमित्र कन्धार का रहने वाला है ।
अयं सुभटो लङ्काजः ।	यह सुभट लङ्का में जन्मा है ।
इमे पंच सुवीरातिबल सुकर्म सुधर्म – शतधन्वानो मारवः ।	ये ५ सुवीर अतिवल सुकर्म सुधर्म शतधन्वा मारवाड़ के हैं ।
एते मयामन्त्रिताः स्वस्वस्थानादागताः ।	ये मेरे बुलाये हुए अपने अपने घरसे आये हैं ।
इमे नव शिव कृष्ण गोपाल माधव सुचन्द्र-प्रक्रम भूदेव चित्रसेन महारथा अत्रत्याः ।	ये नौ शिव कृष्ण गोपाल माधव सुचन्द्र-प्रक्रम भूदेव चित्रसेन महारथ इस देशके है ।
अहोभाग्यं मे यद् भवत्कृपया एतेषामपि समागमो जातः ।	मेरा बड़ा भाग्य है कि आपकी कृपासे इन का भी मिलाप हुआ ।
अहमपि सभवतः सर्वान् एतान् निमन्त्रयितुमिच्छामि ।	मैं भी आपके समेत इन सब को निमन्त्रित करना चाहता हूं
अस्माभिर्भवन्निमन्त्रणभूरीकृतम् ।	हमने आपका निमन्त्रण स्वीकार किया ।
प्रीतोऽस्मि परन्तु भवद्भोजनार्थं किङ्कि पक्तव्यम् ?	प्रसन्न हूं परन्तु आपके भोजन के लिए क्या क्या पकाया जाये ?

यद्यद् भोक्तुमिच्छास्ति तत्तदाज्ञाप्यन्तु ।	जो जो खानेकी इच्छा है उस उसकी आज्ञा दें।
भवान् देशकालज्ञः, कथनेन किम्,	आप देश काल को जानते हैं; कहने से क्या।
यथायोग्यमेव पक्तव्यम् ।	यथायोग्य ही पकाना चाहिए ।
सत्यम् एवमेव करिष्यामि ।	ठीक है, ऐसा ही करूँगा ।
उत्तिष्ठत ,भोजन-समय आगतः	उठिये, भोजन-समय आया,
पाकः सिद्धो वर्तते ।	पाक तय्यार है ।
भो भृत्य! पाद्यमर्घ्यमाचमनीयजलंदेहि ।	हे नौकर ! पग-हाथ-मुख धोने,पीने का जल दे ।
इदमानीतम्, गृह्यताम् ।	यह लाया, लीजिए ।
भो पाचकाः!सर्वान्पदार्थान् क्रमेण परिवेविष्ट ।	हे पाचको! सब पदार्थों को क्रमसे परोसो,
भुंजीध्वम्,भोजनस्य सर्वेपदार्थाःश्रेष्ठाः न वा?	खाइए, भोजनके सब पदार्थ अच्छे हैं वा नहीं?
अत्युत्तमाः सम्पन्नाः । किं कथनीयम् !	बहुत उत्तम हुए हैं, क्या कहना है !
भवता किंचित्पायसं ग्राह्यं यस्येच्छास्ति वा?	आप थोड़ीखीर लीजिए वा जिसकी इच्छाहो।
प्रभूत भुक्तम्, तृप्ताः स्मः । तर्हि उत्तिष्ठत ।	बहुत खाया, तृप्त होगये हैं । तो उठिए ।
जलं देहि। गृह्यताम्,ताम्बूलादीन्यानीयन्ताम् ।	जल दे, लीजिए, पान-इलायची आदि ला ।
इमानि सन्ति, गृह्णन्तु ।	ये हैं । लीजिए ।

व्याकरण-रचना-अध्याय

शब्द-सूची— इस प्रकरण के ४० नवीन शब्द जोड़ने से सब १६१ संस्कृत शब्द हुए ।

११ वाँ शब्द-रूप— सर्वनाम पुल्लिङ्ग इदम् [अयम्] के रूप । (सम्बोधन नहीं होता ।)

विभक्ति	एक वचन	अर्थ	द्विवचन	अर्थ	बहु वचन	अर्थ
१	अयम्	यह	इमौ	ये दो	इमे	ये [दो से अधिक]
२	इमम्	इसे	;;	इन दो को	इमान्	इनको; इन्हें
३	अनेन	इससे	आभ्याम	;; से	एभिः	इन से
४	अस्मै	इस के लिए	,,	;; के लिए	एभ्यः	इन के लिए
५	अस्मात्	,, से	;;	,, से	,,	,; से
६	अस्य	इस का के की	अनयोः	,, का के की	एषाम्	,, का के की
७	अस्मिन	,, में पर	,,	,, में पर	एषु	,, में पर

नपुंसक लिङ्ग इदम्

१	इदम्	यह वस्तु	इमे	ये दो	इमानि	ये दो से अधिक वस्तुएँ

द्वितीया प्रथमा-समान, शेष ३ से ७ विभक्तियों तक रूप पुल्लिङ्ग-समान होते हैं ।

सन्धि-विच्छेद — जानाति-इमे जानातीमे दीर्घसन्धि । मित्रः-अयम् मित्रोऽयम् विसर्ग,पूर्वरूप । यस्य-इच्छा-अस्ति यस्येच्छास्ति गुण-दीर्घ सन्धि । ताम्बूल आदीनि ताम्बूलादीनि दीर्घ-स्वर-सन्धि ।

३०९८ आचार्य शिष्य से कहे– और तब तू इस ब्रह्मौदन को अन्य १३. जाँघों से खा(पा) जिनसे इसे श्रेष्ठ ऋषि पाते हैं, नहीं तो तेरी जाँघें मर जायेंगीं। शिष्य– मैं उसे पीछे-दूर-सामने मानकर नहीं पात। मित्र-वरुण की जाँघों से इसे -पाऊँ। यह ... है। (शेष पूर्व मन्त्र ३२ के समान)। ४४

९९ ... अन्य १४. घुटनों से पा, नहीं तो स्राम (फोड़ेवाला-लँगड़ा) हो जायगा। मैं ...। इसे त्वष्टा (शिल्पी) के घुटनों से पाऊँ। ... ।४५

३१०० ... १५.अन्य पैरों से पा, नहीं तो बहुत चलने वाला हो जायगा। मैं अश्वी (दिन-रात) के पैरों से पाऊँ। ... । ४६

१ .... १६.अन्य पंजों से पा ...नहीं तो सर्प डसेगा। मैं सविता के पंजों से उसे पाऊँ। ... ।४७

२ ... १७.अन्य हाथों से इसे पा...नहीं तो ब्राह्मण को मारेगा। मैं ऋत के हाथों से इसे पाऊँ। ४८

३ ...और तब तू इसे १८.अन्य प्रतिष्ठा से पा .. नहीं तो प्रतिष्ठा-स्थान-रहित मरेगा। मैं .. सत्य में प्रतिष्ठा पाऊँ, उसी से इसे पाऊँ। यह ओदन सर्वाङ्ग-सर्वपरु-सर्वतनू है, इसे जानने वाला ऐसा हो जाता है। ४९

सूक्त ३ का पर्याय ३। ७ मन्त्र

४ यही महान् का तेज है जो ओदन [ब्रह्म रूपी भात] है। ५०

५ जो ऐसा जानता है वह महान् दर्शनीय होता है, महान् के तेज में आश्रय पाता है। ५१

६ इसी ओदन [प्रकृति] से प्रजापति ने तैंतीस लोक बनाये। [अ. ६-१३६ १]। ५२

७ उनके विशेष ज्ञान के लिए यज्ञ रचा। ५३

८ जो ऐसे विद्वान् का दोषदर्शी होता है वह प्राण-बल को रोकता है। ५४

९ न केवल प्राण रोकता अपितु सब हानि से हीन हो जाता है। ५५

१० न केवल सब हानि उठाता अपितु बुढ़ापे से पहले ही प्राण इसे छोड़ देता है। ५६

सूक्त ४। प्राण

११ उस प्राण के लिए नमः हो जिसके वश में यह सब है, जो सबका ईश्वर है, जिसमें सब प्रतिष्ठित है।१

१२ हे प्राण! ध्वनि करते, गरजते, बिजली रूप, बरसते तेरे लिए नमः हो। २

१३ जब प्राण बादल-बिजली की गर्जना से मानो अन्न-औषधियों को बल से पुकारता है तब वे प्रजनन करतीं, गर्भ धारण करतीं और बहुत पैदा होतीं हैं। ३

१४ प्राण जब ऋतु के आने पर औषधियों को पुकारता है तब जो कुछ भूमि पर है वह सभी बड़ा आनन्द मनाता है। ४ [उत्तरार्ध ऋ ५-८३-६ में भी है।]

३११५ जब प्राण वर्षा द्वारा महती पृथिवी का सिंचन करता है तब पशु [प्राणी] प्रसन्न होते हैं कि हमारे लिए अन्न और बढ़ती होगी। ५

३११६.अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।आयुर्वै नःप्रातीतरःसर्वा नःसुरभीरकः॥६

१७. नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते। नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः॥७

१८ नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः॥ ८

१९.या ते प्राण प्रिया तनूर्या ते प्राण प्रेयसी। अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे।९

२०.प्राणःप्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न।१०

२१ प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत्॥ ११

२२ प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम्॥ १२

२३.प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते।यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते१३

२४.अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा। यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः॥ १४

२५ प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ १५

२६.आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥१६

२७.यदा प्राणोऽभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्। ओषधयः प्रजायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः॥१७

२८.यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिंल्लोक उत्तमे॥१८

२९.यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।एवा तस्मै बलिं हरान्यस्त्वा शृणवत्सुश्रवः॥१९

३० अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः॥ २०

३१ एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदाचन॥ २१

३२ अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः॥ २२

३३.यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोस्तु ते॥२३

३४.यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः।अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु॥ २४

३५. ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते। न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन॥ २५

३६.प्राण मा मत्पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि।अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि२६

३११६ वर्षा से सींचीं औषधियाँ मानो प्राण से कहतीं हैं कि तू सचमुच हमारी आयु बढ़ाता है और हमें सुगन्धित करता है। ६

१७ हे प्राण! आते-जाते-खड़े और बैठे हुए तेरे लिए नमः हो।[१६-२-५ में प्राण के स्थान में रुद्र] ७

१८ हे प्राण ! आते-जाते-दूर जाते-सामने स्थित, तुझ सर्वस्व के लिए यह नमः है। ८

१९ हे प्राण ! जो तेरा प्रिय शरीर [आत्मा]-उपकार-औषधि है उसे हमें जीवन के लिए दे। ९

२० पुत्र को पिता के समान प्राण प्रजा पालता है; वही प्राणी-अप्राणी सबका स्वामी है। १०

२१ प्राण मौत-बुखार है, विद्वान् उसकी उपासना करते हैं, वही सत्यवादी को उत्तम लोकमें रखता है। ११

२२ प्राण विराट्, प्रेरक शक्ति को सब उपासना करते हैं, वही सूर्य-चन्द्र-प्रजापति कहाता है। १२

२३ प्राण-अपान चावल-जौ हैं, बैल प्राण कहाता है, जौ में प्राण भरा है, अपान चावल कहाता है। १३

२४ पुरुष गर्भ के अन्दर प्राण-अपान प्रयुक्त करता है; हे प्राण ! जब तू पुष्ट हुआ तभी गर्भ पैदा होता है। १४

२५ प्राण मातरिश्वा-वायु भी कहाता है, इसमें ही भूत-भविष्य सब प्रतिष्ठित है। १५

२६ हे प्राण ! जब तू पुष्ट होता है तब चार तरह की औषधियाँ पैदा होती हैं — अथर्व [आत्मा] के लिए आथर्वणी, अङ्ग-रस के लिए आङ्गिरसी, देव[मेघ]से पैदा दैवी, और मनुष्य की बनायी। १६

२७ जब प्राण वर्षा से बड़ी पृथिवी को सींचता है तब औषधियाँ-वनस्पतियाँ पैदा होतीं हैं। १७

२८ हे प्राण! जो तेरा यह रहस्य, जहाँ तू स्थित है, जानता है उसे उस उत्तम लोकमें सब उपहार दें। १८

२९ हे प्राण ! जैसे यह प्रजा तुझे उपहार दे वैसे ही उसे भी दे जो तुझ सुकीर्ति की बात सुने। १९

३० वही दिव्य शक्तियों में अन्दर गति देता, वही फिर व्याप्त होकर पैदा होता है, वह भूत-वर्तमान-भविष्य होकर अपनी कर्म-शक्तियों से, पुत्र में पिता के समान, प्रविष्ट होता है। २०

३१ हंस (गतिशील प्राण-जीवात्मा-ईश्वर-सूर्य) संसार-सलिल से उदय होता हुआ एक ही पैर नहीं उखाड़ता, हे मनुष्य ! यदि वह उसे उखाड़ ले तो न आज हो न कल, न रात न दिन, और न कभी उषा ही हो। २१ [हंस के लिए देखो अ १०.८.१७-१८]

३२ परमात्मा ८ चक्रों (५ भूत-काल-दिशा-मन) का स्वामी, जीवात्मा ८ चक्रों(मूलाधार-मणिपूरक-नाभि-अनाहत-विशुद्ध-आज्ञा-सूर्य-सहस्रार, और ८ योगाङ्ग तथा ७ धातु १ ओज) वाला है और दोनों १ नेमि (नियम-प्राण) वाले हैं। हजारों अक्षय शक्ति वाला वह आगे-पीछे विद्यमान है। वह अर्ध (समृद्ध) से विश्व-भुवन को बनाता और जो इसका शेष समृद्ध स्वरूप है वह ज्ञानमय परम आनन्द है। [तुलना — अ १०.८.७-१३ ।२२

३३ हे प्राण ! जो तू सब चेष्टा-युक्त विश्व का ईश है, उन अन्यों (परमाणुओं) में शीघ्र गति को देने वाले तेरे लिए नमः हो। २३

३४ इन सब के उत्पादक चेष्टा-युक्त सब का ईश, आलस्य-रहित, धीर प्राण मुझे ब्रह्म (वेद-अन्न) से मिले। २४

३५ वह प्राण सोते हुओं में ऊपर रहकर जागता है, तिरछा होकर कभी नहीं गिरता, सोये हुओं में इसका सो जाना किसी ने नहीं सुना। २५

३१३६ हे प्राण ! मुझ से दूर न हो, तू मुझ से अलग न होगा। हे प्राण ! मैं जीवन के लिए आपः (नीहारिका-जल-स्त्रियों) के गर्भ के समान तुझे अपने में बाँधता हूं। २६

अनुवाक २, सूक्त ४ पूर्ण हुआ।

अथर्ववेद काण्ड ११ प्रपाठक २५ अनुवाक तीन सूक्त ५

२६ मन्त्रों का सूक्त ५ । ब्रह्मचारी

३१३७ ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ १

३८ ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २

३९ आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥ ३

४० इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥ ४

४१ पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस् तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ ५

४२ ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥ ६

४३ ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस् ततर्ह ॥ ७

४४ आचार्यस् ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवञ्च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥ ८

४५ इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवञ्च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ ९

४६ अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस् पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥ १०

४७ अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयो श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास् ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥ ११

४८ अभिक्रन्द स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२

३१४९ अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्यप्सु समिधया दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥ १३

अनुवाक ३

अनुवाक ३ का विषय- ब्रह्मचर्याचार्येश्वरादि-ब्रह्मचर्याश्रमादि- ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिमित्यादि- ब्राह्मणा ब्रह्म ज्येष्ठमित्यादि पदार्थविद्या अग्नीश्वरप्रार्थनादिस्तुतिः (म० द० स०)

सूक्त ५ । ब्रह्मचारी

२१३७ ब्रह्मचारी सूर्य-पृथिवी दोनों को खोजता हुआ विचरता है, उसमें दिव्य गुण एक-मत होते हैं, वह पृथिवी-द्यौ के गुण धारण करता है, वह आचार्य को तप से पूर्ण करता है । १

३८ पितर-देवजन सब नाना दिव्य शक्तियाँ ब्रह्मचारी के पीछे चलती हैं, ३३६ (अनेक) गन्धर्व (पृथिवी-धारक गुण) इसके साथ रहते हैं, वह सब देवों को तप से पालता है । २

३९ आचार्य ब्रह्मचारी का उपनयन कर (यज्ञोपवीत कर पास ले जाता हुआ) नियन्त्रण में रखता है उसे ३ रात पास में रखता है, उस नये जन्मे को देखने के लिए विद्वान् आते हैं । ३

४० यह पृथिवी पहली समिधा, द्यौ दूसरी और अन्तरिक्ष तीसरी है इनको ब्रह्मचारी पूर्ण करता है, वह लोकों को समिधा-मेखला-श्रम-तप से पालता है । ४

४१ ब्रह्मचारी ज्ञान से श्रेष्ठ बन कर तेज धारण करता हुआ तप से उच्च बनता है । उससे ज्ञान-ईश्वर और अमरता के साथ सब विद्वान् प्रसिद्ध होते हैं । ५

४२ ब्रह्मचारी समिधा से दीप्त, आकर्षक काला (मृग-चर्म) पहिने, दीक्षित, लम्बी दाढ़ी-मूछ रखे हुए आता है, वह पूर्व समुद्र (ब्रह्मचर्य) से दूसरे (गृहस्थ) में शीघ्र आता और लोगों को सङ्गठित कर बार-बार धर्म-प्रेरणा करता है । ६

४३ ब्रह्मचारी ज्ञान-कर्म-आप्त-प्राण-लोक-विराट्-परमेष्ठी-प्रजापति को प्रसिद्ध करता हुआ अमृत की योनि विद्या में गर्भ (प्रविष्ट) हुआ, ऐश्वर्यशाली होकर दुष्टों का नाश करता है । ७

४४ आचार्य इन दोनों सम्बद्ध-विशाल-गहरे पृथिवी-द्यौ को सरल समझने योग्य करता है जिन की रक्षा ब्रह्मचारी तप से करता है, इस पर विद्वान् एकमत होते हैं । ८

४५ पहले ब्रह्मचारी इस विस्तृत भूमि और द्यौ की भिक्षा लेता है, उनकी समिधा बनाकर ध्यान करता है जिनमें सब भुवन आश्रित हैं । ९

४६ ब्राह्मण की बुद्धि में २ निधियाँ रहती हैं एक पास में (वेद) और दूसरी द्यौ से परे (मुक्ति), ब्रह्मचारी तप से दोनों की रक्षा करता और केवल ब्रह्म को अपनाता है । १०

४७ एक अग्नि यहाँ पृथिवी पर, दूसरी दूर (सूर्य), दोनों द्यौ-पृथिवी के मध्य सम्बद्ध रहती हैं इनकी रश्मियाँ दृढ़ता से परस्पर आश्रित हैं जिनपर ब्रह्मचारी तप से अधिकार करता है । ११

४८ गरजते-चमकते-जलभरे-श्याम मेघ के समान ब्रह्मचारी भूमि पर बड़ा सामर्थ्य लाता है ; वह पृथिवी-पर्वत पर पराक्रम-जल सींचता है जिससे चार दिशाएँ जीती हैं । १२

२१४९ ब्रह्मचारी अग्नि-सूर्य-चन्द्रमा-वायु-जलमें तेज धारण करता, जिनकी ज्वालाएँ अलग-अलग मेघ से चलती हैं जिनका घी (सार) पुरुष-वर्षा-जल-प्रजा हैं । १३

३१५०.आचार्योमृत्युर्वरुण:सोम ओषधय:पय:।जीमूता आसन्त्सत्वानस् तैरिदं स्वराभृतम्॥१४

५१ अमा घृतङ्कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः ॥ १५

५२.आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः। प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी।१६

५३.ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।१७

५४. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति॥१८

५५. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत। इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥१९

५६. ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः। संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः॥२०

५७.पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्चये।अपक्षाःपक्षिणश्चये ते जाता ब्रह्मचारिणः॥२१

५८.पृथक्सर्वे प्राजापत्याःप्राणानात्मसु बिभ्रति।तान्त्सर्वान्ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम्२२

५९ देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ।।२३

६० ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्ममेधाम् ॥ २४

६१ चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५

३१६२ तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ २६

सूक्त ६। मन्त्रोक्त अग्नि आदि देवता

३१६३अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः। इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥१।

६४ ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम्। अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्त०[पूर्ववत्]॥२

६५ ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम्। त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्० ,, ॥ ३

६६ गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम्। अर्यमा नाम यो देवस्० ,, ॥ ४

६७ अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा। विश्वानादित्यान् ब्रूमस्० ,, ॥५

६८ वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः। आशाश्च सर्वा ब्रूमस्० ,, ॥६

७९.मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः।सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति॥७

७०.६पार्थिवा दिव्याःपशव आरण्या उत ये मृगाः।शकुन्तान्पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः८

७१भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः।इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः॥९

७२दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान्।समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः१०

३१५० आचार्य-मृत्यु-जल-चन्द्र-ओषधि-दूध-मेघ ये सत्त्वयुक्त हैं उनसे यह सुख लाया जाता है। १४

५१ आचार्य वरुण (वरणीय-श्रेष्ठ) होकर स्वयं घर में अपरिमित तेज पाता है, वह प्रजापति के विषय में जो-जो चाहता है उसे मित्र ब्रह्मचारी अपने सम्बन्धियों को देता है। १५

५२ आचार्य ब्रह्मचारी हो, जो प्रजापति हो, वह विराट्-ऐश्वर्यशाली-वशीकर्ता हो विराजता है। १६

५३ ब्रह्मचर्य-तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है, उससे आचार्य ब्रह्मचारी को चाहता है। १७

५४ ब्रह्मचर्य से कन्या युवा पति पाती है, उसी से बैल-घोड़ा घास खाने में समर्थ होते हैं। १८

५५ ब्रह्मचर्य-तप से विद्वान् मौत को जीतते हैं। उससे इन्द्र (ईश्वर-जीव-राजा-वायु-बिजली-सूर्य) देवों (विद्वान्-प्रजा-इन्द्रिय-प्राणों) के लिए भरपूर सुख-प्रकाश देता है। १९

५६ ओषधि-भूत-वर्तमान-दिन-रात-वनस्पति-ऋतुओं के साथ संवत्सर वे ब्रह्मचारी प्रसिद्ध हैं। २०

५७ जो पृथिवी-द्यौ के पदार्थ, जङ्गली-ग्राम्य पशु, बिना पंख और पंखवाले हैं वे ब्रह्मचारी हुए। २१

५८ अलग-अलग सब प्रजापति-सन्तान प्राणों को आत्माओं में धारण करते हैं इन सब की रक्षा ब्रह्मचारी में भरा ब्रह्म करता है। २२

५९ देवों का यह प्रेरक-अपराजित-प्रकाशमान ज्ञान है, उससे वेद, अमृत के साथ सब देव हुए।२३

६० ब्रह्मचारी प्रकाशमान ईश्वर को धारण करता है, उसमें सब दिव्य गुण समाये रहते हैं, वह प्राण-अपान-व्यान-वाणी-मन-हृदय-वेद-बुद्धि को प्रकट करता है। २४

६१ हे ब्रह्मचारी ! तू हम में चक्षु-कान-यश-अन्न-वीर्य-रक्त-पाचनशक्ति धारण करा २५

३१६२ ब्रह्मचारी ये कर्म करता हुआ समुद्र (ब्रह्मचर्य) में तपता हुआ जल की पीठ पर स्नानके लिए ठहरता, स्नातक-पोषक-शक्तिमान् बनकर वह पृथिवी पर अति रुच्यमान होता है। २६

२३ मन्त्रों का सूक्त ६। अग्नि आदि देवता

३१६३ अग्नि-वनस्पति-ओषधि-जड़ीबूटी-इन्द्र-बृहस्पति-सूर्य को हम बताते हैं। वे हमें अंहस् [पाप-कष्ट-दुःख-बुराई] से छुड़ायें। [वे हमें अंहस् से छुड़ायें यह प्रार्थना सूक्त भर में है।] १

६४ राजा-वरुण (वरणीय न्यायाधीश)-मित्र-विष्णु (परमात्मा-यज्ञ)-भग-अंश (धन-विभाजक)-विवस्वान् (सूर्य-निवास दाता) को हम बताते हैं वे हमें पाप से छुड़ायें। २

६५ देव सविता-धाता-पूषा-त्वष्टा-अग्रगामी को हम बताते हैं वे०...। ३

६६ गन्धर्व-अप्सरा (उपदेशक-कार्यकर्त्री स्त्रियां)-अश्वी (माता-पिता)-वेद के पति (आचार्य)-अर्यमा नामक देव (न्यायकारी परमात्मा) को बताते ० ...। ४

६७ दिन-रात-सूर्य-चन्द्रमा दोनों-सब आदित्यों (१२ मासों) को बताते ० ...। ५

६८ वायु-मेघ-अन्तरिक्ष-दिशाओं-सब विदिशाओं को बताते० ...। ६

६९ दिन-रात, उषा और सोम देव जिसे चन्द्रमा कहते हैं वे मुझे शपथ के दोष से छुड़ायें। ७

७० पृथिवी-द्यौ के पदार्थ, और जो जंगली पशु हैं उन्हें और शक्तिशाली पक्षियों को बताते हैं, वे हमें कष्ट से बचायें। ८

७१ परमात्मा की भव-शर्व (रचना-विनाश) शक्तियाँ हैं, रुद्र जो पशुपति है, इनके जो सप्याख्य हैं इन्हें हम जानें, वे हमारे लिए सदा कल्याण-कारी हों। ९

३१७२ हम द्यौ-नक्षत्र-भूमि-यक्ष (पवित्र स्थान)-पर्वत-समुद्र-नदी-तालाब-नहरों को बतात हैं, वे हमें अंहः (पाप-कष्ट-दुःख-बुराई) से छुड़ाएँ-बचाएँ-मुक्त करें-मुक्त रक्खें। १०।

३१७३ सप्तर्षीन्वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् । पितॄन्यमश्रेष्ठान्ब्रूमस० [पूर्ववत्] ।। ११
७४ ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये । पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्० ,, ।। १२
७५ आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः । अङ्गिरसो मनीषिणस्० ,, ।। १३
७६ यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा । यजूंषि होत्रा ब्रूमस्० ,, ।। १४
७७ पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः । दर्भो भङ्गो यवः सहस्० ,, ।। १५
७८ अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् । मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्० ,, ।। १६
७९ ऋतून्ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् । समाः संवत्सरान् मासांस्० ,, ।। १७
८० एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत । पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वेदेवाः समेत्य० ,, ।। १८
८१ विश्वान्देवानिदं ब्रूमो सत्यसन्धानृतावृधः । विश्वाभिः पत्नीभिः सह० ,, ।। १९
८२ सर्वान्देवानिदं ब्रूमः सत्यसन्धानृतावृधः । सर्वाभिः पत्नीभिः सह० ,, ।। २०
८३ भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी । भूतानि सर्वा सङ्गत्य० ,, ।। २१
८४ या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः । संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ।। २२
८५ यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् । तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत्तदापो दत्त भेषजम् ।। २३

अनुवाक ४

३१८६. २७ मन्त्रों का सूक्त ७ । उच्छिष्ट देवता

उच्छिष्टे नामरूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः । उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ।। १
८७ उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् । आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ।। २
८८ सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः । लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ३
८९ दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश । नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ।। ४
९० ऋक्साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् । हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ।। ५
९१ ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् । उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ।। ६
९२ राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः । अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ।। ७
९३ अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह । उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ।। ८
९४ अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः । दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ।। ९
९५ एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः । ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ।। १०
९६ चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ।। ११
३१९७ प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ।। १२

३१७३ हम ७ ऋषि-दिव्य आपः-प्रजापति-पितर-श्रेष्ठ यमों को कहते हैं, वे हमें कष्ट से छुड़ायें।११
७४ जो देव द्यौ-अन्तरिक्ष-पृथिवी पर शक्तिशाली होकर विराजते हैं वे० ... । १२
७५ जो आदित्य-रुद्र-वसु, द्यौ में दिव्य शक्तियाँ, अटल निःसंशय-वैज्ञानिक-मनीषी हैं वे०...।१३
७६ हम यज्ञ-यजमान-ऋचा-साम-भेषज(अथर्व)-होत्राओं को कहते हैं, वे ... । १४
७७ जड़ी-बूटियों के ५ राज्य (पत्ता-डंडी-फूल-फल-जड़) हम बताते हैं जिनमें सोम श्रेष्ठ है, अन्य दर्भ-भङ्ग(सन)-जौ-सहमाना हैं वे० ... । १५
७८ अदानी-राक्षस-सर्प-पुण्यजन-पितर-एक सौ (अनेक) मृत्युओं को हम बताते हैं वे० ... । १६
७९ हम ऋतुओं, उनके स्वामी(सूर्य-चन्द्र-वायु), मास-वर्ष(सौर-चान्द्र) का बताते हैं वे० । १७
८० हे सब सशक्त विद्वानो ! तुम दक्षिण-पश्चिम-पूर्व-सामने-उत्तर से आओ; मिलकर वे० । १८
८१ हम सत्य-प्रतिज्ञ, सत्य की वृद्धि करनेवाले विश्वे-देवों, से यह कहते हैं कि पत्नी-सहित वे० । १९
८२ ,, सब ,, शक्तियों-सहित वे० । २०
८३ भूत(उत्पन्न ५ भूत); भूत-पति और जो भूतों का वशीकर्ता है, सब मिल कर वे० । २१
८४ जो दिव्य ५ दिशाएँ (पूर्वादि ४ और ऊपर-नीचे १), जो १२ मास, गति-शील १२ साधन (दस इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि), जो संवत्सर की दाढ़ें (डसनेवाले अवसर)हैं वे हमें सदा कल्याणमय हों । २२
३१८५ मातली (इन्द्र जीवात्मा और उसका सारथि मन) शरीर रथ से खरीदी जो अमृत-औषधि (मोक्ष और शक्ति) जानता है उसे परमात्मा ने आपः (आप्तों और कर्मों तथा वायु-सूर्य ने जल) में प्रविष्ट किया है। हे आपः ! वह औषधि दो । २३

अनुवाक ४

विषय— उच्छिष्टे नाम रूपं च उच्छिष्टे लोक आहितः इत्यादि, उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रितः इत्यादि, मन्युर्जाया ब्रह्म ज्येष्ठादि; प्रश्नोत्तरादि; सत्यशब्दादि पदार्थविद्या(म०द०स०)

२७ मन्त्रों का सूक्त ७। उच्छिष्ट (प्रलय में भी शेष परमात्मा)

३१८६ उच्छिष्ट(शेष परमात्मा) में नाम-रूप-संसार-इन्द्र-अग्नि सब अन्दर स्थित-समाहित है । १
८७ उच्छिष्ट में द्यौ-पृथिवी-सब भूत-आपः-समुद्र-चन्द्रमा-वायु स्थित हैं। २
८८ ,, दोनों सत्-असत्(कार्य-कारण जगत)-मृत्यु-अन्न-प्रजापति(मेघ-मन) -लौकिक पदार्थ-प्रजा-आकाश-काल-व्यष्टि-समष्टि आधीन हैं, श्री (लक्ष्मी-शोभा) हैं वे मुझ में हों। ३
८९ केन्द्रके सब ओर चक्रके समान ये दृढ़,बलसे स्थिर लोक-वेद-विश्वस्रष्टा १०देव उ०के आश्रित हैं।४
९० इस में ऋक्-साम-यजु-उद्गीथ-प्रस्ताता-गान-स्तोत्र-हिंकार-स्वर-सामवाणी हैं, वे मुझमें हों ।५
९१ माता में अन्दर गर्भवत् परमात्मा में ऐन्द्राग्न-पावमान-महानाम्नी-महाव्रत-यज्ञ के अङ्ग हैं। ६
९२ राजसूय-वाजपेय- अग्निष्टोम-चितियाग-अर्क-अश्वमेध-जीवनवर्धक हर्षप्रद कथन इसमें हैं । ७
९३ अग्न्याधेय-दीक्षा-छन्द(अथर्व) के साथ कामप्र-बड़े यज्ञ-सत्र(सोमयाग आदि) इसमें हैं। ८
९४ अग्निहोत्र-श्रद्धा-वषट्कार-व्रत-तप-दक्षिणा-इष्ट-पूर्त इस में समाहित हैं। ९
९५ एकरात्र-द्विरात्र-सद्यःक्री-प्रक्री-उक्थ्य और विद्या के साथ यज्ञ के सूक्ष्म रूप इस में हैं। १०
९६ चतूरात्र-पञ्चरात्र-षड्रात्र और साथ में दूने (८-१०-१२ रातों के) -षोडशी-सप्तरात्रि सब इससे पैदा हुए जो यज्ञ अमृत में स्थित हैं। ११
३१९७ प्रतीहार-निधन-विश्वजित्-अभिजित्-साह्न-अतिरात्र-द्वादशाह भी उच्छिष्ट में हैं वे मुझमें हों।

३१९८ सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥ १३

३१९९ नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिताः दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४

३२०० उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५

३२०१ पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६

२ ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७

३ समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥ १८

४ चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास् तदिष्टयः ॥ १९

५ अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीराप: स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २०

६ शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस् तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥ २१

७ राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्महः एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥ २२

८ यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रितः ॥ २३

९ ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह । उ० ॥ २४

१० प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या: । उ० ॥ २५

११ आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये । उ० ॥ २६

३१२२ देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जिज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २७

३१९८ सत्य-प्रिय वाणी-नम्रता-रक्षा-अन्न-ऊर्जा-मोक्ष-बल-सहन-शीलता- सब प्रत्यक्ष कामनाएँ उच्छिष्ट में हैं, वे काम से मनुष्य को तृप्त करती हैं। १३

९९ नौ भूमियाँ-समुद्र-द्यौ लोक इसमें आश्रित हैं; सूर्य इसमें चमकता है; दिन-रात भी इस में हैं इनकी शक्ति मुझमें हो। १४

३२०० उपहव्य-विषूवान् (२१ स्तोत्रों का गवामयन) और जो यज्ञ बुद्धि में रक्खे हैं उन्हें विश्व-भर्ता, उत्पादक प्रकृति का पिता उच्छिष्ट धारण करता है। १५

३२०१ हमें पैदा करनेवाली प्रकृति का पिता होने से हमारा पितामह और प्राण के पुत्र (मन) का प्रकाशित पुत्र होने से उ का प न, विश्व का ईश, बली उच्छिष्ट भूमि पर अपराजित है। १६

२ बली उच्छिष्ट में ऋत-सत्य-तप-राष्ट्र-श्रम-धर्म-कर्म-भूत-भविष्य-वीर्य-लक्ष्मी-बल हैं। १७

३ समृद्धि-ओज-संकल्प-क्षात्रबल-राष्ट्र-६ फैली दिशाएँ और पदार्थ (द्यौ-पृथिवी-दिन-रात-आपः-ओषधि)-संवत्सर-इडा (अन्न-वाणी)-प्रैष (यज्ञ के निर्देश)-ग्रह (सोम के पात्र-मङ्गल आदि) और हवि (चरु-पुरोडाश आदि) सब उच्छिष्ट के अधिकार में हैं। १८

४ चार होताओं वाले चतुर्होता-आप्री-चातुर्मास्य (वैश्वदेव-वरुणप्रघास-साकमेध-शुनासीरीय)-निविद (नामक ऋचायें)-यज्ञ-होता-पशुबन्ध-और इसकी इष्टियाँ इस शेष में हैं। १९

५ पक्ष-मास-ऋतुओं के साथ इनके पदार्थ, घोष करने वाली जल-धाराएँ, मेघ-गर्जना, सुननेयोग्य वेद-वाणी और पृथिवी शेष में हैं। २०

६ शर्करा (रेत)-बालू-पत्थर औषधि-जड़ीबूटी-घास-बादल-बिजली-वर्षा शेष में आश्रित हैं। २१

७ सिद्धि-प्राप्ति-समाप्ति-व्याप्ति-तेज-आनन्दोत्सव-बढ़ती-अधिक पाना-समृद्धि शेष में रक्खी हैं। २२

८ और जो कुछ प्राण से जीता तथा जो आँख से देखता है वह सब और द्यौ में आश्रित दिव्य लोक सब शेष परमात्मा से पैदा हुए। २३

९ ऋचा-साम-छन्द (अथर्व)-यजुः के साथ पुरानी नित्य सृष्टि को बताने वाले प्रकरण और द्यौ में आश्रित लोक सब उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए। २४

१० प्राण-अपान-चक्षु-श्रोत्र और जो तत्त्वों की हानि-वृद्धि, पृथिवी तथा अन्य लोक हैं वह और द्यौ में सूर्य के आश्रित दिव्य पदार्थ शेष से पैदा हुए। २५

११ आनन्द-मोद-प्रमोद-अभिमोद-हर्ष-प्रसन्नता द्यौ में आश्रय पाये सूर्यादि शेष से पैदा हुए। २६

१२ देव-पितर-मनुष्य-गन्धर्व (वक्ता-गायक)-अप्सरा [जल-नभ-चारी कार्य-व्यस्त स्त्रियाँ] ये और आकाश में सूर्य के आकर्षण में रुके सब दिव्य पदार्थ उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए। २७। ७

१४ मन्त्रों का सूक्त ८। मन्यु

३२१३ यन्मन्युर्जायामावहत् सङ्कल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ १

१४ तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ २

१५ दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥ ३

१६ प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस् ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४

१७ अजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ५

१८ तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस् तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ६

१९ येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद्विदुः ।
यो वै तां विद्यान् नामथा स मन्यत पुराणवित् ॥ ७

२० कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुत अग्निरजायत ।
कुतस् त्वष्टा समभवत् कुतो धाता अजायत ॥ ८

२१ इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥ ९

२२ ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १०

२३ यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ॥ ११

२४ कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥ १२

२५ संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवा पुरुषमाविशन् ॥ १३

३२२६ ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस् तत् समदधादृषिः ॥ १४

सूक्त ८ । मन्यु ब्रह्म

३२१३ जब मननशील मन्युरूप ब्रह्म ने संकल्प के घर से जाया (प्रकृति)पायी तो वधू-वर पक्ष के कौन थे और ज्येष्ठ वर कौन था ? १

१४ (उत्तर—)महान् प्रलय-सागर के अन्दर तप और कर्म थे, वे वधू-वर-पक्ष के थे और ब्रह्म ज्येष्ठ वर था । २

१५ पहले देवों (महत्तत्व, ५ तन्मात्रा आदि)से (अगले मन्त्रोक्त) १० देव साथ पैदा हुए । जो उन्हें निश्चय से प्रत्यक्ष जाने वह बड़ी बात (ब्रह्म) को बताये । ३

१६ प्राण-अपान-दृष्टि-श्रवणशक्ति-ज्ञान क्रिया-व्यान-उदान-वाणी-मन इन १० ने निश्चय संकल्प को धारण किया । ४

१७ जब ऋतुएं-आकाश-वायु-सूर्य-विद्युत्-अग्नि-मेघ-प्राण-अपान पैदा नहीं हुए थे तब वे किस ज्येष्ठ के पास रहते थे ? ५

१८ (उत्तर—) महान् प्रलय-समुद्र के अन्दर तपः-कर्म ही थे,तप निश्चय ही कर्म से पैदा हुआ, अतः वे ऋतुएँ आदि ज्येष्ठ ब्रह्म के पास रहते हैं । ६

१९ जो इस भूमि से पहले भूमि (कारण-रूप) थी जिसे सत्य-ज्ञानी ही जानते हैं उसे जो नाम प्रकार से जाने वह पुराण—वेत्ता माना जाये । ७

२० इन्द्र (बिजली)-सोम(जल) -अग्नि-त्वष्टा(सूर्य-पृथिवी)-धाता (आकाश-वायु-मेघ) कहाँ से उत्पन्न हुए ? ८

२१ (ब्रह्म-शक्ति-रूप समष्टि) इन्द्र-सोम-अग्नि-त्वष्टा-धाता से ही ये व्यष्टि रूप उत्पन्न हुए । [परमात्मा-प्रकृति की ये शक्तियां प्रलय में भी बनी रहती हैं ।] ९

२२ जो १० देव [मन्त्र १५ में कहे] देवों से पहले थे वे पुत्र-समान उत्पन्न हुए देवों के लिए यह लोक देकर किस लोक में रहते हैं ? उत्तर— 'क' प्रजापति के लोक प्रकृति में । १०

२३ जब केश-हड्डी-स्नायु-मांस-मज्जा भर दी तो शरीर को पैर-सहित बना कर परमात्मा किस लोक में प्रविष्ट होता है ? उत्तर— 'क' आनन्दमय लोक में । ११

२४ केश-स्नायु-हड्डी-अङ्ग-पोरुए-मज्जा-मांस किसने कहाँ से भरे ? उत्तर— 'क' प्रजापति ने 'कु' पृथिवी से भरे । १२

२५ संसिच् नामक वे आपः आदि के परमाणु हैं जो केश आदि सामग्री भरते हैं । वे मर्त्य का सब भाग सींच कर पुरुष में प्रविष्ट हुए रहते हैं । १

३२२६ जांघें-घुटनेवाले पैर-सिर-हाथ-मुख-कन्धे-हँसली-पसलियाँ यह कौन ऋषि जोड़ता है ? १४

३२२७ शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् सन्धा समदधान् मही ॥ १५

२८ यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १६

२९ सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ।। १७

३० यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८

३१ स्वप्नो वै तन्द्रीनिर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥ १९

३२ स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलञ्च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन ॥ २०

३३ भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास् तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन ॥ २१

३४ निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चा नु प्राविशन् ॥ २२

३५ विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥ २३

३६ आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश् च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥ २४

३७ आलापाश् च प्रलापाश् चाभीलापलपश् च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥ २५

३८ प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश् च क्षितिश्चा या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥ २६

३९ आशिषश्च प्रशिषश् च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे सङ्कल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥ २७

३२४० आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस् ता बीभत्सावसादयन् ॥ २८

३२२७ [उत्तर—] महती सन्धान-शक्ति ईश्वर ही सिर-हाथ-मुख-जिह्वा-गरदन-पीठ के मोहरे इन सब को खाल से ढँक कर जोड़ता है। १५

२८ बड़ी जोडनेवाली शक्ति से जोड़े गये शरीर में जब वह शयन करती है तो जिससे यह सदा चमकता है उस रंग को इस में कौन भरता है ? १६

२९ (उत्तर—) जब देव [illegible] तपाते हैं, इसे यती परमात्मा की ईशा जाया सती प्रकृति-वधू जान लेती है, वह इसमें रंग भरती है। १७

३० जब त्वष्टा सूर्य का उत्कृष्ट पिता त्वष्टा परमात्मा शरीर में छिद्र बनाता है तब इन्द्रियादि मरणधर्मा शरीर को घर बनाकर पुरुष में प्रविष्ट होते हैं। १८

३१ उसके पीछे स्वप्न-तन्द्रा-कष्ट-पाप नामक-देव (व्यवहार) -बुढ़ापा-गंजापन-केशों की सफेदी शरीर में प्रवेश करते हैं। १९

३२ चोरी-दुष्कृत्य-वर्जनीय दुराचार-सत्य-यज्ञ-यश-बड़प्पन-बल-क्षात्रशक्ति और ओज शरीर में पीछे प्रविष्ट होते हैं। २०

३३ समृद्धि और निर्धनता, दान और जो कंजूसियाँ हैं, सब भूख और सब प्यासें शरीर में पीछे प्रविष्ट होती हैं। २१

३४ निन्दाएँ और कीर्तियाँ, और हाँ तथा नहीं यह, और श्रद्धा-दक्षिणा-अश्रद्धा शरीर में पीछे प्रविष्ट होती हैं। २२

३५ विद्याएँ और अविद्याएँ तथा अन्य जो उपदेश-योग्य है, और अ. वं-ऋचाएँ-साम-यजुः शरीर में प्रवेश करते हैं। २३

३६ आनन्द-विनोद-हर्ष-प्रसन्नता-उत्सवों के आनन्द-हँसी-नृत्त-नर-नारियों के इष्ट-सुख-इच्छाएँ स्वच्छन्द खेल-कूद-मनोरंजन शरीर में अनुप्रविष्ट होते हैं। २४

३७ आलाप (गान) -प्रलाप-वार्तालाप-व्याख्यान-संवाद-आयोजन-प्रयोजन-योजनाएँ ये सब शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। २५

३८ प्राण-अपान-चक्षु-कान-लाभ-हानि-सुख-दुःख-व्यान-उदान-वाणी-मन वे सब शरीर के साथ गति करते हैं। २६

३९ आशीर्वाद-आशाएँ-प्रशासन-प्रबन्ध-सम्मतियाँ-सम्यक शासन-विशेष शासन-चित्तवृत्तियाँ-सब संकल्प शरीर में अनुप्रविष्ट हो जाते हैं। २७

३२४० अस्ति के (लाल-नीले रक्त)-वस्ति में भरे(मूत्र)-शीघ्रगतिक(मूत्र)-मन्दगतिक(थूक-लार-पसीना-पित्त)-छिपे हुए-शुक्र (वीर्य-रज)-स्थूल(आँख-नाक-गला से निकला-आपः(सब शरीर में फैला)- वे ८ प्रकार के जल बीभत्सु [कल्याणी-सुखी-सुबद्ध] शरीर में दिव्य शक्तियों ने रक्खे। २८

३२४१ अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९

४२ या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥ ३०

४३ सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१

४४ तस्माद् वै विद्वान पुरुषमिद ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२

४५ प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवत ॥ ३३

३२४६ अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवो ऽध्यन्तरा तस्माच्छवो ऽध्युच्यते ॥ ३४

अथर्ववेद काण्ड ११ प्रपाठक २५ अनुवाक ५ सूक्त ९-१०

२६ मन्त्रों का सूक्त ९ । अर्बुदि

३२४७. ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च । असीन्परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्रदर्शय ॥ १

४८. उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥ २

४९ उत्तिष्ठतमा रभेथामादान संदानाभ्याम् ।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ ३

५० अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः । याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥ ४

५१ उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥ ५

५२ सप्त जातान्न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् ।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६

३२५३ प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७

समाचार

शोक है कि निम्नांकित महान् वैदिकों का देहान्त हो गया—
सर्वश्री वेदर्षि वेदाचार्य हरिशरण सिद्धान्तालंकार दिल्ली (९२) ३-७-९१, देवप्रेम हाण्डा इन्दौर १-७-९१, सर्व श्रीमती कमलारत्नम् (७८) ३-७-९, तुलसीदेवी [७७] माता जयदत्त शास्त्री अल्मोड़ा २३-६-९१।

आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई में ३०-६-९१ को प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु अबोहर को ११०००) रु० की मेघजी भाई आर्य साहित्य पुरस्कार दिया गया। ७-७-९१ को हुए समाज के निर्वाचन में प्रधान डॉ० देवरत्न आर्य; महामन्त्री श्री नरेन्द्र अम्बालाल पटेल; कोषाध्यक्ष कस्तूरीलाल मदान हुए। समाज के डा० सोमदेव शास्त्री, सुमन अपार्टमेंट, यारी रोड, वर्सोवा, अन्धेरी प० बम्बई ६१ ने उपनिषदों पर पत्राचार पाठ्यक्रम आरम्भ किया है, वार्षिक शुल्क २५ रु०, उत्तीर्णों को ३ पुरस्कार मिलेंगे।
डा० भवानीलाल भारतीय घड़मल-आर्य-साहित्य-पुरस्कार से सम्मानित हुए। बधाई।
विश्व हिन्दू परिषद् ने राजनयिकों को ॐ गायत्री के प्रायः सभी भाषाओं में छपे पत्रक कार्ड भेजे।

परमेश्वर के १०० नाम

श्री बी० के० श्रीवास्तव, सुन्दरनगर, रायपुर, म०प्र०

श्री आदित्यपालसिंह आर्य ने परमेश्वर के १०० नामों में ओम्-कालाग्नि-प्रज्ञ-आत्मा को नहीं गिना, ब्रह्म-ब्रह्मा, गणेश-गणपति, अन्न-अन्नाद-अत्ता में एक एक ही माना है।

किन्तु वहाँ उनकी इस प्रतिज्ञा की हानि, वदतो व्याघात स्पष्ट है कि केवल उन नामों को ही मानना चाहिए जहाँ यह लिखा हो 'इसलिए .. परमेश्वर का नाम है।' ओम्-कालाग्नि आदि के साथ तो यह लिखा है फिर उन्हें क्यों छोड़ दिया ? उसे प्रायः सभी ने सौ में माना है।

यदि पुनरुक्ति के कारण कालाग्नि-आत्मा को नहीं गिना तो ईश्वर की पुनरुक्ति वाले परमेश्वर को क्यों गिना? बुध-बुद्ध, देव-देवी में एक को क्यों नहीं छोड़ा जबकि अर्थ में थोड़ा ही अन्तर है ?
ओम्-कालाग्नि-ब्रह्म को जोड़ने से श्री आर्य के भी परमेश्वर के १०३ नाम बनते हैं और सौ नामों की समस्या का समाधान नहीं होता।

और वह छोटा सा समाधान था मेरा पूर्व लेख (वेदवाणी जून ९१ अंक) [कि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के सौ नामों में से १९ नाम कम करके २य में नये २५ जोड़ने से १०६ नाम हुए]।

सम्पादक— उपर्युक्त कथन मानने से महर्षि पर दोष आयेगा कि अधिक नाम होने पर भी सौ क्यों लिख दिया ? क्या उन्हें गिनती न आती थी ? उन्हें सौ नाम लिखना ही अभीष्ट था। पहले संस्करण से १९ कम करके १९ ही बढ़ाये, २५ नहीं। पुनरुक्ति आदि के कारण नीचे अंकित नाम कम गणना कर सौ ही मानने होंगे—

१-३—प्रज्ञ-आत्मा-गणेश प्राज्ञ-परमात्मा-गणपति में आगये।
४-६—सत्-चित्-आनन्द सच्चिदानन्द में आगये।
७— कालाग्नि काल और अग्नि में आगया।
८-९—[illegible]-बुध अन्नाद-बुद्ध में आगये।
अतः क्रम के अनुसार अभीष्ट ये सौ नाम परमेश्वर के हैं।

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष २-८-९१ को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उनके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषत: आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

शतपथ, निरुक्त, अष्टाध्यायी, वेदार्थपारिजात-खण्डन
अथर्ववेद सामवेद के ब्राह्मण

अनुवादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड १-२, २०), वेदार्थपारिजातखण्डन २०) साम वंशब्राह्मण १०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००) मंगाइये —वीरेन्द्र सरस्वती, उपाध्यक्ष, ओ३मित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी ८१७ महानगर, लखनऊ

वैदिक दैनन्दिनी भाद्रपद २०४८ विक्रम

तिथि कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३|४ १५

वार सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु र सो मं

नक्षत्र श पूभा उभा रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु म पूफा उफा ह चि स्वा वि अनु ज्ये ज्ये मू पू उ श्र श पूभा

ता. अ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ सि १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२

प्रेषक— मुद्रक दर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर लखनऊ उ० प्र०, भारत, पि २२६००

सेवा में

श्री पुस्तकालयाध्यक्ष

स्थान गुरुकुल कांगड़ी

पत्रालय

पिन

जनपद

प्रदेश

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

साम वेद अथर्ववेद

अथर्व वेद खण्ड २२

वर्ष १५ अंक ९ भाद्रपद २०४८ सितम्बर १९९१

उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९२, दयानन्दाब्द १६७

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक — वेदार्य वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेद परिषद्

सहायक— विमला शास्त्री, सी. ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१

दिल्लीकार्यालय श्री धनंजय कुमार, मन्त्री, चौह हिल व्यू बसन्तविहार नयी दिल्ली ५७, दूरभाष ६०१४५२

वेद-ऋचाएँ गूँज उठें !

वेद महान् अपौरुषेय हैं ईश्वरीय शुचि ज्ञान हैं, मानवता की विमल मूर्ति वे सत्प्रेरक विज्ञान हैं।
देशकाल और इतिहासों की सीमाओं से हैं बाहर, वेदज्ञान की गरिमा से मानव उन्नति करता सत्वर।
सभी सत्य-विद्याओं का है पुस्तक दिव्य हमारा वेद, आदिकालसे पावन गङ्गा धर्म की रहा बहाता वेद।
गौरव-मंडित वेद हमारे करते कण कण का उत्थान, सुख समृद्धि भरा जीवन हो,करके वेदसुधा का पान।

ज्योतिर्मयी ऋचाओं से यह ज्योतित हो अब सब संसार,
पुनः प्रकाशित जन का पथ हो, क्षत-विक्षत हो तिमिरागार !
वेद-ऋचाएँ गूँज उठें फिर धरती के शुचि प्राङ्गण में,
साम-गान की मृदुल लहरियाँ लहराएँ भू-आँगन में।
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' से गुञ्जित हो सम्पूर्ण धरा।
सुख-समृद्धि-सफलता समता से हो पावन वसुन्धरा !!

—राधेश्याम आर्य विद्यावाचस्पति. सुल्तानपुर

सत्यार्थप्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमांक ११। ऋषि दीर्घतमाः, देवता आत्मा, छन्द स्वराडुष्णिक्, स्वर ऋषभ

विद्यां चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

यजुर्वेद अ. ४० मन्त्र १७

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह 'अविद्या' अर्थात् कर्म-उपासना से मृत्यु को तरके 'विद्या' अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है। [समुल्लास ९]

[यहाँ आदि-उदात्त 'अविद्या' में नञ् समास होने से विद्या-भिन्न (कर्मोपासना) अर्थ हुआ, और योग दर्शन के बहुव्रीहि समास वाले अन्तोदात्त 'अविद्या' का अर्थ अज्ञान है।]

सर्वश्री आचार्य शंकर- आर्यमुनि-सातवलेर-हरिशरण आदि इस रहस्य को न समझने के कारण अर्थ करने में गड़बड़ा गये। महर्षि का अर्थ सत्य है।

पतञ्जलि-कृतं योग दर्शन-शास्त्रम्

(गताङ्क से आगे)

वे विघ्न ६ प्रकार के हैं— १. व्याधि- धातुओं की विषमता से ज्वर आदि पीड़ा होना। २. स्त्यान- सत्य कर्मों में अप्रीति। ३. संशय- जिस पदार्थ का निश्चय किया चाहे उसका यथावत् ज्ञान न होना ४. प्रमाद- समाधि-साधनों के ग्रहण में प्रीति और उनका विचार यथावत् न होना। ५. आलस्य- शरीर व मन में आराम की इच्छा से पुरुषार्थ छोड़ बैठना। ६. अविरति- विषय-सेवा में तृष्णा का होना। ७. भ्रान्ति-दर्शन- उल्टे ज्ञान का होना, जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़-बुद्धि करना तथा ईश्वर में अनीश्वर और अनीश्वर में ईश्वर-भाव करके पूजा करना। ८. अलब्धभूमिकत्व- समाधि की प्राप्ति न होना। ९. अनवस्थितत्व- समाधि की प्राप्ति होने पर भी उसमें चित्त स्थिर न होना। ये सब चित्त की समाधि होने पर विक्षेप अर्थात् उपासना-योग के शत्रु हैं।

३१. दुःख-दौर्मनस्य-अङ्गमेजयत्व-श्वास-प्रश्वासा विक्षेप-सहभुवः।

अब इनके फल लिखते हैं— दुःख की प्राप्ति, मन का दुष्ट होना, शरीर के अवयवों का कम्पन, श्वास-प्रश्वास के अत्यन्त वेग से चलने में अनेक प्रकार के क्लेशों का होना जो कि चित्त को विक्षिप्त कर देते हैं वे सब क्लेश अशान्त चित्त वालों को प्राप्त होते हैं, शान्त चित्त वाले को नहीं। (भू०)

३२. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः।

जो केवल अद्वितीय ब्रह्मतत्त्व है उसी में प्रेम और सर्वदा उसीके आज्ञा-पालन में पुरुषार्थ करना है, वही एक इन विघ्नों के नाश करने का वज्ररूप शस्त्र है, अन्य कोई नहीं। इसीलिए सब मनुष्यों को अच्छी प्रकार प्रेमभाव से परमेश्वर के उपासना-योग में नित्य पुरुषार्थ करना चाहिए कि जिससे वे सब विघ्न दूर हो जायँ। (भू०)

३३. मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षाणां सुख-दुःख-पुण्य-अपुण्य-विषयाणां भावनातः चित्त-प्रसादनम्।

वेद में सब सत्य विद्या (विज्ञान)

७- यजुर्वेद १८-३९ में और उसके साथ शतपथ ९-४-१-८ में अप्सरा आयुव नामक ब्रह्माण्ड-किरणों का वर्णन है-

१११ संहितो सूर्यो गन्धर्वस् तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ।
आयुवान इव मरीचयो प्लवन्ते ॥

८- ब्रह्माण्ड-धूलि [कास्मिक डस्ट]-

रजः का अर्थ धूल है जिसके संलग्न होने से लोक रजन् कहाते हैं-

११२-११३ यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः[१०.१२१.५]यः पार्थिवानि विममे रजांसि।१.१५४.१

९- इसका रङ्ग १-३५-९ में काला बताया है। ब्रह्माण्ड-किरणों में यह धूल नहीं होती-

११४. अभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ११५. अरेणवः ... मरुतः° [१-१६८-४]

१०- त्रतवाद के अन्तर्गत ईश्वर-जीव के साथ प्रकृति (मैटर) का भी वर्णन वेद में किया है-

११६-११७ त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ।।१.१६४.४४, अ६-१०-२६

११८-११९ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥१-१६४-२०, अ ९-९-२०

इनमें से पहले मन्त्र में संवत्सर में वपन-कर्त्री और दूसरे में वृक्ष शब्द से प्रकृति अभिप्रेत है।

११- परमाणु (ऐटम) का वर्णन-

नीचे अंकित दो मन्त्रों में सम्पतत्र और रेणु शब्द परमाणु के लिए आये हैं जो तीव्र गतिशील नाचते हुए से रहते हैं। कणाद मुनि की वैशेषिक-दर्शन-व्याख्या रूप कुसुमाञ्जलि में उदयनाचार्य ने संपतत्र का प्रयोग अणु-अर्थ में किया है-

१२०-१२२ विश्वतश् चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥

ऋ १०-८१-३, अ १३-२-२६, य १७-१९

१२२ यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥ १०-७२-६

९. रसायन विद्या (कैमिस्ट्री)

जल की रचना हाइड्रोजन-आक्सीजन से पहले मित्रं हुवे० १-२-७ द्वारा जल-विद्या-प्रकरण में बतायी जा चुकी है। सोम-रस का निर्माण, उसमें उचित मात्रा में दूध-शहद-मिश्रण का वर्णन ऋ० १-३४-११ और १०-४१-३ में मधु-पेय नाम से है-

१२४-२५ आ नासत्या ... मधुपेय०...।। अध्वयु ँ वा मधुपाणिम ...

आमिक्षा (पनीर) और मधुपर्क का वर्णन यजु० १९-२१ और अथ० १०-३-२१ का देखिए-

१२६-२७ धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि ।
सोमस्य रूपं हविष आमिक्षा वाजिनम् मधु ॥
यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।

१२८ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ य० २६-२५

सुवर्ण-भस्म— १२९ न तद्रक्षांसि न पिशाचास तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः।
यजु० ३४-५१

यह सुवर्ण देवों का पहला ओज है जिसे मांस-भक्षी राक्षस पार नहीं कर सकते । जो इसे और इसकी अग्नि से बनी भस्म का सेवन करता वह देवों-मनुष्यों में अपनी आयु बड़ी करता है।

सोने के समान ही शंख-सीप-मोती आदि की भस्म बनाना (कैल्सिनेशन) अथर्व ४.१०.१-७ में है-

१३० वाताज्‍ जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस् परि ।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः ॥

१३१ शङ्खेनामी वाममति शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः

रत्नों का धारण करना-कराना ऋग्वेद के पहले मन्त्र अग्निमीडे ... रत्नधातमम् में वर्णित है। भू-गर्भ-स्थ अग्नि ही रत्नों का निर्माता है।

अथर्ववेद ५-२८-१ में हरित रजत-अयस(सोना-चाँदी-लोहा-ताँबा) का और यजुर्वेद १८-१३॥ सोना-चाँदी-ताँबा-लोहा-सीसा-जस्ता-राँगा आदि को अपने लिए यज्ञ (खान-शोधन और औषध-निर्माण) के द्वारा सिद्ध और सेवन करने का उपदेश दिया गया है—

१३२ नव प्राणान् नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि ॥

१३३ अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

इस में धातुओं से पहले पत्थर-मिट्टी-गिरि-पर्वत-बालू-वनस्पतियों का भी वर्णन है।
रसायन-विद्या का वर्णन आयुर्वेद के अन्तर्गत भी आता है।

१०. सृष्टि-विद्या (कास्मोलाजी)

अघमर्षण-सूक्त (१०-१९०), पुरुष-सूक्त (१०-९०), नासदीय-सूक्त (१०-१२९) में सृष्टि-विद्या का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। अघमर्षण का पहला मन्त्र अग्नि-विद्या-प्रकरण में दिया जा चुका है।

संस्कृत-वाक्य-प्रबोध:

८. धातु-रूप ज्ञा धातु [जानना] परस्मैपदी वर्तमाने लट् लकार

पुरुष	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन	अर्थ
प्रथम	जानाति	जानीत:	जानन्ति	वह-वे दो-वे जानते हैं
मध्यम	जानासि	जानीथ:	जानीथ	तू-तुम दो-तुम जानते हो
उत्तम	जानामि	जानीव:	जानीम:	मैं-हम दो-हम जानते हैं

इस के भविष्यत्काल लृट् लकार में स्य लगाकर ज्ञास्यति आदि रूप बनाओ ।

यण् स्वर-सन्धि सूत्र- ७. इको यणचि [इ-उ-ऋ-लृ को क्रमसे य-व-र्-ल हों स्वर परे रहते]

त्यप् प्रत्यय- अव्यय से होता है जैसे अत्रत्य:, तत्रत्य:, पाश्चात्य:, दाक्षिणात्य: आदि ।

अनुवाद संस्कृत में करो- १- क्या आप संस्कृत भाषा को जानते हैं ? २- हाँ, हम जानते हैं । ३- वे वेदों को पढ़ते हैं । ४- आप कहाँ के हैं ? ५- मैं भारत का हूं । ६- इसको पुस्तक दो । ७- इसका घर कहाँ है ? ८- इससे पुस्तक लो । ९- हम दोनों संस्कृत को पढ़ना चाहते हैं । १०- तुम धर्म को जानते हो या नहीं ?

समास- नीचे के तीन शब्दों में विग्रह करके समास बताओ-

सुकाम-सुभद्रौ, चीन-निकायौ, यथा-योग्यम् ।

संस्कृत में प्रश्नोत्तर दो- १- त्वं कुत्रत्य: ? २- अयं क: ? ३- त्वं कां कां भाषां जानासि ? ४- अस्य गृहं कुत्र अस्ति ? ५- त्वया शाकं च ओदनं च भुक्तं न वा ?

९. सभा-प्रकरणम्

इदानीं सभायाङ्किञ्चिच्चर्चा विधेया ।	**अब सभा में कुछ चर्चा करनी चाहिए ।**
धर्म: किंलक्षणोऽस्ति ? इति पृच्छामि ।	**धर्म का क्या लक्षण है ? यह पूछता हूं ।**
वेद-प्रतिपाद्यो न्याय्य: पक्षपात-रहितो यश्च परोपकार-सत्याचरण-लक्षण: ।	**वेदोक्त, न्यायानुकूल, पक्षपात-रहित और जो परोपकार-सत्याचरण लक्षणवाला है ।**
ईश्वर: कोऽस्तीति ब्रूहि ?	**ईश्वर कौन है ? यह कहिए ।**
य: सच्चिदानन्दस्वरूप: सत्य-गुण-कर्म-स्वभाव: ।	**जो सच्चिदानन्द-स्वरूप, जिसके गुण-कर्म स्वभाव सत्य हैं ।**
मनुष्यै: परस्परङ्कथं वर्तितव्यम् ?	**मनुष्यों को आपस में कैसे वर्तना चाहिए ?**
धर्म-सुशीलता-परोपकारै: सह यथायोग्यम् ।	**धर्म, श्रेष्ठ स्वभाव और परोपकार के साथ जैसा जिस के योग्य हो ।**

शब्द-सूची — पूर्व के १६१ में नये ११ जोड़ने से अब तक इव संस्कृत शब्द १७२ हुए ।

१२ वाँ शब्द-रूप— आकारान्त स्त्रीलिङ्ग लता शब्द

इसीके समान बालिका- सुता-सभा-तुला आदि सभी आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप चलेंगे ।

विभक्ति	प्रत्यय एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	रूप एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	अर्थ
१	आ	ए	आः	लता	लते	लताः	लता, लता ने
२	आम्	ए	,,	लताम्	,,	,,	लता को
३	या	भ्याम्	भिः	लतया	लताभ्याम्	लताभिः	लता से, द्वारा
४	यै	,,	भ्यः	लतायै	;;	लताभ्यः	लता के लिए
५	याः	;;	;;	लतायाः	;,	;;	लता से
६	;,	योः	नाम्	;;	लतयोः	लतानाम्	लता का, के, की
७	याम्	;;	सु	लतायाम्	;;	लतासु	लता में, पर
सम्बोधन	ए	ए	आः	हे लते	हे लते	हे लताः	हे अरे ओ लता

ऐसे ही शय्या-खट्वा-रोटिका-गीवानन्दिका-धारा-आज्ञा-तुला-वेला-माला-अजा-चटका-कक्षा शाला-कृपा-इच्छा-चर्चा-सुशीलता-क्रिया-विद्या-उपासना-रमा के रूप बोलो लिख कर चला ओ

व्यंजन-सन्धि— ८ वाँ सूत्र 'स्तोः श्चुना श्चुः'।

नियम – स्तु (स-तवर्ग त-थ-द-ध-न) के स्थान में क्रम से श्चु (श-चवर्ग च-छ-ज-झ-ञ) हो जायें यदि श्चु आगे हो। भाव यह है कि तालव्य से मिलकर दन्त्य अक्षर तालव्य हो जाता है।

जैसे काचित्-चर्चा काचिच्चर्चा। अन्यत्-च अन्यच्च। सत्-च सच्च। (त को च); यस्-च यश्च। (स को श), यावत्-जीर्यते यावज्जीर्यते। (त को ज हुआ) शरीरात्-श्रमः शरीराच्छ्रमः। तत्-श्रुत्वा तच्छ्रुत्वा। (त को च और श को छ हुआ)।

९ वाँ सूत्र— 'शश्छोऽटि' अट् [स्वर-ह-य-व-र] परे रहते श् को छ् हो जाये।

सन्धि-विच्छेद- किलक्षणः-अस्ति-इति किलक्षणोऽस्तीति। कः-अस्ति-इति कोऽस्तीति॥

चौथा समास – तत्पुरुष [जिसमें दोनों पद प्रधान हों]

पहले शब्द का जिस विभक्ति का लोप हो उसी के नाम से वह तत्पुरुष कहा जाता है जैसे—

द्वितीया-तत्पुरुष– कष्ट (कष्ट को)-प्राप्तः कष्टप्राप्तः।
तृतीया ;; पक्षपातेन रहितः पक्षपात-रहितः।
चतुर्थी ,, पाकाय शाला पाक-शाला।
पंचमी ,, पापाद् भयम् पाप-भयम्।
षष्ठी ,, परेषाम् उपकारः परोपकारः। राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः। यही अधिक होता है।
सप्तमी ,, वेदे प्रतिपाद्यः वेद-प्रतिपाद्यः।

अनुवाद

नियम- सह के साथ तृतीया प्रयुक्त होती है जैसे- मया त्वया तेन केन भवता रामेण बालिकया सर्वैः मित्रैः सह। के देखकर षष्ठी का प्रयोग न करें।

१- मैं सभा में उनके साथ जाता हूं। २- धर्म का क्या लक्षण है? ३- जो पक्षपात से रहित और वेद में वर्णित हो वह धर्म है। ४- मैं रोटी को शाक और दाल के साथ खाता हूं। ५- हम सब विद्यालय में संस्कृत के साथ हिन्दी को पढ़ते हैं। ६- हम दोनों तेरे, उनके और आपके साथ वहाँ कभी न जायँगे।

शतपथ ब्राह्मण कांड६, अध्याय३(३८) ब्राह्मण२

[अश्वादि ५ पशुओं का अभिमन्त्रण आदि]

हाथ में यह अभ्रि होती है, अब पशुओं का अभिमन्त्रण करता है। जैसे देवों ने इनमें अन्वेषण करते हुए सामने पराक्रम किया वैसे ही यह करता है। १

१. वह अश्व का अभिमन्त्रण करता है-

प्र तूर्त्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु संवतम्।

दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिः॥ य० ११.१२

हे वाजिन्(विद्वान्), तू वरिष्ठा संवत् (उत्तम विभक्त गति) तक बहुत शीघ्र दौड़; सूर्य-प्रकाश में तेरा जन्म, अन्तरिक्ष में तेरा केन्द्र, और पृथिवी पर ही प्रयोजन है। अतः उसे अग्नि-वायु-आदित्य देवता बनाकर उसमें पराक्रम धारण करता है। २

२. अब रासभ को-

युञ्जाथा रासभ युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू। अग्नि भरन्तमस्मयुम्॥ य० ११.१३

हे अध्वर्यु-यजमान! (सूर्य-वायु के समान शिल्पियो)! तुम दोनों हमारी भेजी अग्नि (बिजली) धारण किये रासभ (जल-अग्नि-वेग नामक अश्व को इस याम कर्म (यान) में जोड़ो।

यह कहकर रासभ में पराक्रम धारण करता है। ३

३. अब अज को—

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये॥ य० ११-१४

हे मित्रो! हम प्रत्येक कर्म-अन्न-संग्राम में रक्षा के लिए ऐश्वर्य-युक्त राजा को बुलाते हैं। यह कहकर अज में पराक्रम धारण कराता है। ४

तीन मन्त्रों से मन्त्रणा करता है, अग्नि त्रिवृत् है, जितनो वह या इसकी मात्रा है उतनी से यह पराक्रम धारण कराता है। ५

अब इन्हें सामने टहलाता है। इसे इन पशुओं से अलग रखता है, छुआता नहीं, ये पशु अग्नि हैं, कहीं यह अग्नि मेरी हिंसा न करे। ६

१- वह अश्व को टहलाता है—

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्तीः रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि। (य० ११.१५)

तू पाप-शत्रु-सेना को लाँघता-मारता शीघ्रता से आ, पशु रुद्र के हैं जो तेरा देवता है सुखोत्पादक तू रुद्र के सेनापतित्व को पा। यह अश्व से आशा करता है। ७

२- अब रासभ को—

उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन्। पूष्णा सयुजा सह॥ (य० ११.१५)

सुखी मार्ग वाला तू अभय करता हुआ साथी इस पूषा पृथ्वी के साथ विशाल अन्तरिक्ष में नाना गति कर। इस तरह रासभ से आशा करता है। ८

३- अब अज को—

पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर॥ (य० ११)

पृथिवी के पास से सुख पूरक, सूर्य-तुल्य पशव्य अग्नि को धारण कर, यह अजसे आशा करता है। ९

३ मन्त्रों से आशा करता है । अग्नि त्रिवृत् है । जितनी वह या ३ नकी मात्रा है उतनी से ही इसे अनुकूल बनाता है । तीन से पहले अभिमन्त्रण करता है अतः ६ हुए । ६ ऋतुएँ संवत्सर हैं जो अग्नि है । जितनी उसकी मात्रा है उतना वह होता है । १०

प्रपाठक २, कण्डिका १०४, अध्याय ३ में ब्राह्मण २ पूर्ण हुआ ।

ब्राह्मण ३

[पिण्ड के प्रति ब्रह्मा आदि का अभिगमन आदि]

ये अग्नियाँ प्रदीप्त होती हैं । अब मिट्टी ढोते हैं । ये लोक ही ये अग्नियाँ हैं । वे जब प्रदीप्त हुईं तो लोक बनीं । इनके लिए हो पहले देवों ने कर्म चाहा था अतः इन अग्नियों को पार कर मिट्टी लाता है तब इसे इन लोकों के सामने रखता है । १

वे पूर्व की ओर जाते हैं, यह दिशा अग्नि की अपनी ही है, उसमें इसे पाता है । २

वे आगे बढ़ते हैं—

अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेम । (य० १६) । हम पशव्य अग्नि को अच्छा पायें । ३

अब अनद्धा [नकली] पुरुष को देखता है—

अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ।। (य० १६) हम पशव्य अग्नि को लेंगे । अतः इसे अनद्धा पुरुष द्वारा लेता है । ४

अब दीमक की बाँबी की रेह मिट्टी मार्ग में पड़ी होती है उसे देखता है कि यही दीमक-वपा यही ये लोक हैं । इनमें देवों ने विग्राह चाहा था वैसे ही यह चाहता है । ५

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।। (य० १ -१७)

प्रथम अग्नि-जातवेदा उषाओं के क्रम से दिनों को प्रसिद्ध करता, और सूर्य की बहुत सी किरणों तथा द्यावा-पृथिवी को फैलाता है । वैसे ही यह इसे पाता और जब दूरतक देखता है तो उसे छोड़कर मिट्टी तक आते हैं ।६

अब अश्व को अभिमन्त्रित करता है । देवों ने कहा कि हम इसका पाप (श्रम)दूर करें, और दूर किया वैसे ही यह करता है । ७

आगत्य वाज्यध्वानं सर्वा मृधो विधूनुते । अग्निं सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते ।। (य० १८)

अश्व मार्ग में आकर सब पापी संग्रामों को कँपाता है, अग्नि अग्रणी को महान् संसार में चक्षु से चयन करना (विजयी देखना) चाहता है । ८

अब इसे टहलाता है । जैसे कि यह इसे देवों से जानकर बोला हो कि यह ऐसे लेचल । ६

अथवा, देव डरे कि कहीं हमारे इसको यहाँ दुष्ट राक्षस मार न डालें अतः इस रक्षक वज्र सूर्य को ऊपर कर दिया वही यह अश्व है, वैसे ही इनके लिए यह इस वज्र को उपरि-रक्षक करता है । १०

आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।
भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ।। (य० ११-१६)

हे वाजिन् ! तू पृथिवी पर आक्रमण कर चक्षु से अग्नि की इच्छा कर । भूमि के खोदने के लिए हमें बता कि जिससे हम उसे खोद सकें । ११

३२४१ हड्डी को समिधा बनाकर उस शरीर में उन ८ आपः को बिठाया। देव(इन्द्रियाँ)वीर्य को घी बना कर पुरुष में प्रविष्ट हुए। २९

४२ जो आपः और जो देव तथा ब्रह्म के साथ जो विराट् प्रकृति है वह और ब्रह्म शरीर में तथा उस में प्रजापति (जीव) प्रविष्ट हुआ। ३०

४३ पुरुष के चक्षु को सूर्य, प्राण को वायु विशेष स्वीकार करते हैं। फिर इसके शेष को देव अग्नि(जठराग्नि) के लिए दे देते हैं। ३१

४४ अतएव विद्वान् पुरुष परमात्मा को यह ब्रह्म मानता है। गोष्ठ में गौओं के समान इसमें सब देव शयन करते हैं। ३२

४५ जीव प्रथम मारक ईश्वर के द्वारा तीन प्रकार से विविध दशाओं में जाता है— एक से वहाँ (मोक्ष) जाता, एक से यहाँ(नीच योनि) जाता, एक से यहाँ (मनुष्य योनि में) फल भोगता है। ३३

३२४६ बढ़े हुए गीले पानी में बीच (गर्भ) में शरीर स्थित होता है, उसमें अधिष्ठाता बली जीव अधिष्ठाता है, उस पर अधिष्ठाता परमात्मा बली कहाता है। ३४

अथर्ववेद काण्ड११ प्रपाठक२५ अनुवाक ५ सूक्त९-१०

विषय— बाहु इषु, उत्तिष्ठ, युद्धादि, अदिते अर्बुदे तवेश्वरादि०, आदित्यो ब्रह्मणस्पतिरित्यादि०, विजयार्थेश्वर प्रार्थनाहुति०, त्रिसन्धेत्यादि युद्धादि पदार्थ विद्या —महर्षि दयानन्द सरस्वती

२६ मन्त्रों का सूक्त ९। अर्बुदि १ लाख सेना का पति, न्यर्बुदि दस लाख सेना का पति

३२४७ हे अर्बुदि! जो बाहु-क्षेप्यास्त्र-धनुर्धारियों के पराक्रम हैं उन्हें और जो तलवारें-फरसे-शस्त्र तथा जो हृदय में चित्त के सङ्कल्प हैं उन सब को तू शत्रुओं को दिखाने के लिए बना और विशाल महाशस्त्र और उदार भाव भी दिखला। १

४८ हे मित्र विजयी सैनिक जनो! तुम उठो, प्रवृत्त हो जाओ। हे अर्बुदि! जो हमारे मित्र हैं वे तेरे देखे और सुरक्षित रहें। २

४९ हे अर्बुदि-न्यर्बुदि! तुम दोनों उठो, पकड़ने-बाँधने के द्वारा युद्ध आरम्भ करो, शत्रुओं की सेनाओं को रस्सियों से बाँध लो। ३

५० अर्बुदि नामक जो सेनापति है और उसका भी ईश जो न्यर्बुदि महासेनापति है; जिन दोनों से (युद्ध के) अन्तरिक्ष और यह बड़ी पृथिवी घेरे जाते हैं, उन दोनों सम्राट् के स्नेहियों के साथ मैं (पुरोहित और जन-प्रतिनिधि) सेना द्वारा जीते देश में जाऊँ। ४

५१ हे जीतने के इच्छुक सेनापति! तू सेना-सहित उठ। शत्रुओं की सेना को भग्न करता हुआ भोगों (भोग्य वस्तुओं से, साँप की कुण्डलियों के समान व्यूहों)से घेर। ५

५२ हे महासेनापति! ७ महाशस्त्रों का उत्पात दिखाता हुआ, ७ दिशाओं से शत्रुओं को घेरता हुआ, ७ राज्याङ्ग काम में लाता हुआ, ७ उदार भावों की समीक्षा करता हुआ तू उन सब से अग्नि में घी पड़ जाने पर सेना-सहित उठ। ६

३२५३ हे अर्बुदि! तेरे प्रहार से शत्रु के मरने पर उसकी पत्नी आदि सिर-छाती पीटती हुई, अश्रुमुखी, हल्के कानों वाली; बाल बिखेरे रोयें — चिल्लायें। ७

३१५४. सङ्कर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती। पतिं भ्रातरमात्स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥ ८

५५. अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।
ध्वांक्षाः शकुनयस् तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते० [पूर्ववत्] ॥ ९

५६. अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः । पौरुषेयेऽधि कुणपे० ,, ॥ १०

५७. आ गृह्णीतं संबृहतं प्राणापानान्यर्बुदे । निवाशा घोषाः संयन्त्वमित्रेषु समीक्षयन्०॥ ११

५८ उद्वेपय संविजन्तां भियामित्रान्त्संसृज । उरुग्राहैर्बाह्वङ्कै विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥ १२

५९ मुह्यन्त्वेषां बाहवश् चित्ताकूतं च यद्धृदि । मैषामुच्छेषि किं चन रदिते० ॥ १३

६० प्रतिघ्नानाः संधावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः । अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते०॥ १४

६१ श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे, अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास् ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदाराश्च प्र दर्शय ॥ १५

६२ खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् । य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये । सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥ १६

६३ चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान् । स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥ १७

६४ उद्वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः । जयांश्च जिष्णुश्चामित्राँ जयतामिन्द्रमेदिनौ॥ १८

६५ प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे। अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥ १९

६६ तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्। अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन॥ २०

६७ उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु। शौष्कास्यमनु वर्ततामित्रान् मोत मित्रिणः॥ २१

६८ ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये । तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः । सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदाराश्च प्रदर्शय ॥ २२

६९ अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ,
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥ २३

७० वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः । गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् । सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदाराश्च प्रदर्शय ॥ २४

७१ ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः । ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः । ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ २५

७२ तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत संनह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥ २६

११५४ हे अर्बुदि ! तेरे नाग-समान डसने और विनाश करने पर— (मन्त्र १४ तक)
कार्यकर्ता-हाथ को खींचती, मन से पुत्र-पति-भाई और अपनों को चाहती हुई रिपु-नारी रोए। ८
५५ भौंरों के समान उत्तेजित-मस्त गिद्ध-बाज-कौए-शक्तिशाली पक्षी शत्रुओं पर तृप्त हों, तू देख। ९
५६ और कुत्ते के समान पैर वाले सब पशु-मक्खियाँ-कीड़े पुरुषों के मरे शरीरों पर तृप्त हों। १०
५७ हे न्यर्बुदि ! तू शत्रु के प्राण-अपानों को जकड़-रोक, अमित्रों में कोलाहल-घोष उठें, तू देख। ११

५८ हे महासेनापति ! तू अमित्रों को कँपा, वे विचलित-भयभीत हों, तू बड़ी पकड़ के, जालों, उरुओं को जकड़ने वाले और बाहुक(बाहु-समान, बाहें टेढ़ी करनेवाले) शस्त्रों से शत्रुओं को बींध। १२
५९ इनकी बाहें और जो हृदय में चित्त-सङ्कल्प हैं वे निकम्मे हों, इनका शेष कुछ न बचे। १३
६० शत्रु-पुरुष के मरने पर उनकी स्त्रियाँ दुखी, छाती-उरू-सिर पीटती, बाल नोचती-रोती दौड़ें। १४

६१ हे सेनापति ! तू शत्रुओं को दिखाने को शिकारी कुत्तों वाली; जल-नभ-चारी, नाना रूप की सेना, तथा पात्र में अन्दर बन्द, दिशाओं में फैलने वाली, घातक-पदार्थ रक्खे, हिंसक कृत्या (बम) बना और उत्पात तथा उदार विचार भी प्रदर्शित कर। १५

६२ आकाश में भेदन-मन्थन में दूर तक अधिक गति-युक्त, गर्वीली, गर्व-भंजक, विकृत-शब्द-कारी और जो उत्पाती-छिपी-चमत्कारी स्थल-जल-नभ-सेनाएँ, सर्प-समान विषैली, नीच राक्षसी सेनाएँ हैं उन्हें दिखला। १६

६३ चार दाढ़ (अनी) वाले, काले-लौहमय-दन्त-युक्त बाण, घड़े-समान मोटे-मुष्टण्डे-योद्धा खून-भरे मुख वाले भयानक-अतिभयानक बाण तथा योद्धा दिखा। १७

६४ हे सेनापति ! तू विजयेच्छु ये अमित्र-सेनाएँ कँपा। उन्हें राज-स्नेही तुम दोनों जीतो। १८

६५ हे अर्बुदि ! घिरा-घायल-मरा अमित्र भूमि पर शयन करे। आग की जीभ, धुएँ की लपट वाले विजयी बाण सेना-द्वारा चलाये जायें। १९
६६ हे अर्बुदि ! उस सेना-द्वारा पराजितों में बड़े-बड़े को कर्म-पति राजा मारे, इनमें कोई न छूटे। २०
६७ अमित्रों के हृदय टूट जायें, प्राण ऊपर निकले; मुख सूख जाये, मित्रों का नहीं। २१

६८ हे अर्बुदि ! जो धीर-अधीर-भागनेवाले-बहरे-तमसास्त्र से सींग-रहित पशु-समान बलबलाते खाल-वस्त्र—कवच पहने हैं उन सब को तू शत्रुओं को दिखाने के लिए तय्यार कर और उत्पातों तथा उदार भावों का भी प्रदर्शन कर। २२

६९ हे दुष्ट-हन्ता कर्माधिपति राजन ! अर्बुदि और सर्वोच्च त्रिषन्धि सेनापति हमारे अमित्रों को ऐसा बींधें कि उनमें हम हजारों का हनन कर दें। २३

७० हे अर्बुदि ! तू वनस्पति-फल-ओषधि-लता और स्थल-जल-नभ-चारी सेनाएँ—सर्प-समान-देव-पवित्रजन-पितर सब अमित्रों को दिखाने के लिए प्रस्तुत कर तथा उदारता भी दिखला। २४

७१ हे अर्बुदि ! तेरे काटने, विनाश करने पर हम देखें कि हमारे सैनिक-देव आदित्य ब्रह्मचारी-वेद-पति-सम्राट-मन्त्री-विधाता-मित्र-प्रजारक्षक-ऋषि तुम अमित्रों पर शासन करें। २५

१२७२ हे मित्र देवजनो ! तुम उन पर शासन करते हुए उठो-तय्यार होओ। यह संग्राम जीत कर यथास्थान विशेषता से विराजो। २६

२७ मन्त्रों का सूक्त १० । त्रिषन्धि आदि

३२७३. उत्तिष्ठत संनह्यध्वमुदाराःकेतुभिःसह।सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ १

७४ ईशां वो वेद राज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह । ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः । त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥ २

७५ अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ ३

७६ अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।
त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥ ४

७७ उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
अयं बलिर्व आहुतस् त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ५

७८ शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी ।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ॥ ६

७९ धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥ ७

८० अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥ ८

८१ यामिन्द्रेण सन्धां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसन्धया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥ ९

८२ बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ॥ १०

८३ येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषन्धिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११

८४ सर्वाँल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२

८५ " " ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥ १३

३२८६ सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् ।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४

३२७३ हे उदारो ! उठो, कवच पहनकर झण्डों के साथ तय्यार होओ, हे सर्प-समान, अन्य जन, राक्षस-स्वभाव सैनिको ! शत्रुओं का पीछा करो । १

७४ हे त्रिषन्धि(तीन राज्यों की सन्धि से बने वज्र-सेनापति)! मैं अरुण झण्डों के साथ तेरा शासन राज्य जानता हूं, जो अन्तरिक्ष-द्यौ-पृथिवी पर बुरे नाम के मानव हैं वे त्रिषन्धि के चित्त में रहें । २

७५ त्रिषन्धि वज्र० के द्वारा लौह-मुख, सुई-समान मुख वाले और कड़्घी-समान नाना दैने मुख के, कच्चा-मास-भक्षी, वायु-वेग-युक्त बाण शत्रुओं को लगें । ३

७६ हे स्थितिज्ञ आदित्य-समान सेनापति ! तू बहुत शब्द (युद्ध के अन्दर) रख । त्रिषन्धि की वह अच्छी हित-कारिणी व्यवस्थित सेना मुझ राजा के वश में रहे । ४

७७ हे विजयेच्छु अर्बुदि ! तू सेना-सहित उठ । तुम्हारा यह बलिदान आहुति है जो त्रिषन्धि को प्यारी है । ५

७८ प्रकाश-अन्धकार में चलने वाली, काले घोड़े के चार पैरों (पहियों) वाली यह शरव्या तोप शत्रु-नाश करे । हे कृत्या, (श्वेद्क)तू त्रिषन्धि की सेना के साथ शत्रुओं के(वध के)लिए हो । ६

७९ धुआं-भरी आंखों वाली शत्रु-सेना गिरे, बहरे कानों वाली होकर, चिल्लाए । त्रिषन्धि की सेना द्वारा जीतने पर झण्डे लाल हों । ७

८० जो कौए आदि पक्षी दिन में अन्तरिक्ष में घूमते हैं वे नीचे आयें । कुत्ते जैसे पंजों वाले पशु मक्खी-कच्चा-मास-भक्षी गिद्ध शव को नोचें । ८

८१ हे बड़े पति (त्रिषन्धि) ! तू सम्राट-मन्त्री के साथ जो सन्धि करता है उस इन्द्र-सन्धि से मैं सब विद्वानों को बुलाउँ कि इस ओर से जीतो, उस (शत्रु की) ओर से नहीं । ९

८२ युद्ध के अङ्गों का रसिक बड़ा सेनापति और वेद-विज्ञान-निष्णात ऋषि असुर-नाशक शस्त्र त्रिषन्धि को सूर्य-बिजली से चलायें और जयार्थ उसका तथा सेनापति का आश्रय लें । १०

८३ जिससे वह सुरक्षित सेनापति और सम्राट् दोनों बचे रहते हैं, जिससे सूर्य-बिजली दोनों गुप्त रहते हैं उस त्रिषन्धि(३ विद्युत्-अग्नि-सूर्य-सन्धि-निर्मित)को विद्वान् ओज-बल के लिए स्वीकार करें।११

८४-८५ विजिगीषु सैनिक इस बलिदान से सब लोकों को जीतते हैं । अथर्ववेदी वैज्ञानिक जिस असुर-नाशक वधकारी शस्त्र वज्र (तोप और वारुणास्त्र) को सींचता (बनाता) है; उससे मैं उस सेना का नाश करूँ, हे बड़े सेनापति ! मैं ओज से अमित्रों को मारूँ । १२-१३

३२८६ वे सब विद्वान् (और विजयेच्छु सैनिक अपना स्थान छोड़ कर युद्ध के लिए आयें, वे राष्ट्र-रक्षा-यज्ञ में वषट् (स्वाहा) कहकर दी गयी आहुति को खाते हैं । [बैठकर किये हवन में—स्वाहा, और खड़े होकर किये गये यज्ञ में वषट् कहकर आहुति दी जाती है । युद्ध खड़े होकर ही होता है ।] हे सैनिको ! इस आहुति का सेवन करो । इधर से जीतो, उधर (शत्रु की भूमि) की ओर से नहीं । १४

३२८७ सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।
सन्धां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥ १५

८८ वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु । इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् । आदित्य एषामस्त्रं विनाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥ १६

८९ यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणङ्कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसङ्कृधि ॥ १७

९० क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् । त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान्प्रपद्यस्व ॥ १८

९१ त्रिषन्धे तमसा त्वममित्रान्परिवारय । पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १९

९२ शितिपदी संपतत्वमित्राणामम्ूः सिचः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥ २०

९३. मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् । अनया जहि सेनया ॥ २१

९४ यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥ २२

९५ ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वांस्तां अर्बुदे हतां छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥ २३

९६ ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २४

९७ सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् । विविद्धा ककजाकृता ॥ २५

९८ मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥ २६

२३९९ यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ २७

सूक्त १०; काण्ड ११ पूर्ण हुआ ।

३२८७ सब विजयेच्छु आयेँ; त्रिषन्धि को आहुति प्यारी है, इस बड़ी सन्धि की रक्षा करो जिससे असुर सामने जीते जाते हैं। १५

८८ वायव्यास्त्र, वायु-सेनापति शत्रुओं के क्षेप्यास्त्रों का अग्र-भाग कुण्ठित करे, विद्युदस्त्र-सम्राट् इनकी बाहें काट दे कि क्षेप्यास्त्र न फेंक सकें, सूर्यास्त्र-अर्बुदि इनका अस्त्र नष्ट करे, चन्द्रमा-अस्त्र, शान्त सेनापति हम तक न पहुंचे, शत्रु को पथ-भ्रष्ट करे; घर वापस न गये का पथ खोल दे। १६

८९ [पहले ५-८-६ में आचुका है।] (हे अर्बुदि) यदि शत्रु देव-पुरों में घुस आयेँ, अन्न-धन को कवच बनायेँ, शरीर-रक्षा और मद्य-पान करके हम तक पहुंचेँ तो वह सब विफल कर। १७

९० हे त्रिषन्धि! तू मांस-भक्षी पशु, आग्नेयास्त्र के पीछे रहकर, मारक शस्त्र से सामने खड़े का पीछा करता हुआ सेना के साथ आगे बढ़, अमित्रों तक पहुँच और जीत। १८

९१ हे त्रिषन्धि! तू तामस नामक अस्त्र से शत्रु घेर, दही-घी की आहुति से धकेले जीवाणुओं के समान महान् पराक्रम से पराजित इनमें का कोई न छूटे। १९

९२ अमित्रों की इन दूरस्थ पंक्तियों पर शतघ्नी तोप, बिजली गिरे। हे न्यर्बुदि! अमित्रों की वे सेनाएँ आज ही बेहोश हो जाएँ। २०

९३ हे न्यर्बुदि! शत्रु बेहोश हैं, इनके बड़ों-बड़ों को मार। इस सेना से मार। २१

९४ युद्ध में वाहन पर जो अमित्र लौह-कवच वाला, या कवच-रहित है वह धनुष की डोरियों और कवचों के पाशों द्वारा मारा गया युद्ध में सो जाये। २२

९५ हे अर्बुदि! जो अमित्र चर्म-कवची या अकवची हों, उन सब मरे हुओं को भूमि पर कुत्ते खाएँ। २३

९६ जो रथी-अरथी-अश्वारोही-पैदल हों उन सब मरे अमित्रों को गिद्ध-बाज-पक्षी खाएँ। २४

९७ शस्त्रों के युद्ध में हजारों मुर्दों वाली अमित्र-सेना बींधी-पीड़ित, उलझे बालों की सी आकृति वाली होकर सो (मर) जाए। २५

९८ जो अमित्र हमारी इस सामने जाती आहूति (सेना) से युद्ध करना चाहता है तो बाणों द्वारा मर्म-विद्ध, दुःखी-रोते कुचले-सोते [मरे] उस को पक्षी खायेँ। २६

३२९९ जिस का देव [विद्वान्-गतिशील-विजिगीषु सैनिक] अनुष्ठान करते हैं, जिसकी विफलता नहीं है, उस [आहुति-बलिदान] द्वारा वृत्र-हन्ता [दुष्ट-नाशक] इन्द्र [सम्राट] त्रिषन्धि वज्र [तोप, अग्नि-सूर्य-बिजली के मेल द्वारा बने शस्त्रास्त्र, स्थल-जल-वायु-सेना और सर्वोच्च सेनापति] के द्वारा शत्रु-नाश करे।। २७

❀ यह सूक्त १०, अनुवाक ५, प्रपाठक २५, और काण्ड ११ पूर्ण हुआ। ❀

ओ३म्

अथर्ववेद काण्ड १२, सूची

प्र० अनुवाक सूक्त मन्त्र ऋषि देवता विषय छन्द महर्षि दयानन्द-कथित विषय

२६ १ १ ६३ अथर्वा पृथिवी त्रि ज. पं अ श महाब् अतिज गा आदि सत्यादिभिः पृथिवी-धारणादि पृथिवी-लक्षणादि, प्रार्थनादि, मेधाप्राप्त्यर्थ विश्वकर्मेश्वरादि पदार्थ विद्या

२ २ ५५ भृगु अग्नि, यक्ष्मा-निवारण यक्ष्मादि रोग निवारणादि अग्न्यादि पदार्थ विद्या-मृत्यु-निवारणायु प्राप्त्यादि विधवा-विधानादि अग्नीश्वर प्रार्थनादि पदार्थ विद्या

२७ ३ ३ ६० यम स्वर्गौदन,अग्नि पुरुषार्थादि,शिल्पाद्यनेकसोमाद्यनेकौषधादि पदार्थविद्या

४ ४ ५३ कश्यप वशा वशा शब्दार्थादि पदार्थ विद्या ।

५ ५ ७३ अथर्वाचार्य ब्रह्मगवी धर्मोपदेशादि ब्रह्मविद्याद्यग्न्यादि दुष्टताडनादि प०

योग २ ५ ५ ३०४ ५ ऋषि ६ देवता प. वागत ३२९९ लब मन्त्र-योग १६०३

ओ३म्

अथर्ववेद काण्ड १२

प्रपाठक २६, अनुवाक १ सूक्त १ (पृथिवी) ६३ मन्त्र

विषय— सत्यादिभिः पृथिवी-धारणादि, पृथिवी-लक्षणादि, प्रार्थनादि, मेधा-प्राप्त्यर्थ विश्वकर्मेश्वरादि-प्रार्थना पदार्थविद्या -महर्षिः स्वामी दयानन्द सरस्वती

३३०० सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १

३३०१ असंबाधं वध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ २

२ । यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ ३

३ यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु । ४

३३०० सत्य-बृहत्(वृद्धि)-ऋत (न्याय-युक्त व्यवहार, नियम)-उग्रता[क्षात्र तेज]-दीक्षा[दृढ़ संकल्प]-तप-ब्रह्म [ईश्वर-वेद-अन्न]-यज्ञ [श्रेष्ठतम कर्म, ५ महायज्ञ] ये ८ गुण-कर्म पृथ्वी को धारण करते हैं । वह हमारे भूत-भविष्य की पालक पृथ्वी हमारे लिए बड़ा स्थान करे [दे] । १

३०१ मानवों की अल्प भी असम्बद्धता को हटानेवाली जिसके उच्च-नीच-सम स्थल हैं जो नाना-शक्ति-युक्त औषध[दवाई-अन्न] धारण करती है वह पृथ्वी हमें समृद्ध-सफल करे । २

२ जिसमें समुद्र—नदी-जलाशय हैं, कृषक अन्न उत्पन्न करते हैं, प्राण वाला-सचेष्ट संसार तृप्त होता है, वह भूमि हमें सब खाद्य-पेय दे । ३

३ जो पृथ्वी की ४ दिशाएँ हैं, जहाँ मनुष्य खेती कर अन्न उत्पन्न करते हैं, जो प्राणी-संसार को पालती है वह भूमि हमें गौ-अन्न से समृद्ध करें । ४

४ यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ ५

५ विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥ ६

६ यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७

७ यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः । यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः । सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८

८ यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९

९ यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे । इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः । सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १०

१० गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु । बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् । अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यतिष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११

११ यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः । तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु । १२

१२ यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः । यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् । सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना ॥ १३

१३ यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४

१४ त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः । तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५

१५ ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६

१६ विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७

१७ महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे । महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् । सा नो भूमे प्ररोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८

१८ अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९

३३०४ जिनमें श्रेष्ठ नेता विशेष कार्य करते हैं, विद्वान्-नैनिक दुष्टों का दमन करते हैं; जो गौ-अश्व-पक्षियों का विशेष स्थान है वह पृथिवी हमें ऐश्वर्य-तेज दे। ५

५ विश्व-पोषक, धन-धारक, सबका आधार, अन्दर सोना रखने वाली; जगत् को बनाने वाली नर-हितकारी अग्नि धारण करती हुई, इन्द्र (सूर्य-बिजली-राजा-जीव) को श्रेष्ठ मानने वाली भूमि हमें धन-बल दे। ६

६ जिस भूमि-पृथिवी की निद्रा-आलस्य-रहित विद्वान सदा रक्षा करते हैं वह हमें मधुर-प्यारी वस्तुएँ दे और तेज से पुष्ट करे। ७

७ जो पहले जल-समान द्रव-सलिल-रूप थी, जिसे मनन-शील प्रज्ञाओं से अनुकूल बनाते हैं, जिस पृथिवी (के मनुष्यों) का अमर-हृदय परम-रक्षक परमात्मा में सत्य से ढँका है वह भूमि हमें उत्तम राष्ट्र में तेज-बल धारण कराये। ८

८ जिसमें आपः [जल-आप्त] सर्वत्र गमन करते, समान रूप से वर्ष भर दिन-रात प्रमाद-रहित बहते-चलते हैं वह बहुत धारा वाली भूमि दूध आदि दुहाए [दे] और वर्च से सींचे। ९

९ जिसे दो अश्वी [दिन-रात, -सूर्य चन्द्र, अध्यापक-उपदेशक, राजा-सेनापति, नाप-अधिकारी] नापते हैं, जिसमें विष्णु [सूर्य] करण फेंकता है, कर्मों का स्वामी इन्द्र [सम्राट्-जीवात्मा] जिसे अपने हेतु शत्रु-रहित करते हैं वह भूमि-माता मुझ पुत्र के लिए दूध आदि दे। १०

१० हे पृथ्वी! तेरे बरफ-ढँके पहाड़-पहाड़ियाँ-बन सुखद हों। भूरी-पोषक; काली-कृषि-योग्य आकर्षक, उपजाऊ-लाल; इन्द्र [परमात्मा-सम्राट्-सूर्य-वायु-बिजुली-मेघ] से गुप्त, दृढ़, उत्पादक पृथ्वी का मैं अपराजित-अहिंसित-अक्षत होकर अधिष्ठाता रहूं। ११

११ हे पृथिवी! जो तेरा मध्य और अन्दर केन्द्रीय भाग है, जो अन्नादि तुझ से उत्पन्न होते हैं, उनमें हमें स्थिर कर, हमें पवित्र कर, भूमि माता है, मैं पृथिवी का पुत्र हूं, मेघ पिता है, वह हमें पाले। १२

१२ विश्वकर्मा कारीगर जिस भूमि पर वेदि बनाते, जिस पर यज्ञ फैलाते हैं, जिस पृथिवी पर आहुति से पहले ऊँचे-चमकीले यूप-स्तम्भ निर्मित होते हैं वह बढ़ती हुई हमें बढ़ाये। १३

१३ हे पृथिवी, पहले से तय्यार; शीघ्रता-छेदन वाली हमारी भूमि! जो हमसे द्वेष करे, हमपर आक्रमण करे, जो मनसे, वधकारी शस्त्र से हमें दास बनाये उसे वशमें कर, नष्ट कर। १४

१४ हे पृथिवी! तुझ से उत्पन्न मनुष्य तुझ पर विचरते हैं, तू दुपायों-चौपायों को धारण करती है, तेरे ये विस्तृत ५ मानव (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-पापी) हैं जिनके लिए उदय होता हुआ सूर्य किरणों से अमर ज्योति को फैलाता है। १५

१५ हे पृथिवी! वे सब हमारी प्रजाएँ मिलकर तुझे दुहें, तू मेरे लिए वाणी की मधुरता दे। १६

१६ सब धनोत्पादक, औषधियों की माता, दृढ़, धर्म से धारित, कल्याण-कारिणी; सुखद, विस्तृत भूमि की हम सब दिन सेवा करें। १७

१७ हे भूमि! तेरा स्थान बड़ा, तू बड़ी, तेरे वेग-कम्पन-संचलन महान् हैं; महान् इन्द्र (परमात्मा सूर्य-वायु-बिजली-मेघ-राजा) प्रमाद-रहित होकर तेरी रक्षा करता है, वह तू हमें स्वर्ण-समान रूप में प्रकाशित कर, कोई हम से द्वेष न करे। १८

३३१८ अग्नि भूमि-औषधियों में है; अग्नि को जल धारण करते हैं, अग्नि पत्थरों-मेघों में; अग्नि पुरुषों में अन्दर है, अग्नियाँ गौओं-अश्वों में हैं। १९

३३१६. अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २०

२० अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥ २१

२१ भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरङ्कृतम् । भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः । सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२

२२ यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३

२३ यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४

२४ यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः । यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु । कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा० [पूर्ववत्] ॥ २५

२५ शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६

२६ यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ २७

२७ उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ २८

२८ विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥ २९

२९ शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत पुनामि ॥ ३०

३० यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥ ३१

३१ मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२

३३३२ यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३

वेद का अनर्थ (२७)

वेद में मुद्गल-द्रुघण की कहानी नहीं

वेद-प्रदीप अगस्त ९१ के अंक में ऋग्वेद १०-१०२-९ से मुद्गल की कहानी बतायी कि उसने गाड़ी में द्रुघण (ठूँठ) को जोतकर चोर पकड़े। पर यह वेद का अनर्थ है क्योंकि सृष्टि की आदि में मिले ईश्वरीय ज्ञान में कोई कहानी हो नहीं सकती। मन्त्र यह है—

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम्।
येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु॥

१- मुद्गल आनन्दप्रद वृषभ सुख-वर्धक परमात्मा द्रुघण (शक्ति से दुष्ट-हन्ता) है।

२- राजा यान्त्रिक बैल के साथ लकड़ी के बने घन शस्त्र को जोड़ कर युद्ध को जीतता है।

ये दो भाव मन्त्र में हैं। इसमें आये मुद्गल शब्द के द्रष्टा होने से यह नाम मनुष्य का भी बोला जाने लगा। उसी का वर्णन वेद में मान लेना वेद का अनर्थ है। —वी० सरस्वती

हमारे साथी पत्रों के विचार— 'अपि वेदे नियोगः' ? और 'सृष्टि-संवत्-विचार'

गाण्डीवम् के ३-६-९१ के अंक में डा० रूपनारायण पाण्डेय, रा० इ० का० रामनगर वाराणसी के अपि वेदे नियोगः ? लेख में श्री करपात्री के वेदार्थ पारिजात के आधार पर महर्षि को छली आदि बताते हुए यह लिखकर कि ऋग्वेद म० १० के ४०-१; १८-८,८५-४०,४५; अथर्व १८-३-१ में नियोग नहीं है, अपनी अज्ञता का ही परिचय दिया है। करपात्री-खण्डन हमने विस्तार से सप्रमाण अपने 'वेदार्थपारिजातखण्डनम्' [मूल्य २०)] में किया है और वहीं वेद में नियोग को भी सिद्ध किया है। श्री पाण्डेय तथा पाठकगण वहीं पृ० ११५ पर देखें। —वी० सरस्वती

५-८-९१ के आर्यराष्ट्र में पृ० ४ पर लेखक-नाम-रहित 'सभी मात खागये, सृष्टि संवत् विचार छपा है, इसमें वही पुरानी बातें दुहरायी गयीं हैं जिनका उत्तर हम और दयानन्द-सन्देश अनेक बार दे चुके और देहली में शास्त्रार्थ भी हो चुका। सार्व० धर्मार्य सभा में भी यह २ वर्षों से प्रस्तुत है परन्तु धर्माधिकारी बैठक ही नहीं बुलाते। अब न्याय सभा न्याय करे क्योंकि सभी में तो आर्य-राष्ट्र का लेखक भी आगया, वह भी मात खा गया। मुख्य बात यह है कि हम महर्षि-१४ के पोषक हैं और वे महर्षि के खण्डक। अतः उन्हें पुनः शास्त्रार्थ का आह्वान है। —वी० सरस्वती

समाचार

१५ अगस्त स्वतन्त्रता-दिवस, श्रावणी वेद-सप्ताह, कृष्णाष्टमी के पर्व सर्वत्र मनाये गये।

आर्यसमाज बिहारीपुर बरेली में वेद-सप्ताह में वेद-कथा आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती ने की।

सार्वदेशिक आ० प्र० सभा देहली का वृहदधिवेशन २६-२७ अक्टूबर १९९१ को होगा।

सभा-प्रधान का विरोध करने के कारण स्वामी जगदीश्वरानन्द और प्रो० रत्नसिंह के लिए सा० अ० ४-८-९१ ने आर्यसमाज की वेदी अनिश्चित काल के लिए बन्द की।

१-८-९१ के स्व०स्वा०सम्पूर्णानन्द-जन्म-दिवस-समारोह देहली में लोकसभाध्यक्ष श्री शिवराज पाटिल ने वेदाचार्य डा० रामनाथ वेदालंकार का सामवेद-भाष्य लोकार्पण करते हुए कहा कि आधुनिक विज्ञान के तथ्य वेद में पूर्व-वर्णित हैं; वेद-ज्ञान विश्व के लिए आवश्यक है। श्री वेदालंकार को २५०००) की थैली भेंट की गयी। बधाई!

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष २-९-९१ को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर ही अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य, विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

शतपथ, निरुक्त, अष्टाध्यायी, वेदार्थपारिजात-खण्डन

अथर्ववेद, सामवेद के ब्राह्मण

अनुवादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, एम.ए. काव्यतीर्थ

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), देवताध्याय १०), शतपथ काण्ड १-२, २०), वेदार्थपारिजात खण्डन २०) साम वंशब्राह्मण १०), अष्टाध्यायी २०), शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०) अथर्ववेद १००) मगाइये —वीरेन्द्र सरस्वती, अध्यक्ष, ओ३म्मित्र शास्त्री मन्त्री, विश्ववेदपरिषद्. सी ८१७ महानगर, लखनऊ

वैदिक दैनन्दिनी आश्विन २०४८ विक्रम

कृष्ण १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५

दिन मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं

नक्षत्र उ भा रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु श्ले म पू फा उ फा ह चि स्वा वि [illegible] ज्ये [illegible] पूषा उषा श्र ध श पू भा उ

ता सि २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० अ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ [illegible] १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२

प्रेषक— मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ उ० प्र०, भारत, पिन २२६००

सेवा में क्रमांक
श्री पुस्तकालय
स्थान गुरुकुल
पत्रालय
पिन
जनपद
देश

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

वेद-ज्योति

सामवेद अथर्ववेद

अथर्व वेद खण्ड २३

वर्ष १५ अंक १० आश्विन २०४८ अक्तूबर १९९१

विश्व वेदपरिषद् का उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार
अध्यक्ष श्री सत्यदेव भारद्वाज वेदालङ्कार, बाक्स ४१६२७, नैरोबी, पूर्व अफ्रीका
संयुक्त मन्त्री श्री वेदप्रिय आर्य, ८६ विवेक खण्ड १ गोमतीनगर, लखनऊ १०, दूरभाष ३९१४१६
वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९२, दयानन्दाब्द १६७
शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर
सम्पादक — वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्
सहायक— बिमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१
दिल्लीकार्यालय श्री सञ्जयकुमार, मन्त्री, बी६ हिल व्यू बसन्तविहार नयी दिल्ली ५७, दूरभाष ६०१४५२

वेद का पृथिवी सूक्त
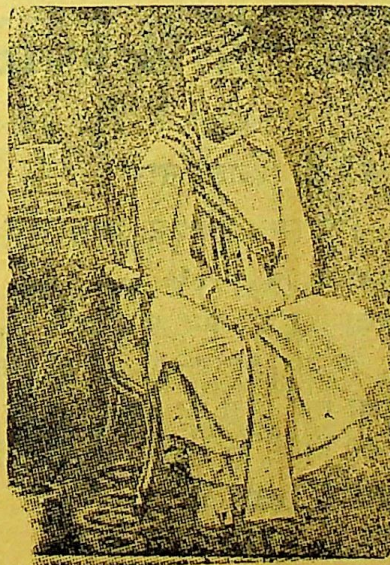
वेदों के अद्वितीय विद्वान्
महर्षि दयानन्द सरस्वती

पतञ्जलि-कृतं योग दर्शन-शास्त्रम्

(गताङ्क से आगे)

सूत्र ३३. १– इस संसार में जितने भी मनुष्य आदि प्राणी सुखी हैं उन सब के साथ मित्रता करना,
२– दुखियों पर कृपा-दृष्टि रखनी,
३– पुण्यात्माओं के साथ प्रसन्नता,
४– पापियों के साथ उपेक्षा अर्थात् न उनके साथ प्रीति रखना और न वैर ही करना।

इस प्रकार के वर्तमान से उपासक के आत्मा में सत्य धर्म का प्रकाश, और उसका मन स्थिरता को पा लेता है। (ऋ० भा० भू०)

३४. प्रच्छर्दन-विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।

श्वास को बाहर वेग से फेंकने का नाम प्रच्छर्दन है और उसे बाहर रोक रखने का नाम विधारण है। प्राण मन का निकेतन है। प्राण को वश में करने से मन भी सुगमता से वश में हो जाता है।

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न-जल सब बाहर निकल जाता है वैसे प्राण को बल से बाहर फेंक कर बाहर ही यथाशक्ति रोक दे। जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींचकर वायु को बाहर ही फेंक दे। जब तक मूलेन्द्रिय को खींच रक्खे तब तक प्राण बाहर रहते हैं। इससे प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तो धीरे-धीरे वायु भीतर को लेकर फिर भी वैसा करता जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो; और मन में ओ३म् का जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता एवं स्थिरता होता है।

एक 'बाह्य-विषय' अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा 'आभ्यन्तर' अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोके। तीसरा 'स्तम्भवृत्ति' अर्थात् एक ही बार प्राण जहाँ का तहाँ यथाशक्ति रोक देना। चौथा 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध उसे न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर ले। जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। स० प्र०

सत्यार्थप्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमांक १२, ऋषि आजीगर्ति शुनःशेप कृत्रिम वैश्वामित्र देवरात, देवता प्रजापति, छन्द त्रिष्टुप्, स्वर धैवत

कस्य नूनङ्कतमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरञ्च दृशेयम् मातरञ्च ॥ [ऋ० १-२४-१]

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः । [सांख्य सूत्र १-१६०]

प्रश्नोत्तर— हम लोग 'क' (किस, प्रजापति) का नाम पवित्र जानें ? क (कौन, प्रजापति) नाश-रहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाश-स्वरूप है जो हमको मुक्ति का सुख भुगाकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है।

जैसे इस समय बन्ध मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं। अत्यन्त विच्छेद बन्ध मुक्ति का कभी नहीं होता। किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती। समुल्लास ९

वेद में सब सत्य विद्या (विज्ञान)

ऋत-सत्य, प्रलय-रात्रि, अर्णव-समुद्र (नेबुला), संवत्सर,सूर्य-चन्द्र, दिन-रात क्रमशः उत्पन्न हुए । 'ऋत' ऋ० में १२०, य० में १४, साम में ४३, अथर्व में ३२ = २०९ बार वेदों में आया है। महर्षि दयानन्द ने यास्कानुसार इसके १७ अर्थ किए हैं। जिनमें मुख्य प्रकृति-नियम इलेक्ट्रोन है।

नासदीय सूक्त में स्वधा -प्रयति-रेतोधाः से प्रकृति-ईश्वर-जीवों का निर्देश कर के बताया है कि परमाणु से छोटे-बड़े पिण्ड बनकर परस्पर का निर्माण करते हैं। छोटों के मिलने से बड़ तथा बड़ों से निकल कर छोटे गृह-नक्षत्रादि बन जाते हैं। इनमें सृष्टि-विज्ञान को देखकर वैज्ञानिक चकित हैं कि ऐसा वर्णन किसने कैसे किया जिसमें तम-तुच्छ-रजित-तुच्छ्य-अम्भः-आभु बताये गये हैं !

पुरुष-सूक्त में ईश्वर से विराट्-सूर्य-पृथिवी-पशु-पक्षी-मनुष्यादि का पैदा होना बताया गया है।

हिरण्यगर्भ का दैविक अर्थ लोक-उत्पादक भण्डार (नेबुला) है-

१३४ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥[ऋ १०.१२१.१]

दूसरी यजुर्वेद-विद्या [कर्मकाण्ड]

(१) यज्ञ-विद्या (क्रमागत संख्या ११)

यजुर्वेद के पहले ही मन्त्र (संख्या ३) में यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म बताया गया है जिसमें लघुतम अग्निहोत्र से लेकर महत्तम अश्वमेध पर्यन्त सम्मिलित हैं, जिसके ऋत्विज ऋ१०-७१-११ में बताये हैं-

१३५ ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।

ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥

यज्ञ में ऋग्वेदी होता, सामवेदी उद्गाता, चतुर्वेदी या अथर्ववेदी ब्रह्मा तथा यजुर्वेदी अध्वर्यु है।

१३६-१३७ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास् तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥[१०-९०-१६]

यजुर्वेद ३१-१६

विद्वान् ज्ञान-यज्ञ से यज्ञ (पूज्य ईश्वर) का यजन करते हैं, वे मुख्य धर्म हैं, वे ही महिमा-शाली उस मोक्ष-आनन्द को पाते हैं जिसमें उनके पूर्वज श्रेष्ठ साधक विद्वान् जाया करते हैं। सृष्टि-यज्ञ, राष्ट्र-यज्ञ, ५ (ब्रह्म-देव-पितृ-भूत-अतिथि) महा यज्ञ मुख्य धर्म हैं।

यजुर्वेद अध्याय १८ में २७ बार प्रयुक्त जिस उपदेश द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में कर्तव्य कार्य वर्णित हैं वह १३८ यज्ञेन कल्पन्ताम् [यज्ञ से सिद्ध हों] है। इसी प्रकार १३९ 'यज्ञो यजुर्भिः' [य२०-१२]है। अर्थात् सभी प्रकार का यज्ञ यजुर्वेद के विधानों से किया जाय।

जिस प्रसिद्ध वैदिकवृषभ-पहेली का उत्तर पतञ्जलि ने शब्द माना है किन्तु यास्क ने यज्ञ, वह यह है-

१४०-१४१. चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥[४.५८.३, य १७.९१]

सुख-वर्षक बैल(यज्ञ) शब्द करता है, यह महान् देव मनुष्यों में प्रविष्ट है, इसके ४ सींग(४ वेद), ३ पद [illegible], ३ प्रातः-मध्य-सायं सवन, २ सिर प्रायणीय-उदयनीय, ७ हाथ ७ छन्द (गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप्-बृहती-पंक्ति-त्रिष्टुप्-जगती), ३ प्रकार(मन्त्र-ब्राह्मण-कल्प) से बँधा है। वेद-काव्य की इस दुरूह पहेलिका में श्लेष-रूपक-अतिशयोक्ति अलंकार हैं। इनका दूसरा शब्द-परक अर्थ आगे शब्द-विद्या में दिया जायगा।

(२) राजनीति विद्या [क्रमागत १२ वीं]

१४२ इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निःशशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥[१.८०]

वेदों में स्वराज्य का उपदेश सब से पहले है। ऋग्वेद १-८० में अर्चन्ननु स्वराज्यम् १६ बार आया है। इस प्रकार हर्ष शासन में ब्रह्मा चतुर्वेदी प्रधानमन्त्री वृद्धि करे। हे बली सेनापति! तू ओज से स्वराज्य का आदर-पूजा-सत्कार करता हुआ पृथिवी से साँप (दुष्ट) को दूर कर।

१४३. नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं सम्बभूव स ह तत्स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम् ।(अ१०.७.३१)

उषा-सूर्योदय से पहले ॐ के साथ स्वराज्य का नाम लेकर जो गति-क्षेपण-कर्ता पहले ही आक्रमण करता है वही उस स्वराज्य तक पहुँचता है जिससे बढ़कर कुछ वस्तु नहीं है।

१४४ आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः । व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये॥ ६६.६

हे मित्र दर्शनीय विद्वानो! तुम्हारे बन्धु और हम विस्तृत, बहुतों से रक्ष्य स्वराज्य में यत्न करें।

१४५-१४६ स विशोऽनुव्यचलत् । तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ॥अ१५.९.१-२

वह व्रती राजा प्रजा के अनुकूल चले। और सभा-समिति-सेना-सुरा(कोष-जल) तदनुकूल चलें। सच्चे प्रजातन्त्र का यही रूप है। सभ्य सभासद् परस्पर और राजा-सभा की रक्षा किया करें॥

१४७ अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम् । अन्नादायान्नपतये नमो रुद्राय ।
सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ [अथर्व० १९-५५-५]

मैं जले अन्न (भूतकाल) के पीछे न होऊँ; अन्नाद-अन्नपति-रुद्र-अग्नि के लिए नमः। सभा के योग्य तू सभा को और जो सभ्य सभासद् हैं उनकी रक्षा कर।

१४८ नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृंहतीभ्यश्च वो नमः॥ य१६-२४

सभा-सभापति-अश्व-अश्वपति-सब ओर से विशेषता से शत्रु-नाशक सतर्क हन्त्री सेनाओं के लिए नमः (आदर-अन्न दें)।

संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः

७. आर्यावर्त्त चक्रवर्त्ति-राज प्रकरणम् ।

अस्मिन्नार्यावर्त्ते पुरा के के चक्रवर्त्ति-राजा अभूवन् ?	इस आर्यावर्त देश में पहिले कौन कौन चक्रवर्ती राजा हुए हैं ?
स्वायम्भुवाद्या युधिष्ठिर पर्यन्ताः ।	स्वायंभुव से लेकर युधिष्ठिर पर्यन्त ।
चक्रवर्ति शब्दस्य कः पदार्थः ?	चक्रवर्ती शब्द का क्या अर्थ है ?
ये एकस्मिन् भूगोले स्वकीयाम् आज्ञां प्रवर्त्तयितुं समर्थाः ।	जो एक भूगोल भर में अपनी आज्ञा को चलाने में समर्थ हों ।
ते कीदृशीमाज्ञां प्राचीचरन् ?	वे कैसी आज्ञा का प्रचार करते थे ?
यया धार्मिकाणां पालनं दुष्टानां च ताडनं भवेत् ।	जिससे धर्मियों का पालन और दुष्टों का ताड़न होवे ।

८. राज-प्रजा-लक्षण-राजनीत्यनीति-प्रकरणम् ॥

राजा को भवितुं शक्नोति ?	राजा कौन हो सकता है ?
यो धार्मिकाणां सभाया अधिपतित्वे योग्यो भवेत् ।	जो धार्मिकों की सभा के सभापति होने योग्य होवे ।
यः प्रजां पीडयित्वा स्वार्थं साधयेत् स राजा भवितुमर्होऽस्ति न वा ?	जो प्रजा को दुःख देकर स्वार्थ साधे वह राजा हो सकता है वा नहीं ?
नहि, नहि, नहि, स तु दस्युः खलु ।	नहीं, नहीं, नहीं, वह तो डाकू है ।
या राजद्रोहिणी सा तु न प्रजा । किन्तु स्तेन-तुल्या मन्तव्या ।	जो राजा का विरोध करे वह प्रजा नहीं किन्तु चोर के समान माननी चाहिए ।
कथंभूताः जनाः प्रजा भवितुमर्हाः ?	कैसे मनुष्य प्रजा होने को योग्य हैं ?
ये धार्मिकाः सततं राज-प्रिय-कारिणश्च । राज-पुरुषैरप्येवमेव प्रजा-प्रियकारिभिः सदा भवितव्यम् ।	जो धर्मात्मा और निरन्तर राजप्रियकारी हों । राजसम्बन्धी पुरुषों को भी ऐसे ही प्रजा का प्रियकारी सदा होना चाहिए ।

शब्द-सूची— पहले के १७२ में नये १५ जोड़कर अब तक सब संस्कृत शब्द १८७ हुए ।

१३-१४ वां शब्द-रूप यत् और किम्

इनका नपुंसक लिंग में १-२ विभक्तियों में किम् के कानि, यत् ये यानि रूप होंगे, शेष विभक्तियों में पुल्लिङ्ग के समान होंगे । पुल्लिङ्ग किम् और यत् के रूप दिये जाते हैं—

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	स्त्रीलिङ्ग एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	अर्थ
१	यः	यौ	ये	या	ये	याः	जो, जिसने
२	यम्	यौ	यान्	याम्	ये	याः	जिस को
३	येन	याभ्याम्	यैः	यया	याभ्याम्	याभिः	जिस से; के द्वारा
४	यस्मै	,,	येभ्यः	यस्यै	,,	याभ्यः	जिस को, के लिए
५	यस्मात्	,,	,,	यस्याः	,,	,,	जिस से
६	यस्य	ययोः	येषाम्	,,	ययोः	यासाम्	जिस का, के, की
७	यस्मिन्	,,	येषु	यस्याम्	,,	यासु	जिस में, पर

सम्बोधन नहीं होता।

इसी प्रकार किम् के रूप (य के स्थान पर क करके) बनाओ।

१५-१६. नकारान्त पुल्लिंग राजन् और भगवान् शब्द

विभक्ति	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
१	राजा	राजानौ	राजानः	भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः
२	राजानम्	राजानौ	राज्ञः	भगवन्तम्	,,	भगवतः
३	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः
४	राज्ञे	,,	राजभ्यः	भगवते	,,	भगवद्भ्यः
५	राज्ञः	,,	,,	भगवतः	,,	,,
६	,,	राज्ञोः	राज्ञाम्	,,	भगवतोः	भगवताम्
७	राजनि, राज्ञि	,,	राजसु	भगवति	,,	भगवत्सु
सम्बोधन	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः	हे भगवन्	हे भगवन्तौ	हे भगवन्तः

इसी प्रकार आत्मन्, युवन् आदि के रूप चलेंगे।

६ वां क्रिया-रूप— भू धातु के भूतकाल में लुङ् लकार के रूप

आरम्भ में अ लगेगा और धातु के अन्त में प्रत्यय, इन्हें ध्यान से देखो—

पुरुष	प्रत्यय एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	रूप एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
प्रथम (थर्ड परसन)	त्	ताम्	अन्	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्	वह हुआ
मध्यम (सैकण्ड)	:	तम्	त	अभूः	अभूतम्	अभूत	तू हुआ
उत्तम (फर्स्ट)	अम्	व	म	अभूवम्	अभूव	अभूम	मैं हुआ

५ वाँ समास कर्मधारय (विशेषणं विशेष्येण बहुलम्)

जैसे महापुरुष-परमात्मा-परमेश्वर-महाराज-चक्रवर्तिराज-कृष्णसर्प-पीताम्बर (पीला कपड़ा)। राजा के साथ समास होने पर राजन् को राज हो जाता है जैसे महाराजः।

अनुवाद- १. पहले भारत में कौन कौन पण्डित हुए। २ विद्वान् वही हो सकता है जो सदाचारी हो। ३ जो प्रजा को पीडित करता है वह राजा होने के योग्य नहीं है।

रचना, रिक्त स्थान भरो- १- कः विद्वान् भवितु ? २- राजा कः शक्नोति ? ३- पण्डितः भवितुं । ४- आर्यावर्त्त कीदृशा अभवन् ?

शतपथ ब्राह्मण कांड ६, अध्याय ३ (३८) ब्राह्मण ३

अब इसे बढ़ावा देता है, जैसे ऐसा कहने वाले को देवों ने वीर्य से बढ़ाया वैसे ही यह ऐसा कहने वाले इसे वीर्य से बढ़ाता है–

यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षं समुद्रो योनिः ।
विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः ॥

यह कहा कि तू ऐसा है; तू ऐसा है। तू विवेक से प्रसिद्ध होकर पापी शत्रुओं का सामना कर। यजु० ११.२०
उसे छूता नहीं क्योंकि अश्व वज्र है, कहीं यह भी न मार दे। २

अब इसे आगे बढ़ाता है– उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वयं स्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ (य. ११-२१)

देव बोले थे– क्यों आगे बढ़ायें ? उत्तर था – महा सौभाग्य के लिए। तदनुसार इसे उन्होंने जैसे आगे बढ़ाया, अतः यह अश्व पशुओं में सर्वाधिक सुभग है। जहाँ ठहरा वहाँ से बढ़। तू धन-दाता हम इस पृथिवी के पास से आग खोदते हुए सुमति में रहें। १३

अब अभिमन्त्रण करता है और देवों के समान यह भी पूज्य बनाता हुआ स्तुति करता है–

उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकं सुकृतं पृथिव्याम् ।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निं स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥ य ११-२२

यह धन-दाता बली अर्वा आगे बढ़ा; पृथिवी पर सुकृत सुलोक बनाया; तब हम सब ओर से सुप्रतीक आग को उत्तम दुःख-रहित स्वर्गलोक पर चढ़ते हुए खोदें।

यह कहकर उसे दक्षिण की ओर ले जाता है जहाँ अन्य दो पशु होते हैं। वे दक्षिण में पूर्वमुख खड़े होते हैं। दक्षिण का प्रयोजन पहले वाला ही यहाँ भी है। १४

अब बैठ कर मिट्टी को आहुति देता है। देव यह बोले थे– चेतो और चिति को चाहो; उन्होंने चेतते हुए यह आहुति देखी और दी; देकर ये लोक-उखा देखे। १५

वे बोले– चेतो-चिति चाहो, चेतातें हुए यह दूसरी आहुति देखी; दी, देकर ये विश्व-ज्योति देखी अग्नि-वायु-आदित्य देखे; वैसे ही यह यजमान ये २ आहुतियाँ देकर ये लोक-उखा देखता है, व उन विश्व-ज्योति देवों का अलग अलग हवन करता; उनके लोक-देवता अलग करता है। १६

अथवा ये २ आहुतियाँ देकर मिट्टी-जल ठीक कर आहुति देकर अलग अलग करता है। १७

घी-वज्र अभिगोप्ता को वज्र ही बनाता है, अथवा घी वीर्य है उसे ही वृषा-वृषा से स्वाहा-वृषा द्वारा सींचता है। १८

आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नैः रभसं दृशानम् ॥ यजु ११-२३

सब भुवन में निवासी तुझ वायु का मैं मन से घी द्वारा हवन करता हूं; तिरछे जीवन से विशाल, महान्, अन्न के साथ धूम से वेगवान्, प्रक्षेप्ता तुझ दीप्यमान अग्नि का धारण करता हूं। १९

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥ य ११.२४

सर्वतः प्रयत्न अग्नि का हवन करता हूं, अराक्षस मारने ते निश्चर कर, मनुष्य-लक्ष्मी-तुल्य में इच्छुकजन-स्वीकृत, अग्निवत् सहन-शक्ति के लिए शरीर से अङ्ग मोड़ता हुआ लेता हूं; यह शरीर से दाप्यमान नहीं होता। २०

२ मन्त्रों से आहुति देता है। २ पैर वाला यजमान अग्नि है। जितना वह, जितनी इनकी मात्रा, उतने से ही वाय बनाता इसे २ आग्नेया-त्रिष्टुप् अग्नि-इन्द्र वाली ऋचाओं से सींचता है। ये दोनों, केवल अग्नि सब देवता वाले हैं, उतने से ही सींचता है। २१ (कण्डिका ३६००)

अश्व के २ पैरों के निमित्त होमता है। अश्व आग है, अतः आहुतियाँ अग्नि की ही हुयीं। २२

अब उस पर लिखता है कि तू ऐसा है। २३

क्योंकि देव डर थे कि कहीं उन दुष्ट राक्षस मार न डालें अतः यह उपाय किया था, वैसे ही यह कुद्दाली-वज्र ने सब ओर तीन बार लिखता है जिसे रक्षक बनाता है- २४

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥

त्वमग्ने द्युभिस् त्वमाशुशुक्षणिस् त्वमद्भ्यस् त्वमश्मनस् परि ।

त्वं वनेभ्यस् त्वमोषधीभ्यस् त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ यजु ११.२५-२७

अन्नपति कवि अग्नि(गृहस्थ) दानी के लिए रत्न धारण कराता हुआ सर्वत्र हव्य पहुँचाता है।

हे बली अग्नि(सेनापति)! हम पालक-विप्र-रूपवान्-प्रतिदिन निन्दकों के नाशक तुझे धारण करें।

हे नरपति न्यायाधीश! तू गुणों से दुष्ट-नाशक, तू जल-मेघ-पाषाण-वन-ओषधियों से बढ़ कर नरों में पवित्र है। आग भी नाशक-प्रकाशक-नरपालक है और वन-पाषाण आदि से पैदा होती है।

इस प्रकार परि वाले तीन आग्नेयी मन्त्रों से स्तुति करके कवच बनाता है, परि के समान पुर (परकोटा) बनाकर त्रिपुरा दीप्त के अन्दर रहता है। लेखा पुर है। तीन मन्त्रों से पुरों की बड़ी से बड़ी लेखाएँ हो जाती हैं। २५

अब इसमें आग को खोदता है। देव डरे कि कहीं दुष्ट राक्षस न मारें अतः रक्षा के लिए इसी को आत्मा कर दिया कि वह अपनी रक्षा करेगी अतः वह सम-बिल हो; यह उसकी आत्मा होती है। या समबिल योनि है और यह वीर्य है जो कम-बढ़ न हो। यह समबिल चौकोर कुआँ है। चार ही दिशाएँ हैं; सभी दिशाओं से इसको खोदता है। २८

❀ यह तीसरे अध्याय का ब्राह्मण ३; और अध्याय ३ पूर्ण हुआ। ❀

३ १९ अग्नि (सूर्य-रूप) आकाश में तपता है। सूर्य से आकर अग्नि तपाता है। इसका विशाल अन्तरिक्ष है। आहुति को ले जाने वाले, घी के प्रिय अग्नि को मनुष्य दीप्त करते हैं। २०

२० अग्नि से ढँकी, साथ रहने वाली पृथिवी बन्धन-रहित कर्म को बताने वाली है। वह मुझको तेजस्वी-तीक्ष्ण बनाये। २१

२१ इसी भूमि पर मनुष्य देवों के लिए यज्ञ करते और सुन्दर हव्य देते हैं। भूमि पर मरण-शील मनुष्य अपनी धारण-शक्ति और अन्न से जीते हैं। वह हमारी भूमि हमें प्राण-आयु दे। पृथिवी मुझको वृद्धावस्था तक प्रशंसा-योग्य करे। २२

२२ हे पृथिवी! जो तेरा गन्ध-गुण है जिसे औषधियाँ-जल धारण करते हैं, जिसे गन्धर्व-अप्सरा (पृथिवी-जल-नभ के प्राणी) धारण करते हैं उससे मुझको सुगन्धित कर, कोई मुझसे द्वेष न करे। २३

२३ हे पृथिवी! जो तेरा गन्ध पुष्टिकर जल-कमल में प्रविष्ट है, जिसे सूर्य-प्रभा के विशेष वहन में अमर शक्तियाँ सृष्टि के आरम्भ में धारण करती हैं उससे० (पूर्ववत)। २४

२४ हे भूमि! जो तेरा गन्ध (अंश) पुरुषों में; ऐश्वर्य-दीप्ति स्त्री-पुरुषों में, जो वीर अश्वों-मृगों-हाथियों में है, जो कान्ति कन्या में रहती है उससे हम भी युक्त करें। २५

२५ भूमि शिला-पत्थर-धूल रूप है, वह उत्तम रीति से धारित होकर सुरक्षित रहती है। अपने वक्ष में सुवर्ण रखनेवाली उस पृथिवी के लिए मैं आदर करूँ। २६

२६ जिसमें सब प्रकार के वृक्ष, वनस्पतियों से उत्पन्न पदार्थ दृढ़ होकर स्थित हैं उस विश्व-धारक, वीरों से धारित पृथिवी को हम अच्छा कहें। २७

२७ उठते बैठते-खड़े-चलते हुए हम भूमि पर दायें-बायें पैरों से न डगमगायें, व्यथित न हों, किसी को व्यथित न करें। २८

२८ विशेष खोजने-योग्य, क्षमा-शील, ब्रह्म से बढ़ायी गयी विस्तार-युक्त भूमि का मैं वर्णन करता हूं। हे भूमि! ऊर्जा-पोषण-अनेक अन्न-घी-धारक तुझ पर हम बैठें-रहें। २९

२९ हे पृथिवी! शुद्ध जल हमारे शरीर के लिए मुझ पर बहे, जो हमारा नाशक-कष्ट-प्रद व्यवहार है उसे हम अप्रिय दुष्ट पर डालें। मैं अपने को पवित्रता से शुद्ध करूँ। ३०

३० हे भूमि! जो तेरी पूर्व-उत्तर-नीचे (दक्षिण)-पीछे (पश्चिम) दिशाएँ हैं वे चलते हुए हमें सुख-दायिनी हों, भुवन में आश्रित मैं पतित न होऊँ। ३१

१ हे भूमि! हमें पीछे-आगे-ऊपर-नीचे से न ढकेले। हमें कल्याण-कारिणी हो, शत्रु-लुटेरे हमें न मिलें, वध-कारी शस्त्र दूर कर। ३२

३३३२ हे भूमि! जबतक मैं आनन्द-दायक सूर्य की सहायता से तुझे देखूं तबतक मेरी दर्शन-शक्ति उत्तरोत्तर वर्षों तक नष्ट न हो। ३३

३३३३ यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् । उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे । मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥ ३४

३४ यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु । मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५

३५ ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद् हेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस् ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६

३६ याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून्ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम्। शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७

३७ यस्यां सदो-हविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः । युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ ३८

३८ यस्यां पूर्वे भूतकृतः ऋषयो गा उदानृचुः । सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९

३९ सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनङ्कामयामहे । भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥४०

४० यस्याङ्गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः । युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः । सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१

४१ यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२

४२ यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३

४३ निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसुमणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४

४४ जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ ४५

४५ यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोपसृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४६

४६ ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७

३३४७ मल्वं बिभ्रती गुरुभृत् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥ ४८

३३३३ हे मातृभूमि, जब मैं सोता हुआ दाहिनी और बायीं करवट बदलूँ, जब हम चित्त होकर अपनी पसलियों से तुझे नीचे दबाकर सोएँ तब सबको सुलाने वाली तू हमारी हिंसा मत कर। ३४

३४ हे भूमि ! जो कुछ तेरा भाग मैं खोदूँ वह भी शीघ्र उग आये। हे विशेष रूप से खोदने योग्य मैं तेरे मर्म और हृदय को हानि न पहुँचाऊँ [जमीन को बहुत गहरा न खोदूँ और मनुष्यों के मर्म स्थल और हृदय पर आघात न करूँ।] ३५

३५ हे विस्तार-युक्त भूमि ! ग्रीष्म-वर्षा-शरद्-हेमन्त-शिशिर-वसन्त ६ ऋतुएँ, वर्ष-दिन-रात तेरे लिए ईश्वर ने बनायी हैं वे हमें सुख दें। ३६

३६ जो कुटिलों से डरती पृथिवी पवित्र-कर्त्री है; जिसमें पानी में विद्युत् है; वह देव-नाशक दस्युओं को नष्ट करती, इन्द्र को वरण करती; दुष्ट का त्याग करती हुई वीर को वरती है। ३७

३७ जिसमें सदन; हव्य-भण्डार और यूप बनते, अध्वर्यु-ब्रह्म ऋचा-सामों से उपासना करते हैं, ऋत्विज इन्द्र को सोम पिलाते हैं। ३८

३८ जिस पर श्रेष्ठ; प्राणियों को ज्ञानी बनाने वाले मन्त्र-द्रष्टा वाणी बोलते हैं, शरीर के विधाता (? ज्ञान-इन्द्रिय-मन-बुद्धि) सत्र-यज्ञ-तप के साथ वेद-वाणी बोलते हैं। ३९

३९ वह हमारी भूमि हमें वह धन दे जो हम चाहते हैं; धनी पीछे चले; सम्राट् नेता हो। ४०

४० जिस में विविध क्रीडा-प्रेरणा वाले मनुष्य गाते-नाचते, युद्ध करते-ललकारते हैं, दुन्दुभि बजती है वह हमारी भूमि शत्रुओं को दूर भगाये, मुझे शत्रु-रहित करे। ४१

४१ जिसमें अन्न धान(चावल)-जौ होते; ये ५ खेतियाँ, ५ कारीगर हैं; मेघ की पत्नी, वर्षा से स्निग्ध उस भूमि के लिए आदर हो। ४२

४२ जिसके नगर श्रेष्ठ कारीगरों के बने; खेत में अनेक कर्म होते; सब को अन्दर रखने वाली उस पृथ्वी को प्रजा का रक्षक स्वामी हर दिशा में रमणीय करे। ४३

४३ खानों में अनेक प्रकार के खजाने रक्खे पृथ्वी मुझे धन-रत्न-सोना दे; धनदा देवी हमें धन देती, प्रसन्न होकर वह पोषण करे। ४४

४४ अनेक प्रकार की भाषा-कर्तव्य वाली जनता को एक घर के समान रखती पृथिवी मेरे लिए अटल, न कूदती गौ के समान धन की हजारों धाराएँ दुहाये (दे)। ४५

४५ हे पृथिवी ! जो तेरा भरमाया साँप-बिच्छू-भौंरा काटने पर प्यास लगाने वाला, शीत से ठिठुरा गुफा में सोता है, वर्षा में प्रसन्न कीड़ा यत्र-तत्र चलता है वह रेंगता हुआ हम तक न आये, जो कल्याण-कारी है उससे हमें सुख दे। ४६

४६ मनुष्यों के चलने के जो तेरे अनेक पथ हैं, जाने के लिए रथ-गाड़ी के मार्ग हैं, जिनसे भद्र-पापी दोनों चलते हैं उसे हम जीतें, जो शत्रु-डाकू-रहित कल्याण-पथ है इससे हमें सुखी कर। ४७

४७ मलीन पापी और गुरु को धारण करती, भले-बुरे के निधन (समूह-मौत) को सहने वाली; वराह (मेघ) से संगत, सुन्दर किरणों वाले सूर्य के लिए विशेष गति करती है। ४८

३३४८ हे पृथिवी ! जो तेरे आरण्य पशु, वनवासी मृग पुरुष-भक्षी शेर-बाघ घूमते हैं, क्रोधी [illegible] कुत्ते-राक्षसों-राक्षसों को हम से अलग कर। ४९

३३४८ ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥ ४९

४९ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः। पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद्भूमे यावय

५० या द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१

५१ यस्यां कृष्णमरुणञ्च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि ॥ ५२

५२द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षंच मे व्यचः। अग्निः सूर्य आपो मेधा विश्वेदेवाश्च संददुः॥

५३अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्। अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशा विषासहिः।

५४ अदो यद् दवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५

५५ ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्याम्। ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६

५६ अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन पृथिवीं यादजायत
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥ ५७

५७ यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ॥
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥ ५८

५८ शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९

५९ यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन् मातृमद्भ्यः ॥ ६०

६० त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥ ६१

६१ उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ ६२

६२ भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३

इति पृथिवी-सूक्तं समाप्तम् ॥

३३४९ हे भूमि ! जो नक्तचर्य (हिंसा के लिए घूमनेवाले), अचनर(विरुद्ध चलनेवाले), कंजूस-कुतर्की हैं इन सब पिशाच-राक्षसों को हम से अलग कर । ५०

५० जिस पर दुपाये-पक्षी हंस-गरुड़-गिद्ध-कौए आदि आते हैं, आकाशस्थ वायु धूल उड़ाती पेड़ गिराती चलती है; वायु के आने-जाने से आग-लू चलती है । ५१

५१ जिस भूमि पर काले-चमकीले रात-दिन परस्पर मिलते हैं वह वर्षा से लिपटी-ढकी पृथ्वी हमें प्रिय स्थानों में भद्र बुद्धि से युक्त करे । ५२

५२ यह द्यो-पृथिवी-अन्तरिक्ष-आकाश-अग्नि-सूर्य-जल-सब विद्वान् मुझे मेधा दें । ५३

५३ मैं भूमि पर सहनशील-श्रेष्ठ-जयी, सबका हराने वाला, हर दिशा में शत्रु-हन्ता होऊँ । ५४

५४ हे देवी ! जब पहले तू विद्वानों के कथन से महत्त्व पाती है तब तुझे ऐश्वर्य मिलता है, तू चारों दिशाओं को समर्थ बनाती है । ५५

५५ भूमि पर जो ग्राम्य-जङ्गल-सभा-संग्राम-समितियाँ हैं इनमें तुझे अच्छा कहें । ५६

५६ जैसे घोड़ा धूल झाड़ता है वैसे यह पृथिवी जब से बनी तब से उन्हें कंपाती- झाड़ती है जो इसका नाश करते हैं, यह मन्द-हृष्ट-आगे जानेवाली, भुवन-रक्षक, वनस्पति-औषधि-धारक है । ५७

५७ मैं जो देखूँ-कहूं वह मधुर हो; मुझको सब प्यार करें; मैं [illegible] हूं; [illegible] का नाश करूँ । ५८

५८ शान्त-सुगन्धित-सुखद-अन्नयुक्त-जलपूर्ण-विस्तृत भूमि मुझे दूध के साथ वाणी बोले । ५९

५९ समुद्र में जल के अन्दर प्रविष्ट जिसे परमात्मा-शिल्पी अन्न से अनुकूल बनाता है जो भोजन-युक्त-पेय अन्दर छिपा रक्खा है वह माता वाले जीवों के भोग से पूरा हुआ । ६०

६० हे पृथिवी ! उपजाऊ तू जनों की माता के समान प्रसिद्ध इच्छा-पूरक है । तुझ में जो कमी होती है उसे ऋत का पहला जनक प्रजापति पूरी करता है । ६१

६१ हे पृथिवी ! तेरे [illegible] पदार्थ हमारे लिए नीरोग और यक्ष्मा-रहित हों । हमारी आयु लम्बी हो । हम ज्ञानी बनकर तेरे लिए अपना बलिदान करने वाले हों । ६२

२२६२ हे मातृभूमि ! मुझे कल्याण-बुद्धि से युक्त प्रतिष्ठित कर । सूर्य से अच्छी सङ्गत होकर हे कवि ! तू मुझे शोभा-सम्पत्ति से युक्त कर । ६३

❀ इति पृथिवी-सूक्त समाप्तम् ❀

अथर्ववेद काण्ड१२ प्रपाठक६ अनुवाक२ सूक्त २

३३६३ नडमारोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस् तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ १

६४ अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युञ्च निरजामसि ॥ २

६५ निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद्यमु द्विष्मस्तमु ते प्रसुवामसि ।।३

६६ यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमङ्गोष्ठं प्र विवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यङ्कृत्वा प्रहिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदो ऽप्यग्नीन् ।।४

६७ यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस् त्वोद्दीपयामसि ।। ५

६८ पुनस् त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस् त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ६

६९ यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥ ७

७० क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ।। ८

७१ क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥ ९

७२ क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरागा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ १०

७३ समिन्धते सङ्कसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ।। ११

७४देवो अग्निः सङ्कसुकःदिवस्पृष्ठान्यारुहत्।मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः॥१२

७५अस्मिन्वयं सङ्कसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे।अभूम यज्ञियाःशुद्धाःप्र ण आयूंषि तारिषत्।

७६सङ्कसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः।ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद्दूरमनीनशन् ॥१४

७७ यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु।क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः॥१५

७८अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्योगोभ्योअश्वेभ्यस्त्वा।निःक्रव्यादंनुदामसि योअग्निर्जीवितयोपनः॥१६

अनुवाक २, सूक्त २ का विषय— यक्ष्मादि रोग निवारणादि, अग्न्यादि पदार्थविद्या, मृत्यु-निवारण आयुः प्राप्त्यादि, विधवा-विधानादि, अग्नीश्वर-प्रार्थनादि पदार्थ विद्या।

—महर्षिः स्वामी दयानन्द सरस्वती

५५ मन्त्रों का सूक्त २। अग्नि और राजा।

३३६३ (हे आग!) तू नड(नड़े, नरकुल)पर दीप्त हो, तेरा यहाँ दर्शन न हो, यह सीसा(नाग-सिक्का लैड-ग्लम्बम) तेरा भाग है (इसकी भस्म औषध बना)। गौओं-पुरुषों में यक्ष्मा हो उस के साथ नीची हल्की होकर दूर हो [सीस-भस्म यक्ष्मा की औषधि है (वनस्पति- चन्द्रोदय)]। १

६४ पाप-प्रशंसा और पाप करने-बार बार करने से पैदा हुए उभी यक्ष्मा और मृत्यु को हम उस सीसे से यहाँ से निकाल दें। २

६५ हम यहाँ से मांस-भक्ष-कंजूसों निकाल दें, हे कच्चा मांस न खाने वाली आग! जो हमसे द्वेष करता है उस यक्ष्मा को खा, जिस से हम द्वेष करते हैं उस तेरे पास भेजते हैं। ३

६६ यदि मांस-भक्षी आग या अन्य स्थान का बाघ (रोग) इस गाठ (शरीर) में घुस आये तो माषाज्य (उड़द-घी) से दूर करूँ, वह जल की बिजली में जाये (उनसे दूर हो)। ४

६७ पुरुष के मरने पर क्रुद्ध यदि मन्यु से तुझे छोड़ देते हैं हे आहवनीयाग्नि! वह तेरा अच्छा कार्य है, हम तुझे फिर दीप्त करें। ५

६८ हे आग! आदित्य-रुद्र-वसु—वसु-नेता ब्रह्मा-ब्रह्मणस्पति वेदाचार्य १०० वर्ष की बड़ी आयु के लिए तेरा फिर आधान करें। ६

६९ यदि दूसरे जातवेदस अग्नि को देखता हुआ यह दूसरा मांस-भक्षी अग्नि और डाकू हमारे घर में घुसे तो उसे पितरों के यज्ञ [भोजन, शव-दाह, रक्षक-सङ्गठन] के लिए दूर ले जाऊँ, वह परम स्थान [रसोई-श्मशान-कारागार] में बटलोई गरम करे। ७

७० मांस-भक्षी अग्नि को दूर करूँ, पापी यम [मौत-न्यायाधीश] के राज्य में जाये, वहाँ यह दूसरा जातवेदा [यज्ञ की आग, विद्वान्] जानता हुआ हव्य को ले जाये। ८

७१ इच्छुक मैं वज्र से जनों को निश्चल करने वाली मांस-भक्षी आग [चिता-चिन्ता-डाकू] को नष्ट करूँ, विद्वान् मैं गार्हपत्य [पाकाग्नि, गृहपति के कर्म] से उसे वश में करूँ, उसका भाग पितरों के लोक [श्मशान और गृहाश्रम] में हो। ९

७२ मैं उछलती मांस-भक्षी आग को पितरों के गये यानों से दूर हटाता हूं, वह तु देव-यानों से फिर यहीं न आ; पितरों में बढ़ और जाग। १०

७३ शुद्ध होते हुए, पवित्र-शोधक पुरुष कल्याण के लिए संकसुक (आग-शासक) को दीप्त करते हैं, वह समिद्ध आग मल-पाप-क्रिमि को छुड़ाती और पवित्रता से पवित्र करती है। ११

७४ देव संकसुक आग द्यौ की पीठों पर चढ़ती है, क्रूर कर्म निग्राव वह हमें पाप से बचाती है। १२

७५ हम इस संकसुक आग में पाप दूर करें, शुद्ध यज्ञिय हों, वह हमारी आयु बढ़ाये। १३

७६ वे वे संकसुक-विकसुक(व्यक्ति; वैद्य)-निरन्तर ज्ञानी-उपदेशक समान वेद से यक्ष्मा दूर नष्ट करें। १४

७७ जो हमारे अश्व-वीर-गो-बकरी-भेड़ों में जन-नाशक मांसभक्षी आग(यक्ष्मा) हो उसे हटायें। १५

७८ तुझ मांस-भक्षी जीवन-नाशक आग यक्ष्मा को अन्य पुरुष-गो-अश्वों से दूर रक्खें। १६

३३७९ यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ १७

८० समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ १८

८१ सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ सङ्कसुके च यत् ।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥ १९

८२ सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः । २०

८३ परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते त एष इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥ २१

८४ इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २२

८५ इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस् तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २३

८६ आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान् वस् त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥ २४

८७ यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥ २५

८८ अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ २६

८९ उत्तिष्ठता प्रतरता सखायो ऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ २७

९० वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धाः भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम । २८

९१ उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तो ऽवरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥ २९

९२ मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थे ऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥ ३०

३३७९ हे अग्नि(विद्वान्-नेता) ! जिसमें विद्वान् तथा साधारण जन अपने को शुद्ध करते हैं उस यज्ञ में शुद्ध होकर घी (हवन)से ईश-स्तुति करता हुआ तू मोक्ष को पा । १७

८० हे आहुति पाये दीप्त अग्नि ! वह तू हम न छोड़, यहीं चिरकाल सूर्य देखने के लिए सदा चमक ।१८

८१ सिर की वेदना को सीसा-भस्म, नड-आग और रत्नक सूर्य में तथा काली मेड़ क दूध और सिरहाने के तकिया में धो डालो (दूर करो) । १९

८२ सीसा में मल(यक्ष्मा), तकिया, काली मड़, काले धब्बेदार सूर्य में सिर-पीडा को धोकर शुद्ध याज्ञिक बनो । २०

८३ हे मौत ! तू उस पथ पर दूर जा जो तेरा देवयान से भिन्न पथ है । मानो देखती-सुनती हुई तुझ से कहता हूं कि यहाँ ये वीर बहुत हों । २१

८४ ये जो मृ जीवितों से घिरे हैं, आज हमारी विद्वत्-सभा कल्याण-कारिणी हो, हम नृत्य-हास्य के लिए आगे बढ़ें, सुवीर हम ज्ञान-चर्चा करें । २२

८५ मैं (ईश्वर) जीवों मनुष्यों के लिए (७) मर्यादा बाँधता हूं, इनमें कोई इसके बाहर न जाये कर्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीते हुए पुरुषार्थ से मौत को दूर रखो । २३

८६ जितने हो, एक के पीछे दूसरा प्रशंसनीय बुढ़ापा तक परस्पर यत्न करते हुए आयु-शिखर पर चढ़ो; उत्तम जन्म-दाता, प्रीति-युक्त शिल्पी ईश्वर उन तुम्हें जीने के लिए पूरी आयु तक ले जाय ।२४

८७ जैसे दिन-रात के पीछे दूसरा दिन-रात, ऋतुओं के साथ ऋतुएँ होती है, पहले को अगला नहीं छोड़ता ऐसे ही हे विधाता ! इनकी आयु समर्थ बना । २५

८८ पथरीली जीवन-नदी बहती है, हे सखाओ ! वीर बनो; तर जाओ, जो दुःख-दायी हों उन्हें यहीं त्यागो ; हम नीरोग अन्न लक्ष्य में रख कर पार जाएँ । २६

८९ हे सखाओ ! यहां-तेरी, यह पथरीली नदी बह रही है, यहीं छोड़ दो जो अकल्याणकारी हैं, कल्याणकारी अन्न का लक्ष्य करके हम पार जावें । २७

९० तेज के लिए वैश्वदेवी औषधि का सेवन आरम्भ करो; शुद्ध होते हुए पवित्र आग-समान शुद्ध-कर्ता होओ हम सब वीर दुःखदायी चालें हटाते हुए १०० वर्ष हृष्ट रहें । २८

९१ ऋषि मन्त्र-द्रष्टा योगी ऊँचे चढ़ते वायु वाले श्रेष्ठ पथों (प्राणायामों) से नीचे के पथों को पार करते हुए, मौत के पैर हटाकर, ३ गुणित ७ = २१ पदार्थों (देखो मन्त्र १.१.१), २१ प्राणायामों की शक्ति से मौत को दूर धकेलते हैं । २९

३३९२ हे मनुष्यो ! मौत के पैर हटाते हुए, लम्बी आयु-लड़ी को धारण करते हुए आगे बढ़ो सभा में योगासन पर बैठ कर हम मौत को धकेलते हुए ज्ञान-चर्चा करें । ३०

३३९३ इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्ने ॥ ३१

९४ व्याकरोमि हविषाहमेतौ ब्रह्मणा व्यहङ्कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ३२

९५ यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परिगृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥ ३३

९६ अपावृत्य गार्हपत्यात्क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा। प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥ ३४

९७ द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या। अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ॥ ३५

९८ यत्कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते। सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥ ३६

९९ अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे। छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते। ॥ ३७

३४०० मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य। क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादनु विद्वान्वितावति ॥ ३८

३४०१ ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः। ब्रह्मैव विद्वानेष्यो यः क्रव्यादं निरादधत् ॥ ३९

२ यद्रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम्। आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः सङ्कसुकाच्च यत् ॥ ४०

३ ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥ ४१

४ अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥ ४२

५ इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात्। व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥ ४३

६ अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥ ४४

७ जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥ ४५

८ सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥ ४६

९ इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७

१० अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥ ४८

११ अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन्प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥ ४९

१२ ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा। क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥ ५०

३३६३ ये नारियाँ विधवा न हों, सुपतियाँ अञ्जन, घी से उबटन लगायें। अ-सू-रोग-रहित, सुन्दर रत्न वाली माताएँ घर में आगे चढ़ें। (एकतीस)

९४ मैं ईश्वर इन दो (पितर-साधारण) जनों को हवि से बाँटता हूं और वेद से समर्थ करता हूं। पितरों के लिए अपने धारण-योग्य अन्न, और इन अन्यों को बड़ी आयुवाला पौष्टिक अन्न देता हूं।३२

९५ हे पितरो! जो हमारा अमर अग्नि (ईश्वर) हम मर्त्यों में हृदयों में प्रविष्ट है उस देव को मैं अपने में पूर्णतया धारण करूँ, वह हमसे, हम उससे द्वेष न करें। (तेंतीस)

९६ गार्हपत्य से हटकर दक्षिण-ओर शवाग्नि के पास जाओ, पितर-आत्मा-वेदज्ञों-का प्रिय करो। (चौंतीस)

९७ जो मांसभक्षी आग न हटायी तो बड़े पुत्र का दुगना धन लेकर बिना वृत्ति के नष्ट करती हैं। ३५

९८ यदि वह न हटायी तो जो खेती-दाय-व्यापार-वेतन से मिलता वह सब मर्त्य का नहीं।(छत्तीस)

९९ क्रव्याद् (मांसभक्षी आग, चिन्ता, यक्ष्मा) जिसका पीछा करती है वह अय क्षिय तेज-रहित हो जाता है; उससे अन्न नहीं खाया जाता; वह खेती-गो-धन से वंचित हो जाता है। (सैंतीस)

३४०० क्रव्याद् अग्नि मानो जानती हुई जिसके पास रहती है वह मर्त्य कष्ट पाकर लोभियों से बार बार व्यर्थ नात करता है। (अड़तीस)

१ जब स्त्री का पति मरता है तब गृही पीडा से युक्त होते हैं, विद्वान् चतुर्वेदी अन्वेषणीय है जो क्रव्याद् को दूर निकाल दे। [उनचालीस]

२ जो पाप, शान्ति-नाशक बुरा कर्म हम करें या संकसुक आग [चिन्ता-यक्ष्मा] से हो उससे ये आपः [परमात्मा- आप्त और जल-चिकित्सा] मुझे छुड़ायें। ४०

३ वे आपः जानते हुए देव-यानों से नीचे से ऊपर चलते हैं। सुख-वर्षक पर्वत की पीठ पर नयी पुरानी नदियाँ बहती हैं। ४१

४ हे क्रव्याद् से भिन्न अग्नि [परमात्मा-विद्वान्-जठराग्नि]! तू क्रव्याद को बाहर कर और देव-यज्ञ को ला। ४२

५ इसमें क्रव्याद् घुसा, यह उसके पीछे चला, इन २ भावों को अलग करके अमङ्गल दूर करूँ। ४३

६ गार्हपत्य आग देवों के अन्दर, मनुष्य-परिधि [रक्षक] दोनों के बीच में है। ४४

७ हे सु गार्हपत्य अग्नि! तू जीवित की आयु बढ़ा जो मर गये वे भी पितृ-स्थान [दूसरा जन्म] पायें। यक्ष्मा-शत्रु तपाती हुई तू इस रुग्ण के लिए प्रति उषा कल्याणकारी दशा दे। ४५

८ हे अग्नि! तू सब शत्रु हराती हुई इनका बल-ऐश्वर्य हममें धारण करा। ४६

९ धारक-पालक इन्द्र [ईश्वर-बिजली-जीवात्मा-सम्राट्] का आश्रय लें, वह तुम्हें निन्दनीय पाप [illegible] आता हुआ [illegible] रोग नष्ट कर, दुष्ट रोग [illegible] रक्षा कर। ४७

१० तुम बैल और नाव (परमात्मा) का आश्रय लो, वह तुमको निन्दनीय पाप-दुःख-कष्ट-रोग से छुड़ायेगा; सविता की इस नाव पर चढ़, हम ६ बड़े साधन से अज्ञान-नदी तैर जाएँ। ४८

[६ साधन शम-दम-उपरति-तितिक्षा-श्रद्धा-समाधान हैं।]

११ [हे ईश्वर!] तू दिनरात रक्षक; सक्रिय है, क्षेम-कारी, स्थिर-तारक-सुवीर-शरणरूप है; हमें नीरोग-प्रसन्न रखता हुआ सदा तू हमें पुरुषार्थ से सुगन्धित कर। ४९

३४१२ वे दिव्य गुणों और विद्वानों से वंचित हो जाते हैं, पाप के साथ जीते हैं जिन्हें क्रव्याद् मांसभक्षी अग्नि [चिन्ता-यक्ष्मा] छिन्न भिन्न कर देती है जैसे अश्व नड [नरकुल घास] को। ५०

३४१३ येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते। ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥५१
१४ प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरावर्तते पुनः।क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादनुविद्वान्वितावति॥५२
१५ अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥ ५३
१६ इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्।तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ॥५४
३४१७ प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश ।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ५५

अथर्व वेद काण्ड १२ प्रपाठक २७ अनुवाक ३ सूक्त ३

१८ पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्ता अग्रे प्रथमं समेयथुस् तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ॥ १
१९ तावद्वां चक्षुस् तति वीर्याणि तावत्तेजस् ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान् मिथुना सं भवाथः ॥ २
२० समस्मिल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यत् रेतो अधि वां सं बभूव ॥ ३
२१ आपस् पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ॥ ४
२२ यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥ ५
२३ उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥ ६
२४ प्राचीं-प्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद्वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥ ७
२५ दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नियच्छात् ॥ ८
२६ प्रतीचीं दिशामियमिद्वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सम्भवाथः ॥ ९
३४२७ उत्तरं राष्ट्रं प्रजया उत्तरावद्दिशामुदीचीं कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सम्भवेम ॥ १०

३४१३ श्रद्धा-हीन, धन-लोभी जो मांस-भक्षी आग (यक्ष्मा) के साथ रहते हैं वे सदा दूसरों की हाँडी पकाते (पाचक की नौकरी करते) हैं । ५१

१४ वह मन से उड़ना चाहता है किन्तु फिर लौट आता है जिसे जानती हुई क्रव्याद् आग सताती है । ५२

१५ हे क्रव्याद् ! १. पशुओं में काली भेड़, २. सीसा-भस्म, ३. चाँदी-सोना-भस्म, ४. उड़द-पिट्ठी-भोजन, ५. जङ्गल-गुफा ये तेरे भाग (नाशक) कहे जाते हैं, उनका सेवन कर । ५३

१६ इन्द्र (जीव मनुष्य) सूखी मूँज-तिल-उसकी खली-दण्डन-नड इन ५ से हवन करके उसको ईंधन बनाकर यम की अग्नि (यक्ष्मा-शवाग्नि) को निकाल दे । ५४

१७ प्रत्यक्ष स्तुत्य (ईश्वर-सूर्य) के प्रति अपने को सौंप कर, विद्वान् मैं पथ में प्रविष्ट हुआ हूं। उन (दुष्टों) के प्राण दूर कर इन (श्रेष्ठों) को लम्बी आयु से युक्त करता हूं । ५५ ।   ❀

६० मन्त्रों का अनुवाक-सूक्त ३ । स्वर्गौदन अग्नि । विषय— पुरुषार्थादि; शिल्पाद्यनेक पदार्थ-विद्या, सोमाद्यनेकौषधादि पदार्थ विद्या —महर्षिः स्वामी दयानन्द सरस्वती ।

१८ हे पुरुष ! आ, तू पूर्वों का अधिष्ठाता होकर आसन पर बैठ, वहाँ उसे बुला जो प्रिय पत्नी है, जितनी आयु के, पहले (ब्रह्मचर्य में) आये थे तुम दोनों को वही आयु नियन्ता के राज्य में मान्य हो । १

१९ तुम दोनों की दृष्टि-वीरता-तेज-बल उतने ही रहें, जब शरीर-ईंधन में आग (ब्रह्मचर्य) लगा जाये तब जोड़ा बनो । २

२० इस लोक-देवयान-नियन्ता-राज्य में मिलकर जाओ-आओ । पवित्र कर्मों से शुद्ध तुम उस सन्तान को पास बुलाया करो जो तुम दोनों के रज-वीर्य से हुई हो । ३

२१ हे आप्त पुत्रो ! जीवों में धन्य बनकर इस जीव-लोक में परस्पर मिलकर प्रवेश करो, उनको भजो जिसे अमृत (वीर्य) कहते हैं, जिस ओदन (वीर्य) को तुम दोनों की माता पकाती है । ४

२२ जिसे पिता-माता पाप और वाणी का मैल छुड़ाने के लिए पक्का करते हैं, वह ओदन सैकड़ों का धारक स्वर्ग है जिसकी महत्ता से दोनों आकाश (भू-द्यौ, गृहस्थ-वानप्रस्थ) व्याप्त हैं । ५

२३ दोनों आकाश-लोक; जो याज्ञिक-विजित सुख, हैं उनमें जो ज्योतिष्मान्-मधुर आगे है उस प्रशंसनीय में बुढ़ापे में पुत्रों के साथ आश्रय लो । ६

२४ हे दम्पती ! पूर्व [प्रगति] की दिशा जाओ, श्रद्धालु यह लोक पाते हैं; जो पका अन्न आग में डाला है उसकी रक्षार्थ परस्पर आश्रय लो । ७

२५ दक्षिण दिशा [वृद्धि] को जाते हुए इस पालक देवयान की ओर लौट आओ । उसमें तुम्हारा नियन्ता वायु ऋतुओं के साथ मिलकर परिपक्वता के लिए बहुत सुख दे । ८

२६ दिशाओं में यह पश्चिम [ह्रास] भी श्रेष्ठ है जिसमें सोम [ईश्वर-चन्द्र-वीर्य] अधिपति-सुखद हैं; उसमें आश्रय लेकर सुकर्म करो, तब पके [ज्ञान-वीर्य] से सम्पन्न होओ । ९

२७ उत्तम राष्ट्र उत्तम प्रजा से है, उत्तर दिशा [उन्नति] हमें उन्नत करे, पंक्ति छन्द के समान पुरुष ५ इन्द्रिय-शक्ति-सम्पन्न, स्वच्छन्द होता है, हम सबके साथ सब अङ्गों से पूर्ण हों । १०

२८ यह नीचे स्थिर सी पृथिवी विशेष दीप्त है इसके लिए नमः [आदर] है, पुत्रों और मेरे लिए कल्याणी हो, हे सबकी वरणीय अखण्ड देवी ! वह तू हमारे पके ज्ञान की अन्न-पति गत् रक्षा कर । ११

३४२८ ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥ ११

२९ पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥ १२

३० यद्यत्कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद्वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥ १३

३१ अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दम्पती पौत्रमघं नि गाताम् ॥ १४

३२ वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अप बाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान्जयेम ॥ १५

३३ सप्त मेधान्पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद्देवतास्तान्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥ १६

३४ स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ १७

३५ ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥ १८

३६ विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद्विनक्तु ॥ १९

३७ त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २०

३८ पृथग्रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा ॥ २१

३९ पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा ।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद्वपामि ॥ २२

४० जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥ २३

३४४१ अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात्त्वा सोमः सं ददातै ॥ २४

३४२६ पुत्रों को पितावत् तू हमें ले, भूमिपर कल्याणी वायु बहे, २ देव जो ओदन पचाते हैं उसे हमारा तप और सत्य जानें । १२

३० जब जब काला कौआ या दुष्ट बिना रुके घर में आये या गीले हाथवाली दासी ऊखल-मूसल गीला कर दे, या दुष्ट दम्पति का भ्रष्ट करे तो उसे आपः (जल और आग्न) शुद्ध करें । १३

३१ यह बड़े आधार वाला, जीवन-अन्न-रक्षक, पवित्र व्यवहारों से शुद्ध ग्रावा (पत्थर-ऊखल-उपदेशक-राजा) राक्षसों (क्रिमियों-दुष्टों) का नाश करे । चर्म पर चढ़, बड़ा सुख दे, पति-पत्नी पुत्र-विषयक कष्ट न पायें । १४

३२ राक्षस-मांसभक्षी रोग-कृमि हटाता हुआ, सेवनीय-रक्षक (मूसल-राजा) दिव्य गुण-सहित हमें मिला है, वह उच्च उठे, वाणी बोले, उससे सब लोकों को जीतें । १५

३३ जीव ७ प्रकार का अन्न लेते हैं, उन्हें तैंतीस देव मिलते हैं, इन में जो ज्योतिष्मान् और प्रकृष्ट है वह विद्वान् हमें सुखी लोक में पहुँचाये । देव ८ वसु-११ रुद्र-१२ आदित्य-इन्द्र-प्रजापति हैं । १६

३४ (हे विद्वान्-राजा !) तू हमें सुखी लोक में ले जा, हम पत्नी-पुत्रों के साथ हों, जिसका हाथ पकड़ूँ वह पत्नी मेरे पीछे चले, कष्ट-कृपणता हमें न मिले । १७

३५ पापी आलस्य-जकड़न को हम छोड़ें, तमः हटाकर मधुर बोल, हे रक्षक ! उद्यत (शासक-मूसल) होकर हिंसा न कर, देवों की ओर जाते हुए चावल आदि को नष्ट न कर । १८

३६ यदि तू विश्व-प्रसिद्ध आग-समान होना चाहे तो इस लोक में आ, वर्षों में बढ़े सूप के समान विवेकी के पास जा, भूसी-तिनकों के समान दुष्टों को अलग कर दे । १९

३७ ब्रह्मज्ञ द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष इन तीन लोकों का ज्ञान पाता है, दोनों पति-पत्नी कण ले कर फिर यत्न करें, वे छँटकर फिर सूप (विवेकी) में आ जायें । २०

३८ प्राणियों के बहुधा अलग रूप होते हैं, समृद्धि से एकरूप होता है, इस रजोगुणी खाल को दूर कर; गुरु उसे शुद्ध करे जैसे धोबी वस्त्र को । २१

३९ पृथिवी की बनी (अङ्गीठी-हाँडी) को मैं पृथिवी पर रखता हूं, दोनों के शरीर समान हैं, हे भूमि, यह तेरा बिगड़ा रूप है, जो जो खदबने-पकाने से जला हो उससे तू मत गिर, उसे मैं वेद-ज्ञान से ठीक करता हूँ । २२

४० हे पृथिवी ! जैसे माता पुत्र को वैसे तू मुझे चाहती है, मैं तुझे पृथिवी से मिलाता हूँ; उखा-हाँडी यज्ञ के उपकरण (चम्मच-चमचा-आचमनी आदि) और घी से अति टिकायी हुई वेदि पर व्यथित न हो । २३

४१ हे पृथिवी ! पकाता अग्नि पूर्व से, इन्द्र (मानसून वायु) दक्षिण से तेरी रक्षा करे, वरुण (जल-चन्द्रमा) पश्चिम से धारण में दृढ़ करे, और उत्तर से सोम (चुम्बक और सोम आदि औषधियाँ) तुझको दृढ़ता दें । २४

३४४२ पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५

४३ आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस् ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६

४४ उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥ २७

४५ संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः
असंख्याता ओप्यमाना सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥ २८

४६ उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस् तण्डुलैर्भवता समापः ॥ २९

४७ उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन् मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३०

४८ प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥ ३१

४९ नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥ ३२

५० वनस्पते स्तीर्णमासीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥ ३३

५१ षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्स्वः पक्वेनाभ्यश्नवाते ।
उपैनं जीवान्पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥ ३४

५२ धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद्वासयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५

५३ सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान्यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६

५४ उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभि हिङ्कृणोत ॥ ३७

३४५५ उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८

वेद का अनर्थ [२८]

वेद में सरमा-पणियों की कहानी नहीं।

वेद प्रदीप सितम्बर ९१ के अंक में ऋग्वेद १०-१०८ में सरमा कुतिया की कहानी बतायी कि वह पणियों की चुरायी गायों का पता लगाने गयी। पर यह वेद का अनर्थ है क्योंकि सृष्टि के आदि में मिले परमात्मा के ज्ञान में कोई कहानी हो नहीं सकती। ३ मन्त्र ये हैं —

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन। स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम॥
नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः। गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपेत इत पणयो वरीयः॥
दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन। बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः॥

यह संवाद-शैली में टेलीफोन का आलङ्कारिक वर्णन है। पणि (बनिये) गौ आदि धन दूर छिपा देते हैं। इन्द्र (बिजली) की दूती सरमा [ज्ञान नापने वाली दूरभाष (टेलीफोन) की शक्ति] उसका पता लगा सकती है। वह व्यापारियों के दिये लालच में नहीं आती। उसके द्वारा पता लग जाने पर गौ आदि धन छुड़ा लिये जाते हैं।

यह भौतिक अर्थ है। वेद के आत्मिक-दैविक अर्थ भी हो सकते हैं; तदनुसार आत्मिक अर्थ में- इन्द्र जीवात्मा, दूती चिति-चित्तवृत्ति, पणि इन्द्रियाँ, गौ वाणियाँ हैं। दैविक अर्थ में इन्द्र सूर्य, दूती सरमा माध्यमिका वाक् बिजली, पणि मेघ, गौ किरणें हैं। सरमा को कुतिया बताना अनर्थ है।

कालान्तर में वेद के सरमा-पणि शब्दों के द्रष्टा अर्थ-प्रकाशक ऋषियों का नाम भी उन्हीं ने या अन्यों ने यही रख लिया या दिया। सरमा स्त्री-ऋषिका और पणि अनेक असुर संभवतः फोनेशिया-असीरिया के वैदिक नाटक-कार ऋषि हों जिनका नाम कृतज्ञता-वश स्मरणार्थ लिखा जाने लगा।

साहित्य-समीक्षा—

श्रीमद् भगवद्गीता विवेचनी— लेखक श्री उत्तम प्रकाश बंसल बी० ए० ऐल.ऐल.बी., प्रकाशक- उत्तम विश्व साहित्य प्रकाशन, २४, श्रीराम मार्ग, देहली, सजिल्द मूल्य ७५) रु०। पुस्तक निष्पक्ष, पठनीय, खरीदने-योग्य, संग्रहणीय है।

रोचन्ता शब्द भूमयः। लेखक- डा० सुद्युम्न आचार्य, ऐम० ए० डी०फिल०, प्राध्यापक, टा०गु का. बलिया; प्रका. वेदवाणीवितान, कोलगवाँ, सतना। सरल संस्कृत में रोचक निबन्ध पठनीय हैं। वी.स.

...धीजयन्ती २-१०-९१ को हुई

पृष्ठ२४ वर्ष१५ अङ्क १० आश्विन(इष)२०४८ वेदज्योति अक्तूबर ९१, न.३६२१। २ डाक लख२०९

....

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष २-१०-९१ को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजिए। उसके मिलने पर अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे। सभी सदस्य विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

वैदिक दैनन्दिनी कार्तिक २०४८ विक्रम

कृष्ण १ २ ३ ४ ५ ६ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० १० ११ १२ १३ १४
वार गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु
न. अ भ रो मृ आ पुन पू श्ले म पू का उ फा ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पू षा उ षा श्र ध श श पू भा उ भा रे अ भ१
अ२४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ न१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१।

अनुवादक —वेदर्षि वेदाचार्य साहित्याचार्य वीरेन्द्र सरस्वती शास्त्री, ऐम ए काव्यतीर्थ संपादित

निरुक्त ३०), शतपथ २०),

अष्टाध्यायी २०) वेदार्थपारिजात-खण्डन २०)

अथर्ववेद १००) सामवेद के ब्राह्मण १०]

साम संहितोपनिषद् ब्राह्मण १०), साम दैवताध्याय १०), शतपथ काण्ड १-२, २०), साम वंशब्राह्मण १०) शतपथ काण्ड ३-४, २०), निरुक्त ३०), वेदार्थपारिजात खण्डन २०) मगाइए।
—वीरेन्द्र सरस्वती आर्य जीवनी शास्त्री मन्त्री विश्ववेद परिषद्. सी ८१७ महानगर; लखनऊ ६

समाचार

विश्व वेदपरिषद् का अधिवेशन वेद-सदन लखनऊ में रवि, ३-११-९१ को सायं ३ बजे से होगा। सभी सदस्य अवश्य सम्मिलित हों।

४-८-९१ के आ०प्र०सभा म०प्र० के चुनाव में प्रधान श्री रमेशचन्द्र; मन्त्री श्री सत्यवीर शास्त्री हुए।
१-९-९१ को श्री शेरसिंह जी का ७५ वर्ष पूरे होने पर अभिनन्दन हुआ; १ कार भेंट की गयी।
१४ सितम्बर को हिन्दी-दिवस मनाया गया। सभी भारतीय अंग्रेजी का प्रयोग छोड़ें।
सितम्बर में भारत आये जापानी आर्यों का अभिनन्दन दिल्ली-इलाहाबाद आदि में किया गया।
आश्विन कृष्ण पक्ष में मृतक-श्राद्ध न कर आर्यजन जीवितों का श्राद्ध-तर्पण किया करें।
शोक है कि श्री अभिमन्यु अ०वि०क०गु० खानपुर और श्री रणवीरसिंह आर्य सिरसा का देहान्त होगया।
लखनऊ में २४-९-९१ को उग्र भीड़ ने प्रदर्शनों के अन्दर एक साधु और छात्र को मारकर हूँ का।

——— ———........... ....- ———

प्रेषक — मुद्रक आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर; लखनऊ उ० प्र० पिन २२६००६; दूरभाष ७३५०१
सेवा में क्रमांक श्री पत्रालय जनपद
पुस्तकालयाध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

वेद-ज्योति

सामवेद अथर्ववेद

अथर्व वेद खण्ड २४

वर्ष १५ अंक ११-१२ कार्तिक-मार्ग ४८ नवम्बर-दिस. ९१

विश्व वेदपरिषद् का उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

अध्यक्ष श्री सत्यदेव भारद्वाज वेदालङ्कार, बाक्स ४१६२७, नैरोबी, पूर्व अफ्रीका

संयुक्त मन्त्री श्री वेदप्रिय आर्य, ८६ विवेक खण्ड १ गोमतीनगर, लखनऊ १०, दूरभाष ३९१४१

वेद-मानव-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९२, दयानन्दाब्द १६७

शुल्क वार्षिक ३०), आजीवन ३००) विदेश में २५ पौंड, ५० डालर

सम्पादक - वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, उपाध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्

सहायक— विमला शास्त्री, सी ८१७ महानगर, लखनऊ २२६००६, दूरभाष ७३५०१

दिल्ली-कार्यालय श्री अजयकुमार, मन्त्री, बी६ हिल व्यू बसन्तविहार नयी दिल्ली ५७, दूरभाष ६०१४५२

महर्षि
दयानन्द सरस्वती
निर्वाण दिवस—
दीपावली
२०४८ वि०
५-११-९१
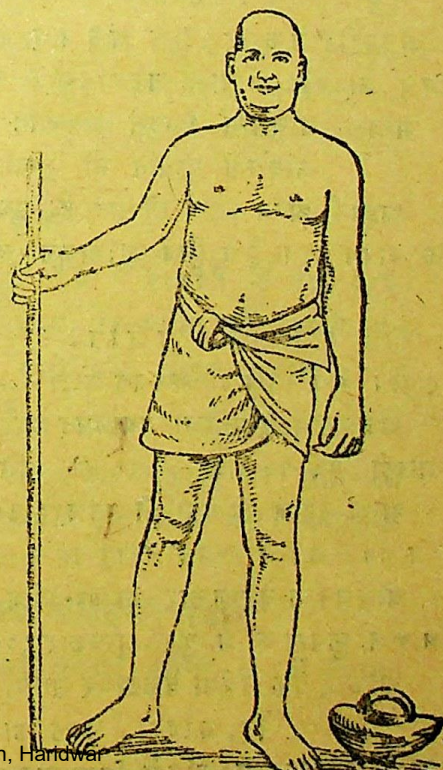
अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द

बलिदान-दिवस २३-१२-९१

सूची—

पतञ्जलि-कृत योग दर्शन-शास्त्रम् (गताङ्क से आगे)

ऐसे एक दूसरे को निरुद्ध किया करें तो दोनों की गति रुक कर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियाँ भी स्वाधीन होते हैं। बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र गृहण करती है। इससे मनुष्य-शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल-पराक्रम-जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करें। (स०प्र० तृतीय समुल्लास)

३५ विषयवती वा प्रवृत्तिः उत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धनी।

विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न होकर चित्त-स्थिति बाँध देती है। जब नासिका के अग्र भाग पर संयम करने से दिव्य गन्ध आने लगती है जिससे साधक का मन ठहरने लगता है। (क्रमशः)

सत्यार्थप्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमांक १३. ऋ ष आजीगर्ति शुनःशेप कृत्रिम वैश्वामित्र देवरात. देवता प्रजापति, छन्द त्रिष्टुप्, स्वर धैवत

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्य नाम।

स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरञ्च दृशेयम् मातरञ्च॥ ऋ० १-२४-२

हम इस स्वप्रकाश-स्वरूप अनादि सदामुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें, जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगा कर पृथिवी में पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है। वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है। समुल्लास ९

वेद का अनर्थ [२९] वेद में मित्र की कहानी नहीं।

वेदप्रदीप अक्टूबर ९१ के अंक में पृ. १६ पर स्वामी गंगेश्वरानन्द उदासीन ने ऋ १०-११७-६ को मित्र का कहा बताया है यह अनर्थ है, क्योंकि वह तो द्रष्टा मात्र है, वेद तो ईश्वर-कृत हैं।

मन्त्र— मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

अज्ञानी अन्न व्यर्थ ही पाता है, सच कहता हूं कि यह तो उसका वध ही है। वह न अर्यमा का पोषण करता है न मित्र का; अकेला खाने वाला केवल पापी होता है। वी० स०

❀ समाचार ❀

वैदिक वेद-विज्ञान का त्रैवार्षिक वेद-पारायण महायज्ञ दि. ३-११-९१ को सायं ३ बजे हुआ। राष्ट्रीय आर्य-वेद-सम्मेलन होशंगाबाद में ३० नवंबर, १ दिसंबर ९१ को होगा।

अजमेर में ऋषि-मेला, तथा 'वेद और विदेशी विद्वान, उनका कार्य और उद्देश्य' विषय पर गोष्ठी १५-१७ नवम्बर ९१ को होंगे। यजुर्वेद-पारायण यज्ञ ११ नव० से होगा।

आर्य समाज खंडवा की शताब्दी १७-२४ नवम्बर ९१ को मनायी जायगी।

'[illegible]' विषय पर गोष्ठी [illegible] २९-९-२१-१० को श्री [illegible] ने की।

श्री क्षितीश वेदालंकार का ७५-वर्षीय अभिनन्दन दिल्ली में २०-१०-९१ को संपन्न हुआ, बधाई!

आर्य स. कुतेरा का म. दया. पुरस्कार (५०००) श्री नरेन्द्रभूषण आचार्य, चंगनूर (केरल) ने पाया, बधाई!

शोक है कि पं० श्री वेंकटेश्वर शास्त्री हैदराबाद का २-९, विद्यानिधि शास्त्री भंडवाज का १५-९, [illegible], मई ६ का २९-९ को, इरहार ([illegible]), श्री [illegible] नगर दिल्ली, डा० [illegible] का १०-१-९१ को देहान्त होगया।

१४९ अयज्ञियो हत वर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद्यं क्रव्यादनुवर्तते।
अथर्व १२-२-३७

यज्ञ-रहित तेज-हीन होता है। क्रव्याद(मांस-भक्षी आग-चिन्ता-यक्ष्मा) उसका पीछा करती है, वह अन्न नहीं खा पाता, खेती-गौ-धन से वंचित हो जाता है।

अश्वमेध यज्ञ राजनीति का आदर्श नाटक है जिसमें ब्रह्मा प्रधान-मन्त्री; अध्वर्यु गृह-रक्षा-मन्त्री उद्गाता सवर-प्रचारण-मन्त्री, होता वित्त-मन्त्री, यजमान राष्ट्र-पति; यजमान की तीन पत्नियाँ (पालागीया) संसद् लोकसभा व्यवस्थापिका-न्यायपालिका-कार्यकारिणी हैं। गृहमन्त्री अध्वर्यु प्रधान-मन्त्री ब्रह्मा को सम्बोधित करके राष्ट्र के लिए दस-सूत्री कार्य-क्रम प्रस्तुत करता है-

१५० आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठा सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ [यजुर्वेद २२-२२]

- ब्राह्मण ज्ञानी, २- राष्ट्र में क्षत्रिय शस्त्रधारी-नीरोग-महारथी, ४- गौएँ दूध वाली, बैल भार-वाही; ५- घोड़े शीघ्र-गामी; ६-स्त्रियाँ नगर-रक्षक, ७- युवा जय-शील-रथी-सभ्य, ८- मेघ इच्छानुसार समय-वर्षा, ९- अन्न-ओषधियाँ फल वाली पकी और १०- हमारा योग-क्षेम हो।

[३] समाज तथा नागरिक विद्या [सोश्योलाजी-सिविक्स] क्रमागत १३ वीं

१५१ अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषा सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥ [५.६०.५]

मानव-समाज में कोई न बड़े, न छोटे, ये सब भाई सौभाग्य के लिए बढ़ें। पिता-युवासुकर्मी-रुद्र (सूर्य-अग्नि) और अन्न-दात्री माता पृथिवी इन मनुष्यों के लिए अच्छे दिनों वाली हो।

किन्तु गुण-कर्मानुसार ४ वर्ण ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र, ४ आश्रम ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यास का भेद तो होगा ही-

१५२-१५४ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत॥ [१०-९०-१२, य ३१-११, अ १९-६-६]

इस पुरुष का मुख्य ब्राह्मण, बाहु-समान क्षत्रिय, जङ्घा-समान वैश्य; पैर-समान शूद्र तपस्वी हुए।

१५५ तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्॥ १०-५३-६

हे मनुष्य! तू ज्ञान-तन्तु तानता हुआ लोक-प्रकाशक ईश्वर व सूर्य का अनुकरण कर; ज्ञान-कर्म से निर्मित ज्योतिष्मान् मार्गों की रक्षा कर, शिक्षकों के कर्म सरलता से बुनो(पालन करो), मननशील हो, दिव्य जन बना।

१५६ अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो मित्रो वरुणो अग्निः॥ य ७-१४

हे देव सोम शिष्य ! हम अध्यापक तेरे लिए सुबल-अखण्डित बोध-धन के देनेवाले हों। यह संस्कृति पहली शिक्षा-वरणीय है। श्रेष्ठ गुरु तेरा पहला मित्र हो।

१५७ वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ७-५४-१

हे घर के पति ! हमें जान। तू सुखी-नीरोग हो। जो कुछ हम तुझे चाहें वह सेवन कर। हमारे दुपायों-चौपायों के लिए सुखद हो।

१५८-१५९ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः ॥ ६-७५-१४, य २९-५१

मेघ के समान गरजता; सर्प-समान शत्रु पर झपटता, हाथ से प्रत्यञ्चा से बाण फेंकता विद्वान सब विज्ञान पाता है। पुरुष पुरुष की सब ओर से रक्षा करे।

१६० यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥ य १३-३

हे सत्य वाणी से शान्ति-स्थापक ! तू जो बाण फेंकने के लिए हाथ में लेता है उसे मङ्गलमय बना। पुरुष-जगत् की हिंसा न कर।

१६१ शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत् ॥ य १३-२

१६२ दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः। अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥ य १९-७७

हे पर्वत के वासी ! हम कल्याणकारी वचन से तुझे अच्छा कहें जिससे सब जगत् नीरोग-हृष्ट हो। ईश्वर ऋत से सत्य-असत्य रूप देख कर बनाता है। असत्य में अश्रद्धा; सत्य में श्रद्धा, अधर्म निवारक, शुद्ध विविध रक्षा-सत्य-चित्त-धर्म-प्रापक यह दूध-अमृत मधु-इन्द्रिय देता है।

१६३ सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ अथर्व ३-३०-१

मैं ईश्वर तुम्हारे लिए सहृदयता-सामनस्य-प्रेम देता हूं, परस्पर स्नेह रखो जैसे गौ पैदा बच्चे पर।

१६४ दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥य३६.१८

हे अविद्यान्धकार-नाशक परमात्मा और विद्वान् ! मुझे दृढ़ कर। सब प्राणी मुझे, मैं सब को हम परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।

१६५ ऋतं सत्यमृतं सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः। ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतं शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः। व्यस्यन् विश्वा अनिरा अमीवा निषीदन्नो अप दुर्मतिं जहि।

संस्कृत-वाक्य-प्रबोधः

९. शत्रु-वश-करण प्रकरणम्

एते शत्रुभिः सह कथं वर्तेरन् ?	ये शत्रुओं के साथ कैसे वर्तें ?
राज-प्रजोत्तम-पुरुषैः अरयः साम-दाम-दण्ड-भेदैर्वशमानेयाः ।	राजा और प्रजा के श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा शत्रु साम दाम दण्ड भेद से वश में लाने चाहिए ।
सदा स्वराज्य-प्रजा-सेना-कोष-धर्म-विद्या-सुशिक्षाः वर्द्धनीयाः ।	सब दिन अपना राज्य, प्रजा, सेना, कोष, धर्म, विद्या और श्रेष्ठ शिक्षा बढ़ानी चाहिए ।
यथाधर्माविद्या दुष्टशिक्षा दस्यु चौरादयो न वर्द्धेरन् तथा सततमनुष्ठेयम् ।	जिस प्रकार अधर्म; अविद्या, बुरी शिक्षा, डाकू, चोर आदि न बढ़ें वैसा निरन्तर करना चाहिए ।
धार्मिकैः सह कदापि न योद्धव्यम् ।	धर्मात्माओं के साथ कभी न लड़ना चाहिए ।
निर्जिता अपि दुष्टा विनयेन सत्कर्तव्याः ।	जीते हुए भी दुष्ट विनय से सत्कार-योग्य हैं ।
राजप्रजाजनाः प्राणवत् परस्परं सम्पोष्य सुखिनो भवन्तु ।	राजा और प्रजा प्राण के तुल्य एक दूसरे को पुष्ट करके सुखी रहें ।
कर्षिते क्षयरोगवदुभे विनश्यतः ।	निर्बल करने से क्षयरोगवत् दोनों नष्ट होते हैं ।
सदा ब्रह्मचर्येण विद्यया च शरीरात्म-बलं वर्धनीयम् ।	सदा ब्रह्मचर्य से और विद्या से शरीर-आत्मा का बल बढ़ाना चाहिए ।
यथादेशकालं पुरुषार्थेन यथावत् कर्माणि कृत्वा सर्वथा सुखयितव्यम् ।	देश-काल के अनुसार उद्यम से ठीक ठीक कर्म करके सब प्रकार सुखी रहना चाहिए ।

१०. वैश्य-व्यवहार-प्रकरणम् ।

वैश्याः कथं वर्तेरन् ?	बनिये लोग कैसे वर्तें ?
सर्वा देशभाषा लेखा-व्यवहारं च विज्ञाय पशुपालन क्रय विक्रयादि व्यापार कुसीद-वृद्धि कृषि कर्माणि धर्मेण कुर्वन्तः ।	सब देश-भाषा और हिसाब को जान कर पशुओंकी रक्षा लेनदेन आदि व्यापार ब्याज-वृद्धि और खेती कर्म धर्म से करते हुए ।

शब्द-सूची — पहले के १८७ में नये ९ जोड़ने से अब तक सब संस्कृत शब्द १९६ हुए ।

१७-१८. उकारान्त पुल्लिंग पशु और इकारान्त स्त्रीलिंग मति शब्द

पशु के समान भानु-शत्रु-रिपु-वायु-शिशु-दस्यु-गुरु-तरु-साधु आदि के रूप बोलो-लिखो । मति के समान रुचि-बुद्धि-मणि-गति-कटि-कृति-कृषि-हानि-श्रुति-स्मृति-उक्ति-युक्ति-मुक्ति-भक्ति-शान्ति-भूमि-समृद्धि-अंगुलि आदि के रूप चलेंगे, जिन्हें बोल और लिखकर याद करो ।

विभक्ति	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन	स्त्रीलिङ्ग एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	अर्थ
१	पशुः	पशू	पशवः	मतिः	मती	मतयः	मति, ने
२	पशुम्	,,	पशून्	मतिम्	,,	मतीः	को
३	पशुना	पशुभ्याम्	पशुभिः	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः	से ; के द्वारा
४	पशवे	,,	पशुभ्यः	मत्यै	,,	मतिभ्यः	के लिए
५	पशोः	,,	,,	मत्याः	,,	,,	से
६	,,	पश्वोः	पशूनाम्	,,	मत्योः	मतीनाम्	का, के, की
७	पशौ	,,	पशुषु	मत्याम्	,,	मतिषु	में, पर
सम्बोधन	हे पशो	हे पशू	हे पशवः	हे मते	हे मती	हे मतयः	

इसी तरह भानु के रूप (पश के स्थान पर भान कर के) बनाओ।

पठन् और यावान् के रूप

विभक्ति	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
१	पठन्	पठन्तौ	पठन्तः	यावान्	यावन्तौ	यावन्तः
२	पठन्तम्	,,	पठतः	यावन्तम्	,,	यावतः
३	पठता	पठद्भ्याम्	पठद्भिः	यावता	यावद्भ्याम्	यावद्भिः
४	पठते	,,	पठद्भ्यः	यावते	,,	यावद्भ्यः
५	पठतः	,,	,,	यावतः	,,	,,
६	,,	पठतोः	पठताम्	,,	यावतोः	यावताम्
७	पठति	,,	पठत्सु	यावति	,,	यावत्सु
सम्बोधन	हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्तः	हे यावन्	हे यावन्तौ	हे यावन्तः

इसी तरह कुर्वन्-चलन्-लिखन्-हसन्-खादन्-पिबन्-वदन् आदि के रूप चलेंगे।

वह शतृ (= अत् = अन्) प्रत्यय वर्तमान-कालिक कृदन्त प्रेजेंट पार्टिसिपिल है। अंग्रेजी में अन् के स्थान पर इंग लगता है जैसे गोइंग।

यावान् के समान तावान्-कियान् आदि के रूप बोल-लिखकर याद करो।

१०. धातु-रूप, आत्मनेपदी वर्त का विधि लिङ् [चाहिए]

प्रत्यय एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	रूप एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
एत	एयाताम्	एरन्	वर्त्तेत	वर्त्तेयाताम्	वर्त्तेरन्
एथाः	एयाथाम्	एध्वम्	वर्त्तेथाः	वर्त्तेयाथाम्	वर्त्तेध्वम्
एय	एवहि	एमहि	वर्त्तेय	वर्त्तेवहि	वर्त्तेमहि

अनुवाद रचना और अभ्यास

इसी तरह रम-वन्द-विद्-याच-यत-जाय-मन्य-लभ-सेव-सह के रूप बनाओ।

१- मैं गुरु-सेवा करूँ। २- छात्र कैसा व्यवहार करें ? ३- वे उसकी सेवा करें। ४- तुम्हें नहीं माँगना चाहिए। ५- हम ईश्वर के लिए वन्दना करें। ६- संसार में आर्य बढ़ें।

अथर्ववेद काण्ड १२ प्रपाठक २७ अनुवाक ३ सूक्त ३

३४४२ जल पवित्र किरणों से शुद्ध हो कर मेघ से द्यौ-पृथिवी और अन्तरिक्ष लोकों को जाते हैं, उन जीवनप्रद, जीवों के लिए धन्य; कुम्भी-पात्र में डाले-रक्खे हुओं को आग पकाये। २५

४३ जल के समान आप्त जन द्यो से पृथिवी और वहाँ से अन्तरिक्ष में एकत्र होते हैं। वे शुद्ध होते हुए ही शोभित होते और पवित्र करते हैं। वे हमें सुखमय लोक को ले जायँ। २६

४४ और वे ही बहुत समर्थ तथा सम्यक् सम्मानित-दीप्त-पवित्र-अमृत-प्रशिष्ट-ऐश्वर्यशाली जल और आप्त जनो! शिक्षा देते हुए तुम पति-पत्नी के लिए ओदन (भात और सामर्थ्य) को परिपक्व करो। २७

४५ समान प्रसिद्ध-गिने-चुने जल-बिन्दु और आप्त-जन पृथिवी पर आते हैं वे प्राण-अपान और ओषधियों से सम्बद्ध होते हैं, किन्तु असंख्य, सुन्दर वर्ण के पवित्र जल-बिन्दु और आप्त यथाविधि फैलते हुए सब पवित्रता फैलाते हैं। २८

४६ जल पात्र में गरम होकर उबलता-फुदकता, फेन-बूँदें फैंकता है और चावलों के साथ मिल जाता है, जैसे पति को देख कर पत्नी ऋत्वनुकूल होती है। आप्त जन भी विद्वानों से मिलकर रहें। २९

४७ इन नीचे स्थितों को ऊपर उठा, वे आपः के साथ अपने को मिला दें। यह उदक(जल-विद्वान्) पावों द्वारा, और इन दिशाओं में स्थित तण्डुल(चावल-साधारण जन) भी नाप(जान)लिये जायँ। ३०

४८ फरसा-हँसिया पकड़, उषा काल में ले आ, ओषधियों को हानि न पहुँचाते हुए जोड़पर काटें जिनका राजा सोम है वे ओषधियाँ हमें मन्यु लाने वाली न हों। ३१

४९ नया आसन ओदन के लिए बिछाओ जो हृदय को प्यारा, आँखों को सुन्दर लगे, उस पर विद्वान् विदुषियों के साथ घुसें और बैठ कर ऋत्वनुकूल इसे खायें। ३२

५० हे सेवनीय राष्ट्र के विद्वान् गृहपति! तू बिछाये आसन पर बैठ; तेरा सम्मान अग्निष्टोम यज्ञों से विद्वान् करें, मैं भोजन-पात्र पर बैठे इस और इसके सहयोगियों को वैसे ही देखूँ जैसे शिल्पी वसुली आदि से बनायी सुन्दर वस्तु को देखता है। ३३

५१ ज्ञान-निधि-रक्षक आयु के ६० वें वर्ष में अपने परिपक्व ज्ञान से सुख-भोग की इच्छा करे, इसके माता-पिता-पुत्र आदि इसके पास जियें, हे ईश, इसे अग्नि के अनन्त सुख के लोक भेज। ३४

५२ तू राष्ट्र-धर्ता हो कर पृथिवी को धारण कर, अङ्गिरस तुझे विद्वान् विरत करें, उस तुझे जीवित पुत्र वाले पति-पत्नी अग्न्याधान से छुड़ा दें। ३५

५३ तू सब लोक जीत कर आ; जितनी कामनाएँ हैं उन्हें पूरा कर, तेरे चमचा-करछी (सङ्गठन-सैन्य-बल) विशेष विचरण करें; एक पात्र(बरतन-पद) में इसे रख। ३६

५४ आसन को बिछा, पूर्व की ओर फैला, इस पात्र को घी (प्रेम) से भर। जैसे दुधारी गौ दूध पीने के अभिलाषी छोटे बच्चे को देख कर रम्भाती, हिं-हिं करती है वैसे ही इस नये वीर को देख कर विद्वान् जन हर्ष-सूचक नारे लगायें, साम-गान करें। ३७

३४५५ तू इस लोक को बनाता और कर्मों को फैलाता है, यह अनुपम स्वर्ग (गृहस्थ और राष्ट्र) विशाल रूप में विस्तृत हो, उसमें एक महान् उत्तम पोषक आचार्य आश्रय ले। विद्वान् उसको विद्वानों के लिए सौंप दें। ३८

३४५६ यद्यज्जाया पचति त्वत् परः परः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥ ३९

५७ यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये सं बभूवुः ।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥४०

५८ वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास् ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥ ४१

५९ निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस् त्रिभिः काण्डैस् त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥ ४२

६० अग्नी रक्षस् तपतु यद् विदेवङ्क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥ ४३

६१ आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदङ्घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥ ४४

६२ इदं प्रापमुत्तमङ्काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥ ४५

६३ सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ॥ ४६

६४ अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रो ऽन्वारभेथां वय उत्तरावत् ॥ ४७

६५ न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः समममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥ ४८

६६ प्रियं प्रियाणाङ्कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥ ४९

६७ समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्यातपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ॥ ५०

३४६८ एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथो ऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ॥ ५१

३४५६ हे पति! जो जो कुछ पत्नी तुझ से अलग अलग रह कर पकाये (शक्ति बढ़ाये,) और हे पत्नी! जो पति तुझ से छिपा कर पकाये खाये उसे तुम दोनों मिला दो, मिल कर बनाओ, यह कार्य तुम दोनों का एक (गृहस्थ-वानप्रस्थ) लोक बनाते हुए साथ में हो। ३९

५७ इस से और मुझसे उत्पन्न जितने पुत्र पृथिवी पर पैदा-जीवित हों उन सब को एक भोजन-पात्र पर बुलाया करो और बच्चे जन्म-बन्धु-केन्द्र-सम्बन्ध को जानते हुए आया करें। ४०

५८ वसु (दूध-जीवात्मा-पृथिवी-धन) की जितनी धाराएँ मधु (शहद-मधुरता-विज्ञान) से भरी घी (प्रेम) से मिश्रित अमृत की केन्द्र हैं उन्हें स्वर्ग (सुखमय ओदन-गृहस्थ-राष्ट्र) धारण करता है, वह निधि का पालक उसे ६० वर्ष में पाने की इच्छा करे। ४१

५९ इस निधि को निधिपा खोजे, जो अन्य चारों ओर हों वे अनधिकारी हों। हमारे द्वारा दिये और रक्षित स्वर्ग तीन काण्डों से (क्रम गेय साधनों, व्यवस्थाओं, बाल-युवा-वृद्धों के लिए तीन क्षेत्रों से, ऋग् यजुः साम तीन प्रकार के मन्त्रों से क्रमशः तीन ज्ञान-कर्म-उपासना काण्डों से; उत्तम-मध्यम-अधम भेद से, तीन ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य वर्णों से, मानसिक-वाचिक-शारीरिक कर्मों से) तीन स्वर्गों (आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक, ब्रह्मचर्य अथवा गृहस्थ और वानप्रस्थ-संन्यास) पर चढ़ता है। ४२

६० अग्नि (ईश्वर-ज्ञान-वेद-ब्राह्मण-राजमन्त्री) उस राक्षस (दुष्ट विचार-रोगक्रिमि-दुष्ट) को नष्ट करे जो विद्वानों के विरुद्ध हो। मांस-भक्षी कुविचार-रोग-दुष्ट-शत्रु यहाँ न पहुँच सके, हमारा रक्त न पिये, हम उसे अपने से दूर करें, उसका मार्ग रोक दें, आदित्य ब्रह्मचारी और अग्नि-विद्या के ज्ञाता वैज्ञानिक इसे वश में रक्खें। ४३

६१ आदित्य-अङ्गिराओं के लिए यह घी-मिला शहद (और प्रेम-युक्त ज्ञान) देता हूं। हे पति-पत्नी! तुम दोनों पवित्र हाथों (कर्मों) वाले सुकृती होकर वेदज्ञ की हिंसा न करते हुए इस स्वर्ग को प्राप्त करो। ४४

६२ मैं इस जीवन के उस उत्तम काण्ड को प्राप्त करूँ जिस लोक से परमात्मा मिलता है। तू घी-युक्त मधु सींच, शरीर कान्ति-युक्त कर, हे अङ्गिराओ! यहाँ हमारा यह भाग है। ४५

६३ सत्य-तप के लिए हम इस निधि को विद्वानों के लिए देते हैं, यह द्यूत-समिति और युद्ध में नष्ट न हो, मेरे सामने यह अन्य (शत्रु) के लिए न देना। ४६

६४ मैं पकाता-देता हूं; मेरे ही इन करुण कर्म में पत्नी सम्मिलित हो। लोग कुमार पुत्र के तुल्य हों, हे पति-पत्नी! तुम दोनों उत्तम जीवन बनाये रक्खो। ४७

६५ यहाँ कोई पाप और आधार नहीं है कि जिससे यह मित्रों के साथ मान-रहित हो। यह हमारा पात्र भरपूर रहे, जिसमें पका भोजन पक्ता के पास फिर आ जाये। ४८

६६ हम प्रियों का प्रिय करें; जो द्वेष करें वे अन्धकार में जायें। गो-बैल-अनेक अन्न आते रहें वे पुरुषों पर आयी मौत को पीछे धकेल दें। ४९

६७ वे अग्रणी उन एक दूसरे को जानें जो औषधियों के साथ और जो नदी-समुद्र-मेघों के साथ सम्बद्ध हैं। जितने द्योतित प्राकृतिक देव नक्षत्र-सूर्य द्यौ में तपते हैं उनकी सुनहरी ज्योति पाचक-परिपक्व (दानी) जन की हो जाती है। ५०

६४६८ त्वचाओं की यह त्वचा (वस्त्र) पुरुष में है, जो अन्य पशु हैं वे सब नग्न नहीं कहाते। तुम दोनों अपने तन को रक्षार्थ वस्त्र से ढाँको, घर-बुना वस्त्र ओदन से मुख्य है। ५१

३४६९ यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या
समानं तन्तुमभि सं वसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ॥ ५२

७० वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥ ५३

७१ तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम्
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥ ५४

७२ प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५

७३ दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते । ० [पूर्ववत्] ५६

७४. प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते । एतं ० ,, ॥ ५७

७५. उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै । ० ,, ॥ ५८

७६ ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।,,५९

३४७७. ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते । ० ,, ॥ ६०

अनुवाक ४ सूक्त ४

वशा-शब्दार्थादि-पदार्थ विद्या (द० स०)

३४७८. ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत्प्रजावदपत्यवत् ॥ १

७९. प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥ २

८०. कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
वण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३

८१. विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४

८२ पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५

८३ यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥ ६

३४३१ हे स्त्री-पुरुषो ! तुम धन-कामना से जो असत्य अभियोगों और समितियों में बोलते हो उस म सब मल को, समान तन्तु (ईश्वर-यज्ञ-वस्त्र) का रखने वाले होकर, दूर कर दो। ५२

७० तू सुख-वर्षा की याचना कर, विद्वानों के पास जा, त्वचा से मैल हटा, विश्व म प्रसिद्ध और तेजस्वी होना चाहता हुआ समान घर पाकर इस लोक में गति कर। ५३

७१ सुख-गामी यथार्थ ज्ञानी अपने में शरीर को बहुधा विशिष्ट बनाता है। काला ताम सी शरीर जीतता और चमकती सात्विक ज्योतिष्मती प्रज्ञा पाता हुआ मैं लाल रजोगुणी शरीर को ज्ञानाग्नि में भस्म करता हूं। ५५

३४७२-७७(६ मन्त्र)— इस तुझे पूर्व दिशा, अग्नि अधिपति, असित (सूर्य का काले धब्बे वाला भाग) रक्षिता (सेनापति), और किरण-प्राण रूपी इषु पृक्षेप्यास्त्र)वाले आदित्य के लिए सौंपते हैं। दक्षिण दिशा के लिए, इन्द्र(वायु) अधिपति, तिरछो किरणों के (वायु-मण्डल-चक्र रूपी) रक्षिता, ऋतु-इषु वाले यम(काल) के लिए; पश्चिम के लिए वरुण (जल) अधिपति, पृदाकु(पालक चन्द्र का बरफीला भाग) रूपी रक्षिता, अन्न-इषु वाले के लिए, उत्तर दिशा के लिए अधिपति साम(नक्षत्र-मण्डल); स्वज (चिपटने वाले चुम्बक) रक्षिता, बिजली इषु वाली के लिए; नीचे की दिशा में विष्णु (व्यापक धूल वाली पृथिवी) अधिपति, चितकबरी गरदन वाला भूगर्भ का अग्निमय तत्त्व रक्षिता, औषधि-अन्न रूपी इषु वाली के लिए, और उपरि दिशा में बृहस्पति (वाष्पमेघमय आकाश) अधिपति, सफेद कुष्ठ-समान सफेद तारा-मण्डल और बिजली रक्षिता, वर्षा-इषु वाली के लिए तुझे सौंपते हैं तुम हमारे जीवन की रक्षा करो, ईश्वर हमारे प्रारब्ध जीवन को बुढ़ापे तक ले जाए; बुढ़ापा मौत के लिए दे दे; और तब हम पक्व-अन्न के साथ फिर जन्म लें। ५५-६०

[अथर्व वेद ३-२७ मनसा-परिक्रम -मन्त्रों में भी लगभग ऐसा ही वर्णन है।] ❀

काण्ड १२ में सूक्त ३ समाप्त हुआ।

अनुवाक सूक्त ४ वशा

सूक्त ४। वशा (कमनीय-कान्तियुक्त-वशकर्त्री वेदवाणी-भूमि-गौ)

३४७८ वशा (वेद-वाणी, गौ)को माँगने वाले ब्रह्मचारियों से 'देता हूं' यही कहे, और जो इसे अनुकूल जानता है वह अच्छी प्रजा-सन्तान-युक्त होता है। १

७९ जो याचक ऋषि-सन्तानों को देवों की गौ नहीं देना चाहता वह प्रजा के साथ बिकता और पशुओं के साथ नष्ट होता है। २

८० इसके घर कूट-नीति से नष्ट होते; लकड़ी नीति से वह गड्ढे में दुःख भोगता; लोभ-नीति से घर जलते, कानी-नीति (ध्यान न देने) से धन नष्ट होता है। ३

८१ शक्ति के अधिष्ठान से और मल के रुकने से गो-पति को पीलिया मिलता है, वैसा वशा का स्वरूप है कि हे वशा ! तू दुरदभ्ना (कठिनता से दबायी जाने वाली) कही जाती है। ४

८२ इसके पैरों के स्थान में छाजन होता, जो मुख से सूँघे तो प्रजा अनजाने नष्ट होती है। ५

३४८३ जो इसके कान छेदता है वह मानो देवों को छेदता है। जो यह मानता है कि मैं तो चिह्न बना रहा हूं वह अपने को छोटा कर लेता है। ६

३४८४ यदस्याः कस्मैचिद भोगाय बालान् कश्चिद् प्र कृन्तति ।
तत: किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥ ७

८५ यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥ ८

८६ यदस्याः पल्पूलनं शकृद्दासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥ ९

८७ जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥ १०

८८ य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां नि प्रियायते ॥ ११

८९ य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानाङ्गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२

९० यो अस्य स्याद्वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥ १३

९१ यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४

९२. स्वमेतदच्छायन्ति यद्वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥ १५

९३. चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६

९४ य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७

९५ यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद्वशाम् ॥ १८

९६ दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥ १९

३४९७ देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २०

३४८४ जो कोई लाभ के लिए इस के बाल काटता है [बाल की खाल निकालता है] तो उस के किशोर मरते हैं और भेड़िया बच्चों को मारता है। ७

८५ यदि दुष्ट कौआ गोपति की सती वाणी का लोम नोंचता है तो कुमार मरते हैं और यक्ष्मा रोग अन-जाने पकड़ता है। ८

८६ यदि दासी (प्रजा) इनके काटने वाले जहरीले गोबर को इधर-उधर फेंक दे तो स्थान गन्दा हो जाता है और उस अपयश से वह नहीं छूटता। ९

८७ उत्पन्न होती हुई वशा ब्राह्मण-सहित देवों का लक्ष्य कर प्रकट होती है अतः यह ब्राह्मणों के लिए देय है, इसको धन की रक्षा कहते हैं। १०

८८ जो इस सेवनीया के पास आते हैं उनकी वशा ईश्वर-कृत है। जो इसको अपनी ही प्रिया समझे तो यह ब्रह्म-घातिनी कहाती है। ११

८९ जो देवों को गौ को याचक ऋषि-सन्तानों को नहीं देना चहाता वह देवों पर आघात करता और ब्राह्मणों का मन्यु-भाजन होता है। १२

९० जो इस राजा का वशा से निजी लाभ हो तो वह अन्य रीति अपनाए। जो माँगी हुई को नहीं देना चाहता उसे वह न दी गयी मार डालती है। १३

९१ जैसा कोई खजाना धरोहर हो वैसे वशा ब्राह्मणों की है। जिस किसी पर वह होती है वहाँ मनुष्य आते हैं। १४

९२ यदि ब्राह्मण वशा का लक्ष्य कर आते हैं तो अपना धन समझ कर। इस का रोकना ऐसा है कि जैसा इन्हें अन्य अपराध में हानि पहुँचाना। १५

९३ हे नर-सुधारक विद्वान्! निर्दोष वशा तीन वर्षों तक अज्ञात विचरती ही रहे। जब जान ले तब वेद-इच्छुक अन्वेषण करने चाहिए। १६

९४ जो नियम से देव-रक्षित इस निधि को अवशा (बुरी) कहे उस पर दोनों भव-शर्व (प्राण-अपान, प्रधानमन्त्री-सेनापति) घेर कर वाण फेंकते हैं। १७

९५ जो इसके अयन-स्तन नहीं जानता वह यदि वशा को दे सके तो वह इस के लिए दोनों से दूध दुहाती है। १८

९६ जो मांगी गयी इसे देना नहीं चाहता इसके पास यह द्वार तोड़ने वाली, कठिनता से दबायी जानेवाली वशा सोती रहती है। जिसे न देकर कार्य करना चाहता है उसकी कमना पूरी नहीं होती। १९

३४९७ विद्वान् वेदज्ञ को मुख्य बनाकर वशा माँगते हैं। उन सब के लिए न देता हुआ मनुष्य क्रोध-अनादर पाता है। २०

३४९८ हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्यो ऽददद्वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१

३४९९ यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२

३५०० य एवं विदुषे ऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद्वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३

३५०१ देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४

२ अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५

३ अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥ २६

४ यावदस्या गोपतिर्नोप शृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥ २७

५यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः॥२८

६वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः।आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति॥२९

७आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति।अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञाय कृणुते मनः॥३०

८. मनसा सङ्कल्पयति तद्देवाँ अपिगच्छति । ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥ ३१

९ स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः। दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति॥३२

१०वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः । तस्या आहुरनर्पणं यद्ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३३

११यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत्स्रुचो अग्नये। एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत्॥३४

१२ पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोके ऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान्वशा प्र ददुषे दुहे ॥ ३५

१३ सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्र ददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥ ३६

१४ प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥३७

१५यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम्।अप्यस्य पुत्रान्पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः॥३८

३४९८ वेदज्ञों के लिए वशा न देता हुआ पशुओं का भी अनादर पाता है यदि मनुष्य विद्वानों का सुरक्षित धन अपना निजी बनाता है २१

९९ यदि अन्य सैकड़ों ब्राह्मण राजा से वशा को माँगें तो देव (विद्वान्) कहें कि ऐसी तो वशा विद्वान् की ही है । २२

३५०० जो ऐसे विद्वान् के लिए न देकर वशा अन्यों के लिए देता है तो उसके लिए देवता-सहित पृथिवी उसके स्थान पर दुर्गम बन जाती है । २३

३५०१ विद्वान् उससे वशा माँगता है जिसमें यह पहले प्रकट होती है । उस इसको नर-शोधक यदि जान ले कि यह दिव्य गुणों के साथ उदय हुई है तो वह राष्ट्र-देवों के साथ उन्नत होता है । २४

२ जो वेदज्ञों-द्वारा माँगी इसे निजी बनाता है उस पुरुष को वशा सन्तान-रहित और कम पशुओं वाला कर देती है । २५

३ वेदज्ञ अग्नि-सोम-कामना-मित्र-वरुण की वृद्धि के लिए वशा माँगते हैं, जिसे न देता हुआ उन पर आघात करता है । २६

४ जब तक इसकी ऋचाएँ गोपति स्वयं न सुन ले तब तक वह इनके स्तोताओं में विचरे, सुनकर इसके घर में न रहे । २७

५ जो इसकी ऋचाएँ सुनकर भी इन्द्रियों में विचरता है उसकी आयु और सम्पत्ति को अनादृतता विद्वान् काट देते हैं । २८

६ वशा बहुधा विचरती हुई विद्वानों की सुरक्षित निधि है । (हे वशा), तू रूपों को प्रकट कर जब कि वह अपना स्थान नष्ट करना चाहता है । २९

७ जब वह स्थान नष्ट करना चाहता है तब यह अपने को प्रकट करती है । तभी र वेदज्ञों के लिए याचनार्थ मन करती है । ३०

८ जब वशा मन से सङ्कल्प करती है तब वह विद्वानों के पास भी जाती है, तभी वेदज्ञ उसे माँगने जाते हैं । ३१

९ राजा पितरों के लिए अन्न-दान से, देवताओं के लिए यज्ञ-दान से वशा-माता का अनादर-क्रोध नहीं पाता । ३२

१० वशा राजा की माता है यह आगे से निश्चित है । जो वेदज्ञों को दी जाती है इसे उसका अदान ही कहते हैं । ३३

११ जैसे अग्नि के लिए लिया घी चमची से गिर जाये वैसे ही विद्वानों को अग्निहोत्र के लिए वशा न देता हुआ अपने को अलग कर लेता है । ३४

१२ पुरोडाश रूपी वत्स वाली, सुखदा वशा लोक में इसके साथ रहती है, वह इस दाता की सब कामनाएँ दुहाती (देती) है । ३५

१३ नियामक-राज्य में वशा दाता की सब कामनाएँ पूरी करती है । और माँगी हुई को न देने वाले के लिए नरक लोक बताते हैं । ३६

१४ सत्य-गर्भ वाली वशा गोपति पर क्रुद्ध होती विचरती है कि मुझे गर्भ-घातिनी मानता हुआ मौत के फन्दों में बाँधा जाय । ३७

३५१५ जो वशा को गर्भ-घातिनी मानता हुआ घर में बड़ा होने देता है इसके पुत्र-पौत्रों को परमात्मा भिखारी बना देता है । ३८

३५१५ महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि । अथो ह गोपतये वशाददुषे विषदुहे ।। ३९
१७ प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यःप्रदीयते । अथो वशायास्तत्प्रियं यद् देवत्रा हविःस्यात्।।४०
१८ या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य । तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ।। ४१
१९ ता देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति । तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ।। ४२

२० कति नु वशा नारद यास् त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसङ्कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ।। ४३

२१ विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा।तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम्४४
२२ नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा । कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ।। ४५
२३ विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा । तस्या ० [शेष ४४ के समान] ।। ४६
२४त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा।ताःप्रयच्छेद्ब्रह्मभ्यः सोनाव्रस्कःप्रजापतौ४७
२५ एतद्वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः । वशां चेदेनंयाचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ।। ४८
२६ देवा वशां पर्यवदन्न नोदादिति हीडिताः।एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद्वै स पराभवत्।।४९
२७उत तां भेदो नाददात् वशामिन्द्रेण याचितः। तस्मात्तं देवा आगसोवृश्चन्नहमुत्तरे ।। ५०
२८ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः।इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आवृश्चन्तेअचित्तया।।५१
२९ ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति । रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परियन्त्यचित्तया ।। ५२

३५३० यदि हुतां यदहुताममा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ।। ५३

सूक्त ५

७ पर्यायों का ७३ मन्त्रों का सूक्त ५, पर्याय १ में ६ मन्त्र । ब्रह्म-गवी (वेदवाणी-गौ)

३५३१ श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता ।। १
३२ सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ।। २
३३ स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ।। ३
३४ ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ।। ४
३५ तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ।। ५
३६ अप क्रामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः ।। ६

पर्याय २ में ५ मन्त्र

३७ ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियञ्च श्रीश्च धर्मश्च ।। ७
३५३८ ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणञ्च ।। ८

३५१६ स्तोताओं में विचरती हुई यह वेदवाणी भी तप्त होती है और न देने वाले गोपति को विष ही दुहाती है। ३९

१७ यदि वशा वेदज्ञों को दी जाये तो पशुओं का प्रिय होता है और उसे भी यह प्रिय है कि देवों को हवि हो। ४०

१८ विद्वान् यज्ञ से उठ कर जिन वशाओं की कल्पना करते हैं उनमें नर-शोधक भयंकर विलिप्ती (न्यास-सम्बन्धी लेप-रहित वेद-वाणी) को उत्तम मानता है। ४१

१९ विद्वान् उसकी मीमांसा करते हैं कि वह वशा (कमनीया) है या अवशा। उसे नर-शोधक बताये कि यह विलिप्ती वशा (वेदवाणी) वशाओं में सबसे अधिक वशा (कमनीय-सुन्दर) है। ४२

२० हे नर-शोधक, मनुष्यार्थ वशाएँ कितनी हैं जिन्हें तू जानता है ? अब्राह्मण किसे न खाये (पढ़े) ? यह तुझ ज्ञानी से पूछता हूं। ४३

२१ हे बृहस्पति, विलिप्ती-सूतवशा-वशा ये तीन वशाएँ हैं, सम्पत्ति-इच्छुक उस विलिप्ती को न पढ़े।

२२ हे नर-शोधक ! तुझे नमः, वशा अनुष्ठाता विद्वान् के लिए है, इनमें कौन सी सबसे अधिक भयानक है जिसे न देकर पराभव पाता है। ४५

[३५२३ वें मन्त्र का अर्थ २१ के समान है। ४६]

२४- वशा के तीन भेद हैं- विलिप्ती-सूतवशा-वशा. उन्हें ईश्वर में दृढ़ वह वेदज्ञों को दे।(सैंतालीस)

२५ हे ब्राह्मणों! यह तुम्हारी भेंट है याचित यह माने यदि वे इसे माँगें जो अदानीके घरमें भयानक है।

२६ हमें न दा अतः क्रुद्ध विद्वान् वशा से कहें कि इन ऋचाओं से भेद किया अतः वह पराभूत हो।

२७ राजा से याचित भेदी जब वशा न दे तो उसे अपराध से विद्वान् युद्ध में काट दें। ५०

२८ जो परामर्शक वशा न देने को कहें वे दुष्ट अज्ञान के कारण सम्राट् के मन्यु से काटे जायें। ५१

२९ जो गोपति को दूर ले जाकर कहते हैं कि न दे वे अज्ञान के कारण रुद्र-फैंका वज्र पाते हैं। ५२

३०- यदि कुटिल दी, न दी वशा घर में तपाता है तो वह ब्राह्मण-सहित विद्वानों को कष्ट देकर लोक से निकाला जा कर कष्ट भोगता है। (५३)

अनुवाक सूक्त ५ ब्रह्म गवी

विषय- धर्मादेशादि पदार्थविद्या, ब्रह्मविद्यादि अग्न्यादि, दुष्ट-ताडनादि पदार्थ विद्या (म०द०स०)

पर्याय १। ६ मन्त्र- ३१ श्रम-तप से ईश्वर के बनाये तुम वित्त-ऋत पर आश्रित होओ। १

३२ तुम सत्य-श्री-यश से सब प्रकार घिरे रहो। २

३३ तुम अपनी धारण-शक्ति, श्रद्धा से युक्त, दीक्षा से रक्षित; यज्ञ में प्रतिष्ठित हो,लोक निधन है।३

३४ ईश्वर-वेद पदार्थ-बोधक और उनका ज्ञाता रक्षक है। ४

३५-३६ उस ब्रह्म-गवी को लेने वाले, ब्राह्मण-हिंसक क्षत्रिय को वाणी-वीर्य-लक्ष्मी छोड़ देते हैं। ५-६

पर्याय २। ५ मन्त्र

३७-३८ ओज-तेज-सह-बल-वाणी-इन्द्रिय-श्री-धर्म-ब्रह्म-क्षत्र-राष्ट्र-वैश्य-कान्ति-यश-वर्च-धन सब उस से दूर चले जाते हैं। ७-८

३५३९ आयुश्च रूपञ्च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ९

४०.पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजाश्च पशवश्च ॥१०

४१. तानि सर्वाण्यपक्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ११

पर्याय ३ । १६ मन्त्र

४२. सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥ १२

४३ सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ १३

४४ सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ १४

४५ सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥ १५

४६ मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ १६

४७ तस्माद् वै ब्राह्मणानाङ्गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ १७

४८ वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ १८

४९ हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवोऽपेक्षमाणा ॥ १९

५० क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २०

५१ मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१

५२ सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ २२

५३ मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ २३

५४ सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ २४

५५ शरव्या मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ २५

५६ अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६

५७ अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ २७

पर्याय ४ । ११ मन्त्र

५८ वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ २८

५९ देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥ २९

६० पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३०

६१ विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ३१

६२ अघं पच्यमाना दुःष्वप्न्यं पक्वा ॥ ३२

६३ मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥ ३३

३५६४ असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥ ३४

शतपथ ब्राह्मण कांड ६, अध्याय ४ (३९) ब्राह्मण १

[मिट्टी खोदना, काला मृग-चर्म बिछाना और कमल-पर्ण रखना]

अब इससे खोदता ही है जैसे देवों ने जान कर खोदा था वैसे ही यह अध्वर्यु खोदता है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि। यजु ११-२८

सविता से प्रेरित होकर ही यह इस पशु-हितकारी अग्नि को इन देवताओं द्वारा पृथिवी के पास से अग्नि-समान खोदता है। १

ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्यतम्। शिवं प्रजाभ्योऽहिंसन्तं पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामः॥ यजु ११-२८

हे अग्नि! ज्योति-युक्त, सुन्दर प्रतीक वाले, लपट से निरन्तर दीप्यमान, कल्याणकारी, प्रजा की हिंसा न करने वाले तुझ पशु-पालक बिजली को हम पृथिवी के पास से अग्नि-समान खोदें। २

दो मन्त्रों से खोदता है क्योंकि यजमान दुपाया है जो अग्नि है। जितनी अग्नि य उसकी मात्रा है इतनी से ही उसे खोदता है। २ दो रूप हैं- मिट्टी और पानी। ३

खनामि - खनामः इसलिए कहा कि पहले एक प्रजापति और अनेक देवों ने खोदा था। ४

यह बीच की दनी अभ्रि से खोदता हुआ वाणी से खनन की बात कहता है। वाणी ही अभ्रि है उसी से देवों ने खोदा था उसी से यह खोदता है। ५

अब इसे काले चर्म पर रखता है। यज्ञ काला चर्म है; यज्ञ पर ही इसे लोमों पर रखता है जो छन्द हैं अतः मानो छन्दों पर ही इसे रखता है। उसका मान उपस्तरण करता है। यज्ञ काला चर्म, प्रजापति यज्ञ अनिरुक्त उत्तर की ओर। शेष सरल है। पूर्व-ग्रीवा में वह देव-सहित है। ६

अब इसे कमल-पत्र पर रखता है जो योनि है मानो उत्पादक वीर्य सींचता है। उसका मन्त्र = वाणी = पुष्कर-पर्ण से उपस्तरण करता है— ७

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्।
वर्धमानो महाँ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व॥ य ११.२९

यह बिजली जल की पीठ; अग्नि की योनि, समुद्र के सब ओर सींचती हुई अन्तरिक्ष में बढ़ती बड़ी शक्ति आदित्य की मात्रा द्वारा महिमा से बढ़े, द्यौ होकर इसे महत्ता दे। ८

उसके उत्तर में काले चर्म से उपस्तरण करता है। यज्ञ-यह पृथिवी काला चर्म है; जिस पर यज्ञ फैलाया जाता है, द्यौ-आपः कमल-पत्र है; यह उससे बड़ा है। ९ [अथ प्रपाठक ५७]

अब दोनों का अभिमर्शन करता है, नाम रखता है—

शर्म च स्थो वर्म च स्थो अच्छिद्रे बहुले उभे। व्यचस्वती संवसाथां भृतमग्निं पुरीष्यम्॥ य ११.३०
संवसाथां स्वर्विदा समीची उरसा त्मना। अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित्॥ -३१

हे स्त्री-पुरुषो! तुम घर-कवच; दोनों निर्दोष-बनी, अवकाश-युक्त होकर पालक अग्नि धारण करो। १०
सुखी, सम्यक् ज्ञानी-पालक होकर ज्योतिष्मान् अग्नि को अन्दर अन्तःकरण-आत्मा से सदैव ढांको। ११

दो से अभिमर्श करता है। दुपाया यजमान-अग्नि जितना है, जितनी उसकी मात्रा है उतने से ही दो से यह संज्ञा करता है; और दो ही ये रूप हैं- काला चर्म और कमल-पत्र। १२। ब्राह्मण १ पूर्ण।

ब्राह्मण २

मृत्पिण्ड का अभिमर्शन आदि

अब मिट्टी के पिण्ड का अभिमर्शन करता है—

पुरीष्यो असि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने।

हे अग्नि ! तू पशुओं में उपयोगी, विश्व-पोषक है; तुझे पहले प्राण ने मथा था वह तू है। १

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ यजु ११-३२

यह पढ़कर उसे अभ्रि और दाहिने हाथ से उत्तर की ओर लेता है। हे आग ! तुझे पहले अथवा प्राण ने सब के सिर के समान पुष्कर जल से मथा। २

तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ यजु ११-३३

पाप-नाशक, शत्रु-पुर-विदारक तुझ को प्राण के पुत्र दध्यङ् वाणी ने दीप्त किया। ३

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम्। धनञ्जयं रणे रणे ॥ य ११.३४

रण-रण में धन-विजयी दुष्ट-हन्ता तुझे पथ-हितकारी बली मन उस जल से दीप्त करता है। यह जैसा यजु है वैसा सरल है। ४

गायत्री प्राण है। इन तीन गायत्री छन्दों से इस यजमान में प्राण-अपान-व्यान तीन प्राण धारण कराता है। उन के नौ पाद नौ प्राण हैं- ७ सिर के, दो नीचे के, उन्हें ही इस में रखता है। ५

अगले दो त्रिष्टुप् (आत्म-रूप) छन्दों से इसकी आत्मा का संस्कार करता है—

सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ।
देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥
नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत् सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ यजु ११.३५-३६

हे होता अग्नि ! तू जानता हुआ अपने लोक काले चर्म पर बैठ, यज्ञ को सुकृत के स्थान काले चर्म पर बिठा; हे देव-रक्षक अग्नि ! हवि से देवों का यजन कर, यजमान के लिए बड़ी आयु धारण करा। यह यजमान के लिए आशीर्वाद माँगता है। ६

होता के सदन-काले चर्म पर जानता हुआ होता-अग्नि तेजस्वी- दीप्त-सुदक्ष; तीव्र व्रत-बुद्धि-युक्त अति समीप रहने वाला; सब का पोषक, पवित्र वाणी वाला होकर बैठे। इन दोनों आग्नेयी-त्रिष्टुपों का प्रयोजन बता दिया सरल है। ७

अब अगली बृहती उत्तम है, उससे यह बृहत् सञ्चित होता है। क्योंकि जैसा योनि में वीर्य सींचा जाता है वैसा पैदा होता है। ८

संसीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः। विधूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ य ११.३७

यहां ऊंचे वीर्य को बैठाता है। हे प्रशंसनीय अग्नि ! स्थित हो, तू महान् है, विद्वानों से कमनीय तू दीप्त बन। हे दुष्ट-नाशक, तू धूम-रहित चमक फैंक, अच्छा दर्शनीय रूप बना। ९

ये ५ मन्त्र हुए। ५ ऋतुओं का संवत्सर = अग्नि है। वह या उस की मात्रा जितनी है उतनी वह है। यह ३६ की बृहती है जिस में १२ पूर्णिमा-अष्टका-अमावास्या है, उसे दक्षिण से उत्तर ले जाता है। दक्षिण से ही उत्तर योनि में रेतः-सिञ्चन किया जाता है। यहाँ भी विच्छेद नहीं होता। १० ॐ

ब्राह्मण ३

[जल का निनयन आदि।] आगे मन्त्र यजु अध्याय ११ के हैं।

अब वहाँ जल छिड़कता है या इस पृथिवी के खोदने से जो क्षत होगया था वह जल से भरता है-। १

अपो देवीरुप सृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः॥ यजु ३८

रस-वाले मीठे दिव्य जल को सिद्ध करो, इन के होने से प्रजा की नीरोगता के लिए सुन्दर फल-वाली औषधियाँ मिलें। २

अब इस का क्षत वायु से भरता है-। ३ [काण्ड का आधा २६५]

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्।
यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम्॥ य ३९

(पति-वायु पत्नी-पृथिवी से-) विस्तृत तेरा जो हृदय विकसित हुआ उसे आकाशस्थ वायु ठीक करे। (पत्नी पति से-) हे देव प्रजापति! जो तू देवों के प्राण से चलता है उस सुखरूप तेरे लिए वषट् हो। ४

अब इसका सन्धान दिशाओं से करता है। इस-इस आगे-आगे की दिशा से चिकित्सा करता है। ५

अब काला चर्म और वह कमल-पत्र लेता है जो योनि है जिससे सिंचित वीर्य लिया जाता है-

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः।
वासो अग्ने विश्वरूपं संव्ययस्व विभावसो॥ य ४०

अच्छा उत्पन्न यह ज्योति के साथ वरणीय घर का सुख पाये। ६
हे अग्नि (गृहस्थ)! तू विविध रूप के वस्त्र धारण कर।

यह कहकर उसे पहनाता है। योनि में उस वीर्य को युक्त करता है, मूज के तिलड़े योक्त्र से योग्य का युक्त करते हैं उसका प्रयोजन कह दिया। ७

यज्ञ में वस्त्र पर मेखला ठीक रहती है, यहाँ उसके विना ही वस्त्र पहनाता है। ८

अब उसे लेकर खड़ा होता है। वह आदित्य ही यह अग्नि है उसे ही उठाता है-

उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया।
दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः॥ य ४१

हे सु-अध्वर अग्नि! प्रयत्न कर, शुद्ध बुद्धि से हमारी रक्षा कर, तू सुकर्म-सेवी सुख-दर्शनार्थ प्रकाश और सु-गुणों से ले जाने वालों के साथ हमें मिल। ९

अब इस अग्नि-आदित्य को यहाँ से ऊपर पूर्व की ओर सामने रखता है-

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे॥ य ४२

यह ऊपर हमारी रक्षा के लिए अन्न का दाता सविता देव स्थित है जिस को पदार्थ-व्यंजक किरणों से हम विशेष कामना करते हैं।

इस मृत्पिण्ड को बाहें आगे करके लेता और पास लाकर नाभि पर रखता है॥ १०॥

यह अध्याय ४ में ब्राह्मण ३ पूर्ण हुआ।

ब्राह्मण ४

[अश्व आदि ५ पशुओं का अभिमन्त्रण आदि ।]

हाथ में यह मिट्टी होती है और पशुओं का अभिमन्त्रण करता है। पहले देवों ने इन्हें लेते हुए वीर्य धारण किया था वैसे ही यह पराक्रम धारण करता है। वह अश्व का अभिमन्त्रण करता है—

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून् प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद् गाः ॥ य ४३

द्यावा-पृथिवी से पैदा, आग का गर्भ, औषधियों में सुन्दर धारित, विचित्र शिशुवत्, रात का अंधेरा दूर कर माता-औषधियों के लिए बार-बार हिनहिनाता है। (अश्व क्षत्रिय है।)

अब रासभ (वैश्य-शूद्र) — स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् ।
पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ य ४४

हे अर्वन् ! तू स्थिर-दृढ़-अङ्ग-शीघ्रगामी-बली-विस्तृत-अग्नि के कर्म का वाहक हो।

यह कहकर रासभ में वीर्य धारण कराता है। ३

अब अज (ब्राह्मण)— शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्य त्वमङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥ य ४५

हे अङ्गिरा-अग्नि ! तू मानुषी प्रजा के लिए कल्याणकारी हो। द्या-पृथिवी-अन्तरिक्ष-वनस्पतियों की हिंसा न कर। अज आग्नेय है। इसे यह अहिंसा के लिए शमन करता है। इस प्रकार अज में वीर्य धारण कराता है। ४

तीन से मन्त्रणा करता है। आग त्रिवृद् है; जितनी वह और उसकी मात्रा है उतने से इनमें ही वीर्य धारण कराता है। ५

अब इस उन पशुओं के ऊपर घुमाता है, छुआता नहीं; क्योंकि पशु वज्र हैं, वह वीर्य है, कहीं इस वीर्य को वज्र से हिंसा न कर दूं, और यह अग्नि है, कहीं यह पशुओं की हिंसा न करे। ६

उसे अश्व पर घुमाता है— प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा ।
भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ॥ य ४६

अश्व हिनहिनाता हुआ आगे जाये, रासभ शब्द करता चले, यह अश्व पशु-पालक आग को धारण करता हुआ आयु (इस कर्म) से पहले न जाए।

अश्व के यजु में रासभ को कहकर उसमें शोक रक्खा (कमी बतायी) है। ७

अब रासभ को— वृषाग्निं वृषणं भरन्नपाङ्गर्भं समुद्रियम् । य ४६

वृषा आग वृषा रासभ को, और जो जल का समुद्री गर्भ (आकाशी सूर्य)है, उसे धारण करती है। ८

अब हटा लेता है— अग्न आयाहि वीतये ॥ य ४६

हे आग ! तू सुख की व्याप्ति के लिए आ जा।

इस प्रकार इस यजु से इसे शौद्र वर्ण (रासभ गदहा) से हटा लेता है। ९

अब अज (ब्राह्मण) को— ऋतं सत्यमृतं सत्यम् । य ४७

यह ऋत (आग) वह सत्य (सूर्य) है, या वह ऋत (सूर्य) यह सत्य (आग) है, दोनों आग हैं अतः यह कहा। यह कहकर इसे अज के साथ धारण करता है। १०

३ से धारण किया, त्रिवृद् आग है; वह जितना है उतनी से इसे धारण करता है, ये ६ मन्त्र हुए। ११

आर्यसमाज के सन्दर्भ में वेङ्कट माधव की स्वरविषयक प्रामाणिकता का प्रतिफल

डा. सुधीरकुमार गुप्त, निदेशक भारतीमन्दिर अनुसन्धान शाला, ए-१, वेदसदन,
विश्वविद्यालय-पुरी, गोपालपुरा मार्ग; जयपुर – ३०२०१८ (राज०)।

दयानन्द-सन्देश, दिल्ली के अगस्त १९९। के अंक में वेदवाणी, बहालगढ़ के मई-जून १९९० के
[अं]कों में प्रकाशित प० युधिष्ठिर मीमांसक जी का 'वेदार्थ में स्वरज्ञान की अनिवार्यता' लेख कुछ
[अं]कों को छोड़कर शेष लगभग यथावत् प्रकाशित हुआ है । श्री मीमांसक जी के इस लेख में प्रस्तुत
[वे]दार्थ में स्वरविषयक समस्त बिन्दुओं की समीक्षा हमारे लेखों में हो चुकी है । यहाँ यह कहना
[आ]वश्यक प्रतीत होता है कि जिस वेंकट माधव को प्रमाण मानकर वेदों में अंकित स्वर के वेदार्थ
[illegible] श्री मीमांसक जी ने भगीरथ प्रयत्न किया है उस वेंकट
[मा]धव के वेद-विषयक समस्त लेखों और वेदभाष्य को प्रामाणिक मानने पर स्वामी दयानन्द द्वारा
[अप]ने प्राणों की आहुति देकर गुरु-दक्षिणा आदि के रूप में वेदविषयक जो मान्यताएँ और वेदार्थ
[प]द्धति आदि प्रस्तुत की थीं और जिनको आर्यसमाज पल्लवित और पुष्पित करता आ रहा है तथ[ा]
[जिनके प्रचार-प्रसा]रण के लिए उसने अनेक बलिदान दिये हैं वे क्षणमात्र में धराशायी हो जाएँगीं तथा आर्य-
[स]माज पुनः पौराणिक स्तर पर आ खड़ा होगा, क्योंकि वेङ्कट माधव वेद का पौराणिक-ऐतिहासिक
[भा]ष्यकार है और वेदार्थ में पुराण और इतिहास का उपयोग करने का आह्वान करता है । उसने
[अप]ने वेदभाष्य में ऐसा किया भी है । अतः इस दृष्टि से माननीय श्री मीमांसक जी को यास्क
[औ]र महर्षि दयानन्द के मार्ग से भिन्न और उनके विघातक मार्ग का भी पोषक मानना पड़ेगा ।

पृष्ठ २८ वर्ष १५ अङ्क ११-१२ कार्तिक-मार्गशीर्ष (ऊर्ज-सह) २०४८ **वेदज्योति** नवम्बर ९१, दिसम्बर ९१ न.३६२१।'२ डाक लख

....

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष २-११-९१ को पूर्ण हो चुका है, कृपया वार्षिक शुल्क ३०) शीघ्र भेजि... इसके मिलने पर अगला अंक भेजा जायेगा। अंकों को सँभाल कर रखिये, फिर न मिल सकेंगे।
सभी सदस्य विशेषतः आजीवन संरक्षक अथर्ववेद के प्रकाशन में कृपया आर्थिक सहायता करें।

वैदिक दैनन्दिनी मार्गशीर्ष-पौष २०४८ विक्रम

मार्ग कृष्ण १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
वार शु श र सो म बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु
न. कृ रो मृ आ पुन पु म पूफा उफा ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू मू पूषा उषा श्र ध श पूभा उभा रे अ भ कृ
न २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० दि १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०

पौष कृ १ २ ३ ४ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
वार र सो म बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र
नक्षत्र आ पुन पु श्ले म पूफा उफा ह चि स्वा वि अनु ज्ये मू पूषा उषा श्र ध श पूभा उभा रे अ भ कृ रो मृ आ
द २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ज २ ३ ४ ५ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८

प्रेषक —

मुद्रक आदर्श प्रेस,
सी ८१७ महानगर;
लखनऊ उ०प्र० पिन २२...
दूरभाष ७३५०१

सेवा में

क्रमांक

श्री पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
पत्रालय
जनपद (हरिद्वार)